CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारवि

किरातार्जुनीयम्

प्रथमः सर्गः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक
रामनारायणलाल बेनीमाधव
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
इलाहाबाद

४ अगस्त १९६७

मुद्रक
विजय कुमार अग्रवाल
नव साहित्य प्रेस
इलाहाबाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ
काव्य का विकास	...	...	१
काव्य का स्वरूप	...	...	७
भारवि का जीवनवृत्त	...	...	१२
भारवि का स्थितिकाल	...	...	१६
किरातार्जुनीयम् का महाकाव्यत्व	...	...	१८
किरातार्जुनीयम् का कथानक	...	...	२२
महाभारत की कथा से किरात में भारविकृत परिवर्तन		...	३०
भारवि की काव्यप्रतिभा	...	...	३२
भारवि तथा माघ	...	...	४१
संस्कृत-साहित्य में भारवि का स्थान	...	...	४४
किरातार्जुनीयम् का प्रथम सर्ग	...	...	४८
प्रथम सर्ग में प्रयुक्त सूक्तियाँ	...	...	५०
किरातार्जुनीयम् का नामकरण	...	...	५१
प्रथमः सर्गः	...	...	१-१२१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ श्रीः ॥

आमुख

काव्य का विकास

भारतीय काव्य का जन्म सहस्रों वर्ष पूर्व हुआ है। इसका अनुशीलन सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक है। स्वयं वैदिक ऋचाओं में उत्कृष्ट कोटि का काव्यत्व मिलता है। वेदों में देवस्तुतियों के अतिरिक्त तत्कालीन उदार राजाओं की कीर्ति भी गाई गयी है। वैदिक सूक्तियों में नाराशंसियों तथा प्रशस्तियों का उल्लेख पाया जाता है जिसमें अपने स्वामी की प्रशंसा में रचयिता लोग अतिशयोक्ति से काम लेते थे। ऋग्वेद[1] में श्यावाश्व ऋषि ने अपने आश्रय-दाता राजा तथा उनकी रानी के दान की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस प्रकार प्रशस्तिकर्त्ताओं के पारितोषिक पाने का वर्णन अनेक स्थलों पर पाया जाता है। अथर्ववेद के काण्ड २० में महाराज परीक्षित के शासन में प्रजा के अत्यन्त सुखी तथा धनधान्य से परिपूर्ण होने का वर्णन किया गया है। संहिता तथा ब्राह्मण-ग्रंथों में अनेक यशस्वी राजाओं की कथाएँ हैं जिनकी वीरता एवं दान-शीलता का मुक्तकण्ठ से गान किया गया है। उपनिषदों से ज्ञात होता है कि राजाओं के आश्रय में दार्शनिकों के शास्त्रार्थ होते थे जिसमें सफलता पाने वाले को पुरस्कृत किया जाता था। राजाओं को अपने तथा अपने वंशानुकीर्तन सुनने में आनन्द आता था। वे स्तुतिकर्त्ता को उत्साहपूर्वक पारितोषिक देते थे। संस्कृत में लोककथा अर्थात् राजकुमारों और उनके साथियों के व्यावहारिक जीवन का वर्णन शिक्षा देने के उद्देश्य से सरल भाषा में

१—ऋग्वद ५।६१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिखने की प्रथा थी, जिससे काव्य के विकास में सहायता मिल सकी। पौराणिक काव्य की सरलता से भी इस दिशा में प्रोत्साहन मिला। शैली में उत्कृष्टता लाने के लिए प्रेममय गीतिकाव्य के लेखकों ने जटिल छन्दों में रचना की जो पौराणिक काव्य के लिए उपयुक्त नहीं थे। वैदिक कवियों ने उषादेवी की तुलना एक सुन्दरी नर्तकी अथवा प्रेमी के लिए वक्षःस्थल प्रदर्शित करने वाली कुमारिका से की है। कविकुलगुरु कालिदास ने अपने विक्रमोर्वशीय नाटक की रचना ऋग्वेद में आये उर्वशी-पुरूरवा के संवाद के आधार पर की है। निम्नोद्धृत मन्त्र की उपमाओं का अश्वघोष एवं कालिदास की उपमाओं से साम्य द्रष्टव्य है :—

सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवेवः॥

अर्थात् इन ऋषियों का तेज सूर्य के तेज के समान, महिमा समुद्र की गहराई के समान अगाध और वल वायु के वेग के समान है।

अश्वघोष नन्द का वर्णन अपने महाकाव्य 'बुद्धचरित्र' में इस प्रकार करते हैं—'दीर्घवाहुर्महावक्षः सिंहांसो वृषभेक्षणः'।

अर्थात् दीर्घ भुजाओं वाला, महान् वक्ष वाला, सिंहांस तथा वृषभ के समान वड़े-वड़े नेत्रों वाला।

कालिदास 'रघुवंश' में दिलीप के संवंध में कहते हैं—

'व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महीभुजः'।

मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने ईसा से पूर्व एवं पश्चात् कुछ सदियों तक संस्कृत-काव्य का अन्धकार युग माना है। उनका कथन है कि उस समय ग्रीक, पार्सियन एवं शक जातियों के प्रवल आक्रमण के कारण भारत का वातारण एकदम क्षुब्ध हो गया था। काव्य के पनपन के लिए शान्ति अपेक्षित होती । अतः गुप्त-साम्राज्य के उदय होने के पूर्व तक कविता का अभाव था, परन्तु इतिहास के साक्ष्य पर यह वात निराधार एवं निर्मूल सिद्ध होती है। शक राजा संस्कृत के उन्नायक थे न कि ध्वंसक। शकों ने भारतीयता स्वीकार कर अपना नाम भारतीय रखा तथा भारतीय कला एवं धर्म को आश्रय दिया। कुशान राजाओं में कनिष्क, हुविश्क और वासुदेव हुए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। कनिष्क की राज्य सभा में बहुत-से प्रतिष्ठित विद्वान् थे, जिनमें प्रसिद्ध कवि अश्वघोष तथा आयुर्वेद विज्ञान के प्रणेता चरक का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वासुदेव के नाम से ही स्पष्ट है कि बाद वाले कुषाणवंशी राजा हिन्दू धर्म की ओर झुके हुए थे। उनके सिक्कों पर शिव और नन्दी की प्रतिमाएँ अंकित हैं जो उनके परम माहेश्वर होने की द्योतक है। इन शकों के ही कारण १५० ईसवी में संस्कृत राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो गयी।

जैसा पहले कहा जा चुका है कि रामायण और महाभारत ही संस्कृत काव्यों के अक्षय स्रोत हैं तथा संस्कृत गीतिकाव्यों का मूलाधार श्रीमद्भागवत की मनोरम गीतियाँ हैं। रामायण के बालकाण्ड में काव्य-रसों का उल्लेख पाया जाता है :—

रसैः शृंगारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः।
वीरादिभिः रसैर्युक्तं.........

किन्तु कुछ विद्वान् इसे प्रक्षिप्त मानते हैं। संभव है कि यह प्रामाणिक न हो पर क्रौञ्चवधजनित शोक में उसके उदय होने की बात बहुत प्राचीन समय से चली आती है। एक व्याध ने क्रौञ्चमिथुन में से एक (नर) का वध कर दिया। इस पर क्रौञ्ची अत्यन्त क्षुब्ध होकर विलाप करने लगी। उसकी विरह-कातर दशा ने आदि कवि वाल्मीकि के हृदय में वदना का संचार किया 'निशम्य रुदतीं क्रौञ्चीमिदं वचनमब्रवीत्' इस प्रकार क्रौञ्ची को विलाप करते देख उनका हृदयोद्‌गार निम्न श्लोक-रूप में प्रस्फुटित हुआ :—

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।'

अर्थात् हे निषाद! क्रौञ्चमियुन में से एक (नर) का वध करने से वर्षों तक तुम्हारी प्रतिष्ठा नहीं होगी। कवि ने स्वयं कहा है :—

'शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोकः भवतु नान्यथा।'

दूसरों ने भी इसे कवितारूप में स्वीकार किया है। यह श्लोक ही काव्य का बीज है, इसी से वाल्मीकि आदिकवि कहे जाते हैं तथा हमारे आदिकाव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का जन्म ही करुण रस में हुआ। इसका उल्लेख कालिदास ने 'रघुवंश',[१] भवभूति ने 'उत्तररामचरित'[२] तथा आनन्दवर्धनाचार्य ने 'ध्वन्यालोक'[३] में किया है।

रामायण में विकसित शैली के दर्शन होते हैं। उसकी भाषा की एकरूपता तथा छन्दोविषयक परिपूर्णता द्रष्टव्य है। रामायण में ऋतुओं, पर्वतों, नदियों, यज्ञ, सन्ध्या, रजनी, विवाहादि का वर्णन अत्यन्त ही हृदयग्राही हुआ है तथा 'हर्षोत्फुल्लनयन: लोचनाभ्यां पिबन्निव, स्निग्धगंभीरघोष एवं फेननिर्मलहासिनी' आदि उपमाओं का बड़ा सुन्दर प्रयोग पाया जाता है, जिनका उपयोग परवर्ती कवियों ने अपनी रचनाओं में किया है। आचार्यों ने रामायण के आधार पर महाकाव्य के लक्षणों का उल्लेख किया है ऐसा अनुमान किया जा सकता है। रामायण का झुकाव कामोद्दीपक वर्णनों की ओर नहीं है। उसकी शैली गंभीर और गौरवयुक्त है। परवर्ती काव्य उसकी भाषा और छन्दोरचनापद्धति से पूर्णतया प्रभावित हैं। महाभारत के अन्तर्गत विषयों से परवर्ती कवियों को अपनी कृतियों के लिए अनन्त सामग्री मिली है।

महाभाष्य के प्रमाण से सिद्ध होता है कि संस्कृत साहित्य का सृजन १०५ ई० पू० से पहले हुआ था। पतञ्जलि ने पाणिनि के विवादग्रस्त सूत्रों की विशद व्याख्या की है। पाणिनि के नाम से ललित पद्य सूक्तिग्रन्थों, कोशग्रन्थों तथा अलङ्कारशास्त्रीय पुस्तकों में उद्धृत किये गये हैं। कुछ विद्वान्, पाणिनि को कोरा वैयाकरण मानते हैं और कहते हैं कि काव्य-प्रणेता पाणिनि कोई अन्य हैं, पर अन्य विद्वानों का मत है कि पाणिनि वैयाकरण होते हुए भी

१—निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थ: श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोक: ।
—रघुवंश १४।२७ ।।

२—अथ स ब्रह्मर्षिरेकदा माध्यन्दिनसवनाय नदीं तमसामनुप्रपन्न: । तत्र युग्मचारिणो: क्रौञ्चयोरेकं व्याधेन विध्यमानं ददर्श । आकस्मिक-प्रत्यवभासां च देवीं वाचमव्यक्तानुष्टुभेन छन्दसा परिणतामभ्युदैरयत् ।
—उत्तररामचरित ।२।४ के बाद गद्य ।

३—काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवे: पुरा ।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थ: शोक: श्लोकत्वमागत: ।।
—ध्वन्यालोक १।५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सरस हृदय थे तथा हृदयग्राही काव्य रचने की उनमें क्षमता थी। सदुक्तिकर्णामृत में विशिष्टकवि-प्रशंसा में उद्धृत एक पद्य[1] में सुबन्धु कालिदास, भारवि, भवभूति के साथ दाक्षी पुत्र[2] (पाणिनि) का भी उल्लेख है। पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में यह विशेषण पाणिनि के लिए प्रयुक्त किया है। कतिपय विद्वान् उनको महाकाव्य का प्रणेता मानते हैं। कहीं महाकाव्य का नाम 'जाम्बवती जय' है तो कहीं 'पातालविजय'। पाणिनि की कविता मधुर तथा सरस है। उत्प्रेक्षादि अलङ्कारों की छटा अवलोकनीय है तथा प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अतीव हृदयग्राही हैं। पतञ्जलि ने भी कृष्ण द्वारा कंसवध और विष्णु द्वारा बलि बन्धन के उल्लेख से अपने पौराणिक काव्य के ज्ञान का परिचय दिया है। महाभाष्य में ऐसे पौराणिक कथावाचकों के नाम उद्धृत किये गये हैं जो अपनी कथाओं को प्रातःकाल तक सुनाते थे। पतञ्जलि के साक्ष्य का समर्थन पिङ्गल के छन्दःसूत्र से भी होता है। इस ग्रन्थ में प्रयुक्त छन्द प्रायः प्रेयसी के विशेषण के रूप में (कुटिलगति, चारुहासिनी) अथवा कवि द्वारा पशुजीवन के निरीक्षण से संवद्ध (यथा अश्वललित, शार्दूलविक्रीडित) हैं।

वास्तव में संस्कृत-साहित्य के इतिहास के लेखक के अभाव में काव्यपरंपरा के अविच्छिन्न रूप से जारी रहने के क्रम का पता नहीं चलता। कालिदास, भारवि आदि के पूर्व कवियों की कृतियाँ तथा उनके नाम भी विस्मृत हो गये होंगे। हस्तलिखित पुस्तकें भी सुरक्षित न रह सकीं। संभव है, छोटे कवियों के नाम भी विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गये। अनेकानेक ग्रन्थों के नष्ट हो जाने पर असन्दिग्धरूप से कहा जा सकता है कि ईसा के २०० वर्ष पूर्व से २०० ई० तक के समय में काव्य का विकास चालू था। शिलालेखों के अध्ययन से भी संस्कृत-साहित्य के विकास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। शक महाक्षत्रप रुद्रदामन् का गिरनार शिलालेख उत्कृष्ट गद्यकाव्य का एक नमूना है। उसमें

१—सुबन्धौ भक्तिर्नः क इह रघुकारे न रमते
धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिश्चन्द्रोऽपि हृदयम्।
विशुद्धोक्तिः शूरः प्रकृतिमधुरा भारविगिर-
स्तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते॥

२—सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः। —महाभाष्य १।१०२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पौराणिक काव्य की सरल शैली से महाकाव्य-शैली के विकास का अच्छा निदर्शन है। उसमें व्याकरण के नियम के साथ-साथ पौराणिक काव्य का नियम-पालन भी किया गया है। इस शिलालेख में पौराणिक काव्य से भिन्नता समासों के प्रयोग में दृष्टिगोचर होती है। लम्वे-लम्बे समासों[1] की छटा अवलोकनीय है। इसमें रुद्रदामन को अलंकृत गद्य-पद्य की रचना में प्रवीण बतलाया गया है। उक्त कविता, स्फुटता, स्पष्टता, सरलता, उदारता और सौंदर्य से युक्त है। शैली अत्यन्त रोचक है। 'अभ्यस्तनाम्नो रुद्रदाम्नो' में अनुप्रास तथा 'पर्वत-प्रतिस्पर्द्धि' में उपमा देखने योग्य है। कुषाणसाम्राज्य के अन्त होने पर लिच्छवि वंश ने फैली हुई अव्यवस्था का लाभ उठाकर पाटलिपुत्र पर अधिकार जमाया। लिच्छवियों के सम्वन्ध का उपयोग कर चन्द्रगुप्त प्रथम पाटलिपुत्र का राजा बन गया। उसके पुत्र समुद्रगुप्त के राजत्वकाल से गुप्त-साम्राज्य की उन्नति होने लगी। गुप्तकाल कला एवं काव्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। इस समय की दो प्रशस्तियों से गुप्तकाल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। एक तो प्रयाग के एक स्तंभ पर खुदी हुई हरिषेण द्वारा रचित समुद्रगुप्त की प्रशस्ति है, दूसरी मंदसोर के सूर्य-मन्दिर में वत्सभट्टि का अभिलेख है (४७३ ई०)। प्रयाग प्रशस्ति (३४५ ई० लगभग) में समुद्रगुप्त के दिग्विजय का वर्णन गद्यपद्य मिश्रित भाषा म किया गया है। इस प्रशस्ति में पूरी कविता एक ही वाक्य में है, जिसमें पहले आठ पद्य कविता के हैं फिर गद्य में लिखा हुआ एक लम्बा वाक्य है और अन्त में एक समाप्ति का पद्य है। इसकी रचना सुबन्धु और वाण के गद्य-काव्यों के सदृश है। अर्थालङ्कारों में रूपकों का प्रयोग सबसे अधिक है, उपमा तथा श्लेष का वहुत कम। जैसा कि समुद्रगुप्त के इस विशेषण से स्पष्ट है 'साध्वसाधूद्यप्रलयहेतुपुरुषस्याचिन्त्यस्य'। वह सावधानी से लम्बे समासों के बीच छोटे-छोटे शब्दों का प्रयोग कर आकर्षक वनाता है। शब्दों के सुन्दर चुनाव और उनके सजाने का चातुर्य पद्य में भी दिखाई पड़ता है। केवल इसी शिलालेख से स्पष्ट है कि गुप्तराज्य के सम्पूर्ण काल में विकसित काव्य के ंग की कविता वर्तमान थी। इसका लेखक हरिषेण समुद्रगुप्त का

१—'परबललाघवसौष्ठवक्रियेणाहरहर्दात्रमात्रावमानशीलेन स्थूललक्षेण यथावत्प्राप्तैर्बलिशुल्कभागैः' इत्यादि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परराष्ट्रमंत्री और सेनापति होते हुए भी एक विशिष्ट प्रतिभासंपन्न कवि था, वत्सभट्टि की रचना इससे नितान्त भिन्न है। यह प्रशस्ति अनेक छन्दों में निबद्ध ४४ पद्यों में है। इसमें लाट देश और दशपुर नगर का कवित्वपूर्ण वर्णन है। उसकी शैली गौड़ी है, जैसा कि पद्यों में दीर्घ समासों के प्रयोग तथा एक ही पद्य में परिवर्तित होते हुए इसके अनूकूल विभिन्न पदों में वर्ण की योजना से सिद्ध होता है। यथा—

१. चलत्पताकान्यबलासनाथान्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि।
तडिल्लताचित्रसिताभ्रकूटतुल्योपमानानि गृहाणि यत्र ।। १० ।।

कालिदास के मेघदूत से तुलना कीजिए—

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः,
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगंभीरघोषम्।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुंगमभ्रंलिहाग्राः,
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ।।

२. स्मरवशगततरुणजनवल्लभाङ्गनाविपुलकान्तपीनोरु-
स्तनजघनघनालिङ्गननिर्भर्त्सिततुहिनहिमपाते ।। ३३ ।।

३. पयोधरैः कुङ्कुमरागपिञ्जरैः सुखोपसेव्यैर्नवयौवनोष्मभिः।
विलासिनीभिः परिपीडितोरसः स्वपन्ति शीतं परिभूय कामिनः ।।

(ऋतुसंहार ५।८)

अधिकांश विद्वानों के मत से कालिदास की रचना भी गुप्तकालीन मानी जाती है। तदनन्तर भारवि के समय तक १५० वर्ष का व्यवधान माना ज सकता है। इस बीच वत्सभट्टि के शिलालेख के अतिरिक्त अन्य कोई काव्य उपलब्ध नहीं। भारवि के समय से कविता में कृत्रिमता आ गयी। भाषा को अलंकृत करने एवं उसमें ओज लाने की चेष्टा परवर्ती कवियों ने की है। भारवि, माघ, भट्टि, कुमारदास तथा श्रीहर्ष भाषा की कलात्मकता के समर्थक थे। इन परवर्ती कवियों ने कलापक्ष पर ही विशेष बल दिया है।

काव्य का स्वरूप

काव्य के शरीर का निर्माण शब्द और अर्थ से होता है। ये दोनों एक-दूसरे से अभिन्न-से हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है इसीलिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कविकुलचूडामणि कालिदास ने रघुवंश के प्रारंभिक श्लोक[1] में शब्द और अर्थ की एकता को पार्वतीपरमेश्वर की एकता का उपमान बनाकर इस अटूट संबंध को स्थिर किया है। पौर्वात्य एवं पाश्चात्य मनीषियों ने काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मतों का प्रतिपादन किया है। 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' के अनुसार सभी आचार्य एकमत न हो सके। कोई अलंकार को काव्य की आत्मा मानता है, कोई रस को, कोई रीति को, किसी ने ध्वनि पर बल दिया तो किसी ने वक्रोक्ति को ही प्रधानता दी। इस प्रकार भारतीय विचारधारा के अनुसार पाँच प्रमुख सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं :—

आचार्य

१—अलङ्कार सम्प्रदाय·····························दण्डी, भामह, उद्भट

२—रससम्प्रदाय··············भरतमुनि, विश्वनाथ

३—रीतिसम्प्रदाय·········वामन

४—ध्वनिसम्प्रदाय············ध्वनिकार आनन्दवर्धन

५—वक्रोक्तिसम्प्रदाय·····················कुन्तल व कुन्तक

अलङ्कारसम्प्रदाय—भामह और दण्डी काव्य का मुख्य गुण अलङ्कार मानते हैं। इन आचार्यों ने तो इसे काव्य के लिए अनिवार्य माना है। बिना अलङ्कार के काव्य, काव्य ही नहीं कहा जा सकता। भामह[2] का कथन है—'सुन्दर होते हुए भी आभूषणों के बिना वनिता का मुख शोभ नहीं देता'। दण्डी[3] ने अलंकारों को शोभा का कारण बताया है। जयदेव[4] ने अपने ग्रन्थ

१—वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥ —रघुवंश १।१

२—न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।
—काव्यालंकार १।१३

३—काव्यशोभाकरान्धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते।
—काव्यादर्श २।१

४—अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती॥
—चन्द्रालोक १।८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्रालोक में यहाँ तक कह डाला है कि यदि कोई काव्य को अलंकाररहित मानता है तो वह अग्नि को भी उष्णताहीन क्यों नहीं कहता। आचार्य वामन[1] ने गुणों को शोभा-विधायक मानते हुए भी अलंकारों को शोभा बढ़ाने वाला कहा है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने रससम्प्रदाय के समर्थक होते हुए भी अलंकारों[2] को शब्द और अर्थ का अस्थिर धर्म कहा है। जब तक अलंकार आन्तरिक उत्साह के द्योतक हैं तब तक वे शोभावर्धक हैं। उनका महत्त्व अवश्य है पर वे मूलपदार्थ का स्थान नहीं ले सकते। अग्निपुराण में रस को काव्य का जीवन स्वीकार करते हुए भी अलंकार[3] का महत्त्व बतलाया गया है।

रससम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के मूलप्रवर्त्तक हैं भरतमुनि जो ईसा पूर्व पहली शताब्दी से पूर्व हुए। उनके पश्चात् ९वीं शताब्दी तक अलङ्कार-संप्रदाय की प्रधानता रही, पर रस का अस्तित्व वे भी स्वीकार करते थे। अन्त में विश्वनाथ ने रस[4] की महत्ता घोषित की। इसका साहित्य में व्यापक प्रभाव रहा है। बाद में चलकर हिन्दी के आचार्यगण भी 'रस' से ही प्रभावित हुए।

रीतिसम्प्रदाय—वामन ने रीति[5] को काव्य की आत्मा माना है। श्रेष्ठ-पदरचना[6] रीति कहलाती है। वामन का कथन है कि वर्णन-शैली के कारण काव्य ग्राह्य होता है। काव्यगत सौन्दर्य को वर्णन-शैली कहते हैं। उन्होंने

१—काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः ।
तदतिशयहेतवस्त्वङ्काराः । —काव्यालङ्कार ३।१।१।२

२—शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः ।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥
—साहित्यदर्पण १०।१

३—अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती ।
—अग्निपुराण ३४५।२

४—वाक्यं रसात्मकं काव्यम् । —साहित्यदर्पण

५—रीतिरात्मा काव्यस्य । —काव्यालङ्कारसूत्र १।२।६

६—विशिष्टपदरचना रीतिः । —काव्यालङ्कारसूत्र १।२।२७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अलंकारों के कारण काव्य की ग्राहकता[1] बतलाई है, किन्तु उनको सौंदर्य[2] के व्यापक अर्थ म माना है। रीति का सम्बन्ध गुणों से है और गुणों का सम्बन्ध काव्य की आत्मा रस से हैं। इस प्रकार रस की महत्ता उन्हें भी स्वीकृत है।

ध्वनिसम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के आचार्य ध्वनिकार माने गये हैं और उनके व्याख्याकार आनन्दवर्धन को उतना ही महत्त्व दिया गया है। यहाँ तक कि कुछ लोग दोनों को एक ही मानते हैं। ध्वनिकार कहते हैं कि जहाँ पर अभिधा का अर्थ व्यञ्जना से दब जाता है वही रचना ध्वनि[3] कहलाती है। ध्वनि में व्यञ्जना होने के कारण और व्यंग्यार्थ की प्रधानता होने से एक प्रकार की विलक्षणता रहती है, जिसके कारण काव्य में सौन्दर्य आ जाता है। ध्वनि के चमत्कार के आधार पर काव्य तीन श्रेणियों में विभक्त हुआ। पहला 'ध्वनि काव्य' जिसमें अभिधार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ की प्रधानता हो। दूसरा 'गुणीभूत व्यंग्य' जिसमें व्यंग्यार्थ गौण हो गया हो। तीसरा 'चित्रकाव्य' जिसमें बिना व्यञ्जना के भी शब्दचित्रों (शब्दालंकारों) और वाच्यचित्रों (अर्थालंकारों) का चमत्कार होता है। काव्यप्रकाशकार ने 'ध्वनिकाव्य'[4] को उत्तम, 'गुणीभूत व्यंग्य'[5] को मध्यम तथा 'चित्रकाव्य'[6] को अवर (अधम) कहा है। यह सम्प्रदाय रससम्प्रदाय के समान ही लोकप्रिय हुआ है।

वक्रोक्ति सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य कुन्तक अथवा कुन्तल हैं। वे सब प्रकार के चमत्कारों को वक्रोक्ति मानते हुए काव्यान्तर्गत

१—काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्। —काव्यालङ्कारसूत्र १।१।१

२—सौन्दर्यमलङ्कारः। —काव्यालङ्कारसूत्र १।१।२

३—यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥
—ध्वन्यालोकः १।१३

४—इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।
—काव्यप्रकाश १।४

५—अतादृशि गुणीभूतव्यंग्यं व्यंग्ये तु मध्यमम्। —काव्यप्रकाश १।५

६—शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम्। —काव्य प्रकाश १।५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वचनभंगिमा[1] को ही रोचकता का प्रधान कारण मानते हैं। उन्होंने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—

'कवि के वक्रोक्ति वाले व्यापार से युक्त जिस बन्ध[2] में शब्द और अर्थ उस वक्रता के उपकारक होकर गुंथे रहते हैं उस बन्ध को काव्य कहते हैं'। इनके अतिरिक्त अग्निपुराण[3] में अभीष्ट अर्थ व्यक्त करने वाला वाक्यविधान काव्य कहा गया है। मम्मटाचार्य[4] दोषरहित गुण वाली रचना को जिनमें कहीं-कहीं अलंकार न भी हो काव्य मानते हैं।

रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहते हैं—'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'। इसमें रस और अलंकार दोनों के चमत्कार आ जाते हैं।

सब मतों की समीक्षा करते हुए निष्कर्ष यह निकलता है कि जिस रचना को पढ़ने से अलौकिक आनन्द की उपलब्धि हो वही काव्य है। काव्य के लिए भाव और अभिव्यक्ति दोनों ही की आवश्यकता है। अलङ्कार, ध्वनि, वक्रोक्ति रीतिशोभाविधायक हैं। रसवादी विश्वनाथ ने भी कहा है—

उत्कर्षहेतवः प्रोक्ताः गुणालङ्काररीतयः।

इनका सम्बन्ध अभिव्यक्ति से है। रस[5] में कर्त्ता (कवि), कृति (काव्य) और भोक्ता (पाठक) तीनों का ही समान महत्त्व है। उसमें प्रभाव है, गति है, जीवन की तरलता है। काव्य का सार होने के कारण उसमें फलों के रस की भी अभिव्यक्ति है। रस (आनन्द) तो उसका निजी रूप है।

१—वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगीभणितिरुच्यते। —वक्रोक्तिजीवित १।११

२—शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि।।
—वक्रोक्तिजीवित १।८

३—संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली। —व्यास

४—तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।
—काव्यप्रकाश

५—सिद्धान्त और अध्ययन। —गुलाबराय, पृष्ठ ६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह रमणीयता का चरम लक्ष्य है और अर्थ की अर्थस्वरूपा ध्वनि का भी विश्रामस्थल है, इसलिए वह परमार्थ है। स्वयंप्रकाश्य चिन्मय, अखण्ड ब्रह्मानन्दसहोदर है—'रसो वै सः'।

काव्यविषयक पाश्चात्य विचारधारा—पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य की परिभाषा भाव, कल्पना, बुद्धि एवं शैली इन चार तत्त्वों पर आधारित की है। काव्य में इन चारों बातों का समावश रहता है पर किसी ने एक तत्त्व पर बल दिया है दूसरे ने दूसरे पर। शेक्सपियर कल्पना को प्रधानता देते हैं। शेली ने भी कल्पना पर बल दिया है। किन्तु वर्ड्सवर्थ[1] ने भाव को महत्त्व देते हुए कहा है कि काव्य शान्ति के समय में स्मरण किये हुए प्रबल मनोवेगों का स्वच्छन्द प्रवाह है। कोलरिज[2] के शब्दों में कविता उत्तमोत्तम शब्दों का उत्तमोत्तम विधान है। मिल्टन[3] ने कविता को सादा, प्रत्यक्षमूलक और रागात्मक कहा है। मैथ्यू आर्नल्ड[4] ने कविता के मूल्य को जीवन की व्याख्या कहा है। हडसन[5] इन सब दृष्टियों का समन्वय करते हुए कहते हैं कि कविता कल्पना और मनोवेगों द्वारा जीवन की व्याख्या करती है। आचार्य जान्सन[6] ने अपनी परिभाषा में चारों तत्त्वों का समावेश कर लिया है। उनका कथन है कि कविता सत्य और प्रसन्नता के सम्मिश्रण की कला है जिसमें बुद्धि के सहायतार्थ कल्पना का प्रयोग किया जाता है।

भारवि का जीवनवृत्त

कालिदास की भाँति भारवि ने भी अपने सम्बन्ध में कुछ प्रकाश नहीं

1—Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings. It takes its origin from emotion recollected in tranquillity.

2—Poetry is the best words in the best order.

3—Poetry should be simple, sensuous and passionate.

4—Poetry is at its bottom a criticism of life.

5—Poetry is an interpretation of life through imagination and emotion.

6—Poetry is the Art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डाला। उनका एक मात्र ग्रन्थ किरातार्जुनीय इस संबंध में मौन है। कुछ किंवदंतियों के अनुसार वे भी भोज के दरबार से संवद्ध हो जाते हैं। कुछ के अनुसार वे अपने पिता से रुष्ट होकर ससुराल चले गये थे। सौभाग्य से उनका नामोल्लेख ऐहोल शिलालेख में मिलता है। यह शिलालेख दक्षिण के चालुक्यवंशी नरेश पुलकेशी द्वितीय के समय का है। यह शिलालेख बीजापुर जिले के ऐहोल नामक गाँव के एक जन मन्दिर में मिला था जो ६३४ ई० में उत्कीर्ण हुआ माना जाता है। इस प्रशस्ति का लेखक रविकीर्त्ति[1] कविता करने में अपने को कालिदास और भारवि के समान मानता है। दक्षिण भारत से प्राप्त गद्यकाव्य 'अवन्तिसुन्दरी' (जो दण्डीकृत कहा जाता है) के आधार पर भारवि दण्डी के प्रपितामह ठहरते हैं। जिस पद्य के आधार पर यह माना गया है उसका पाठ अशुद्ध है, अतः यह बात अग्राह्य है। भारवि दण्डी के प्रपितामह नहीं थे, वरन् प्रपितामह के मित्र थे, क्योंकि भारवि की सहायता से ही दामोदर राजा विष्णुवर्धन की सभा में प्रवेश पा सके थे। इस 'अवन्तिसुन्दरी-कथा' और उसी के आधार पर पद्यात्मक रूपान्तर 'अवन्तिसुन्दरीकथासार' के अनुसार ये बातें ज्ञात होती हैं कि काञ्ची का पल्लवनरेश सिंहविष्णु महान् प्रतापी नरेश था। एक बार एक गंधर्व ने आर्या छन्द में उसकी बड़ी प्रशंसा की। उसे सुनकर इसके रचयिता के बारे में जानने की बड़ी उत्कण्ठा हुई तथा गन्धर्व से पूछा तब गन्धर्व ने कहा—

देव परमनुगृहीतोऽस्मि क्षणमवधानादनुगृहीततमः······णावासः ततो हि निस्सृता सरस्वतीव ब्रह्मलोकादगस्त्यमूर्तिरिव गीतोद्गीर्णव······रचलस्य कृतनिवेशितमचलपुरं नाम गवप्रोदकपुष्पवासितकलकाननायासि······सम्भृत-धृतिरधिवसति कुशिकवंशवर्धिनी सर्वातिथिरप्रतिगृहीत्री महत्यु···(ना) रायण-स्यामिनो नाभीपद्म इवब्रह्मैकधाम दाम्ोदरस्वामिनामात्तमेव······सर्वाङ्गमनो-हरया सर्वज्ञया विदग्धया सर्वभाषाप्र·णयाप्रमाणयुक्त्या ललितपद—विन्यास··· स्नेहमस्वजत। को हि नाम भगवतीभवितव्यतामतिक्रम्य यथासमीहितेन साधयति पथा।

१—येनायोजि नवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिनाजिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्त्तिः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस अंश तथा अन्य भागों की तुलना अवन्तिसुन्दरीकथासार[1] से करने पर निम्नलिखित बातें विदित होती हैं—

"पश्चिमोत्तर प्रदेश में आनन्दपुर है। वहाँ आर्य देश के बहुत से ब्राह्मण ब्रह्मलोक से आई हुई पुण्यतीर्था—सरस्वती के समान कौशिकगोत्रीय ाह्मणों ने उन्हीं से जन्म ग्रहण किया। उत्सुकतावश नासिक भूमि में मूलदेव से अधिष्ठित अचलपुरी में आकर वे रहने लगे। उसमें कमलनाभि के समान नारायण नामक व्यक्ति से दामोदर उत्पन्न हुए। उस मेधावी विद्वान् ने विष्णवर्धन राज्य से मैत्री की। एक बार दामोदर (भारवि) को आमिष खिला दिया गया। इस पाप से मुक्ति पान के लिए माता-पिता के पास न जाकर तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़ा। मार्ग में दुर्विनीत नामक राजा से उसकी भेंट हो गयी, जो भारवि के काव्य से बहुत प्रभावित हुआ।"

इससे विदित होता है कि भारवि का नाम दामोदर था। उनका जन्म कुशिक गोत्र में हुआ था। पिता का नाम नारायण स्वामी था। विष्णुवर्धन से उनकी भेंट हुई। आगे के ग्रन्थ से यह पता चलता है कि पल्लवनरेश सिंहविष्णु द्वारा उनका सत्कार किया गया। यह भी ज्ञात होता है कि उस समय वे बीस वर्ष के थे। प्रो० आर० आर० भागवत ने किरातार्जुनीय के १८ सर्ग के पाँचवें श्लोक के आधार पर सिद्ध किया है कि भारवि दक्षिण के निवासी थे, यथा—

उरसि शूलभृतः प्रहिता मुहुः प्रतिहतिं ययुरर्जुनमुष्टयः।
भृशरया इव सह्यमहीभृतः पृथुनिरोधसि सिन्धुमहोदधि॥

अर्थात् भगवान शंकर के सीने पर बार-बार प्रहार किये गये अर्जुन के मुक्के (मुष्टि) उसी प्रकार निष्फल हुए जिस प्रकार सह्यपर्वत के तट पर वेग के साथ टकराने वाली समुद्र की विशाल लहरें (विफल हो जाती हैं)।

निम्नाङ्कित श्लोकों को आधार मानकर यह निष्कर्ष निकलता है कि भारवि

१—स मेधावी कविर्विद्वान् भारविः प्रभवो गिराम्।
अनुसाध्याकरोन्मैत्री नरेन्द्रे विष्णुवर्धन॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नासिक के आसपास पश्चिमी तट पर स्थित अचलपुर ग्राम के रहने वाले थे :—

'शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ' । (किरात० १, ४६)
'तदिप्रयार्थमिव यातुमथास्तं भानुमानुपपयोधि ललम्बे' । (किरात० ६, १)
'साभिमज्जति रवौ न विरेजे खिन्नजिह्म इव रश्मिसमूहः' । (किरात० ६, ५)

इन उल्लेखों से भारवि सूर्य को समुद्र में अस्तंगत होते हुए बतलाते हैं, जो केवल दक्षिण भारत का ही निवासी कह सकता है। भारवि दक्षिण भारत के निवासी थे और चालुक्यवंशी नरेश विष्णुवर्धन के सभा-पण्डित थे। भारवि परम शैव थे। इसका समर्थन किरातार्जुनीय के कथानक और अवन्तिसुन्दरी[1] के उल्लेख से होता है क्योंकि किरातार्जुनीय में शिव की भक्ति के द्योतक पद्य बहुत से हैं, किन्तु विष्णु के विषय में अपेक्षा कृत बहुत कम। अठारहवें सर्ग में जिस भावविभोरता के साथ अर्जुन ने भगवान् शंकर की स्तुति की है, उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह उसके वेश में स्वयं भारवि की ही आराधना है। राजाओं के संसर्ग से उन्होंने राजनीति का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उन्होंने काव्यशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र आदि शास्त्रों का अच्छा अध्ययन किया था। राजशेखर के कथनानुसार राजा लोगों को काव्य एवं शास्त्र की परीक्षा के लिए ब्रह्मसभाएँ करनी चाहिए। कालिदास तथा भर्तृमेण्ठ के समान भारवि की भी उज्जयिनी में काव्यपरीक्षा[2] हुई थी। भारवि के व्यक्तित्व का सच्चा प्रदर्शन प्रथम और द्वितीय सर्ग की द्रौपदी, भीम तथा युधिष्ठिर की उक्तियों और तेरहवें और चौदहवें सर्ग की किरातदूत तथा अर्जुन की उक्तिप्रत्युक्तियों में है। भारवि

१—यतः कौशिककुमारो (दामोदरः) महाशैवं महाप्रभावं गवा प्रभवं प्रदीप्तभासं भारविं रविमिवेन्दुरनुरुध्यदर्शं इव पुण्यकर्मणि विष्णुवर्धनाख्ये राजसूनौ प्रणयमन्वबध्नात्।

२—श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकारपरीक्षा—
इह कालिदासमेण्ठावत्रामररूपसूरभारवयः।
हरिश्चन्द्रचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित हैं। युधिष्ठिर द्रौपदी और भीम को समझाते हुए कहते हैं कि किसी काम में जल्दबाजी[1] नहीं करनी चाहिए। बिना सोचे-समझे कोई काम करने से अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। जो सोच-समझ कर काम करता है उसके गुणों से आकृष्ट सम्पत्ति स्वयं उसके पास चली आती है। जो कोपजन्य अंधकार को दबाकर शक्तियों[2] (प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति और उत्साहशक्ति) का संचय नहीं करता वह कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की कला के समान अपनी तीनों शक्तियों से हाथ धो बैठता है।

भारवि कामशास्त्रों के भी प्रकाण्ड पंडित हैं, रसिक नहीं। वह श्रृंगार के कलापक्ष के कवि है। कालिदास प्रणय के कवि हैं, भारवि प्रणयकला (technique of love) के कवि। इसके अतिरिक्त अलंकार, पिंगल आदि पर उनका पूर्ण अधिकार है।

भारवि का स्थितिकाल

भारवि ने अपने संबंध में काव्य में कुछ नहीं लिखा किन्तु सौभाग्यवश बहिरंग प्रमाणों के आधार पर उनके विषय में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है। दक्षिण के चालुक्यवंशीय नरेश पुलकेशिन द्वितीय के समय के ऐहोल शिलालेख में भारवि के नाम का कालिदास के साथ उल्लेख है। प्रशस्ति के आश्रित रविकीर्ति[3] नामक किसी जैन कवि द्वारा रचित है। वह अपने को कविता निर्माण करने में कालिदास और भारवि के समान बतलाता है। शिलालेख का समय उसमें ५५६ शकाब्द[4] अर्थात् ६६४ ई० दिया हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि भारवि ६३४ ई० तक इतने प्रसिद्ध हो चुके थे कि

१—सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥ २। ३० ॥

२—बलवानपि कोपजन्मनस्तमसो नाभिभवं रुणद्धि यः।
क्षयपक्ष इवैन्दवीः कलाः सकला हन्ति स शक्तिसम्पदः ॥ २। ३७ ॥

३—येनायोजि नवेऽश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्त्तिः कविताश्रितश्रीकालिदासभारविकीर्त्तिः ॥

४—पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनका नाम कालिदास के साथ लिखा जा सकता था। अतः इस शिलालेख से अवश्य ही कम से कम सौ वष पूर्व उनकी स्थिति रही होगी।

भारवि के समय निर्धारण के लिए यह जानना आवश्यक है कि विष्ण-वर्धन, दुर्विनीत तथा पल्लवनरेश सिंहविष्णु कौन थे। विष्णुवर्धन पुलकेशिन्-द्वितीय का छोटा भाई कहा गया है। इसने सेनापति की हैसियत से हर्षवर्धन को पराजित किया। वह युवराज था और गोदावरी जिले में पिष्टपुर को राजधानी बनाकर पूर्वी चालुक्यवंश की स्थापना[1] ६१५ ई० में की।

दुर्विनीत कोङ्कणी के गंगानरेश अविनीत का पुत्र था। पिता द्वारा अपने अधिकार से वञ्चित किये जाने पर दूर-दूर देशों में घमता फिरता था। उसने बृहत्कथा का संस्कृतरूपान्तर 'शब्दावतार' नाम से किया और 'किरातार्जुनीयम्' के पन्द्रहवें सर्ग पर टीका लिखी।[2] दुर्विनीत सिंहविष्णु का समकालीन था।

अवन्तिसुन्दरी के आधार पर भारवि और दण्डी का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। इसी में कहा गया है कि दुर्विनीत और सिंहविष्णु भारवि के आश्रयदाता थे। काञ्ची के पल्लव नरेश सिंहविष्णु का शासन काल ५७५ से ६०० ई० के बीच है। इन्हीं सिंहविष्णु ने भारवि को सम्मानित किया था। दुर्विनीत का समय ५८० ई० है। सिंहविष्णु से भेंट होने के समय भारवि बीस वर्ष के थे, इस प्रकर भारवि का समय छठीं शताब्दी का उत्तरार्ध ठहरता है। ६६० ई० में जयादित्यकृत काशिका में पाणिनि सूत्र (१, ३, २३) की बृत्ति में 'संशय कर्णादिषु तिष्ठते यः' (किरात० ३, १४) को उदाहरण रूप में उल्लिखित किया गया है। ज्ञात होता है कि जयादित्य के सम ा तक भारवि की पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी होगी। यदि इस प्रसिद्धि के लिए सौ वर्ष का समय

१—History of Classical Sanskrit Literature

—*M. Krishnamachari.*

२—श्रीमत्कोङ्कणमहाराजाधिराजस्य अविनीतनाम्नः पुत्रेण शब्दावतारकारेण देवभारतीनिबद्धबृहत्कथेन किरातार्जुनीयपंचदशसर्गटीकाकारेण दुर्विनीतनामधेयेन...Archaeological report.

—*M. Krishnamachari* (1916) 36.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माना जाय तो ५६० ई० भारवि का समय आता है जो अन्य प्रमाणों से भी समर्थित होता है। प्रो० कीथ भी इस तिथि की पुष्टि करते हैं:—

"बाह्यसाक्ष्य से सिद्ध होता है कि भारवि[1] ६३४ ई० के पूर्व हुए क्योंकि उसी समय के ऐहोल शिलालेख में कालिदास के साथ उनका भी उल्लेख आता है तथा काशिकावृत्ति में भी वे उद्धृत हुए हैं। दूसरी ओर वे स्पष्टतया कालिदास से प्रभावित हैं और साथ हो माघ पर भी उनका प्रभाव अत्यधिक पड़ा है। बाण ने उनका उल्लेख नहीं किया, क्योंकि वे बाण के इतने अधिक पहले नहीं हुए होंगे कि उनकी प्रसिद्धिवश बाण को उनका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता। अतः यह अधिक युक्तिसंगत है कि भारवि को ५०० ई० की अपेक्षा ५५० ई० के लगभग रखा जाय।"

किरातार्जुनीयम्' का महाकाव्यत्व

'किरातार्जुनीयम्' संस्कृत साहित्य के पाँच महाकाव्यों में से एक उत्कृष्ट महाकाव्य माना जाता है। कालक्रमानुसार कालिदास-रचित कुमारसंभवम् और रघुवंश इससे पूर्व के हैं पर माघकृत शिशुपालवध और श्रीहर्षप्रणीत नैषधीयचरित इसके परवर्ती हैं। संस्कृत साहित्य में रघु, कुमार, मेघदूत लघुत्रयी तथा नैषध, माघ और किरात बृहत्त्रयी के अन्तर्गत माने जाते हैं। इस प्रकार किरातार्जुनीय बृहत्त्रयी में अन्यतम महाकाव्य माना जाता है। साहित्य शास्त्रग्रन्थों में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी गयी है। विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद में निम्नाङ्कित श्लोक महाकाव्य के लक्षण के सम्बन्ध में दिये हैं :—

१—External evidences prove that he was older than A.D. 634 when he is mentioned with Kalidasa in the Aihole inscription, and he is cited in the Kasika Vritti, on the other hand he manifestly is influenced by Kalidasa while he strongly affected Magha, Bana ignores him, so that he can hardly have preceded him long enough for his fame, to compel recognition. It is, therefore, wiser to place him A.D. 550 than as early A.D. 500.

(A History of Sanskrit Literature—*A. B. Keith page* 109.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः ।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम् ।।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ।
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ।
वर्णनीयं यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ।।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ।।

आचार्य दण्डी ने भी अपने काव्यादर्श में महाकाव्य के उपर्युक्त प्रायः सभी लक्षण दिये हैं । यथा—

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ।
आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् ।।
इतिहासकथोद्भूतमन्यद्वापि सदाश्रयम् ।
चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्तनायकम् ।।
नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः ।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः ।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि ॥
अलंकृतमसंक्षिप्तरसभावनिरन्तरम् ।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः ॥
सर्वत्रभिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जनम् ।
काव्यं कल्पोत्तरस्थायि जायेत तदलङ्कृतिः ॥

भामह का महाकाव्य लक्षण निम्नलिखित है :—

सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च यत् ।
अग्राम्यशब्दमर्थ्यं च सालङ्कारं सदाश्रयम् ॥
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत् ।
पंचभिः सन्धिभिर्युक्तं जातिव्याख्येयमृद्धिमत् ॥
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत् ।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक् ॥

"जिसमें[1] सर्गों का निबन्धन हो वह महाकाव्य कहलाता है। इसमें एक देवता या सद्वंश क्षत्रिय जिसमें वीरोदात्तत्वादि गुण हों—नायक होता है। कहीं एक वंश के सत्कुलीन अनेक भूप भी नायक होते हैं। शृंगार, वीर और शान्त में से कोई एक रस अंगी होता है। अन्यरस गौण होते हैं। सब नाटक सन्धियाँ रहती हैं। कथा ऐतिहासिक या लोकप्रसिद्ध सज्जन सम्बन्धिनी होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से एक उसका फल होता है। आरंभ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्य वस्तु का निर्देश होता है। कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण वर्णन होता है। इसमें न बहुत छोटे, न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं। उनमें प्रत्येक में एक ही छन्द होता है किन्तु अन्तिम पद्य (सर्ग का) भिन्न छन्द का होता है। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना होनी चाहिए। इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु (छहों), वन, समुद्र, संभोग,

---

१—साहित्यदर्पण की शालिग्रामशास्त्रीकृत विमला नाम की हिन्दी टीका पृष्ठ ३०८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना चाहिए। इसका नाम कवि के नाम से (माघ), या चरित्र के नाम से (जैसे कुमारसंभव) अथवा चरित्र नायक के नाम से (जैसे रघुवंश) होना चाहिए। कहीं इनके अतिरिक्त भी नाम होता है (जैसे भट्टि) सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम रखा जाता है। भामह के महाकाव्य के लक्षण में किंचित् विभिन्नता है शेष प्रायः वही हैं।

'किरातार्जुनीयम्' में ये लक्षण पूर्ण रूप से घटित होते हैं। इस महाकाव्य का कथानक महाभारत के वनपर्व से लिया गया है तथा अठारह सर्गों में कथा का निबन्धन हुआ है। इसके नायक अर्जुन हैं धीरोदात्तादि गुणों से सम्पन्न सद्वंश क्षत्रिय हैं। प्रधान रस वीर है शेष शृंगारादि उसके सहायक हैं। प्रारंभिक तीन सर्गों में आरंभावस्था से समन्वित मुखसन्धि है। यहाँ बीज पड़ जाता है। चौथे से छठवें सर्ग के मध्य तक यत्नावस्था से युक्त प्रतिमुख सन्धि है। कथा का सूत्र दोनों सर्ग के दसवें सर्ग तक प्रायः सब एक-सा जाता है क्योंकि इन सर्गों में बींच-बीच में षट् ऋतु, सूर्योदय, सूर्यास्त, पर्वत, नदी, जलक्रीड़ा, रतिक्रीड़ा आदि का वर्णन है। चौथे में शरद्वर्णन, पाँचवें में हिमालय वर्णन है, ग्यारहवें सर्ग में कथा पुनः मन्थर गति से आगे बढ़ती है। इस सर्ग के अन्त तक प्राप्त्याशा से संयुक्त गर्भसन्धि है। सत्रहवें सर्ग तक नियताप्ति अवस्था से समन्वित विमर्श सन्धि है। अन्तिम अठारवें सर्ग में फलागम से सम्बद्ध निर्वहण सन्धि है। कथा ऐतिहासिक है, दिव्य पाशुपतास्त्र की प्राप्ति फल है।

"श्रियः कुरूणामधिपस्य पालिनीं प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।
स वर्णलिङ्गी विदितः समाययौ युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः॥"

वर्ण्यवस्तु का निर्देश प्रारंभ में हुआ है। सज्जनों की प्रशंसा पाण्डवों की सज्जनता के उत्कर्ष के रूप में तथा खलनिन्दा दुर्योधन की दुर्जनता के अपकर्म के रूप में की गई है। इसमें १८ सर्ग हैं, जिनमें से प्रथम में ४६, द्वितीय में ५९, तृतीय में ६० श्लोक हैं, चतुर्थ में ३७, पंचम में ५२ हैं। इस प्रकार अन्य सर्गों में भी लगभग यही क्रम है। अतः सर्ग न तो स्वल्प ही हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न दीर्घ हो। प्रत्येक सर्ग के अन्त में नियमानुसार छन्द बदल दिये गये हैं। पाँचवें और अन्तिम सर्ग में से प्रत्येक में भिन्न-भिन्न छन्दों का प्रयोग करके भारवि ने 'नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते' की सार्थकता सिद्ध कर दी है। मल्लिनाथ का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है :—

नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणस्यांशजः।
तस्योत्कर्षकृतेऽनुवर्ण्यचरितो दिव्यः किरातः पुनः॥
शृङ्गारादिरसोऽङ्गमत्र विजयी वीरः प्रधानो रसः।
शैलाद्यानि च वर्णितानि बहुशो दिव्यास्त्रलाभः फलम्॥

प्रथम सर्ग के अन्त में 'विदधति सोपधि सन्विदूषणानि' के द्वारा कवि ने अगले सर्ग की कथा की सूचना दे दी है कि युधिष्ठिर सन्धि तोड़ने जा रहे हैं। अन्तिम श्लोक 'रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः' से ज्ञात होता है कि महाराज युधिष्ठिर को विपत्ति के बाद पुनः लक्ष्मी प्राप्त होगी। दूसरे सर्ग के ५४वें श्लोक में व्यासागमन की सूचना द्वारा तृतीय सर्ग के विषय का उपक्रम बाँधा जा रहा है। इस प्रकार अन्य सर्गों में भी आगे के सर्ग की कथा का संकेत मिलता जाता है। दशम में ऋतुवर्णन, पंचम में हिमालय, चतुर्थ में काम्यक वन और शरद् ऋतु, अष्टम में अप्सराओं की क्रीडा तथा नवम में सन्ध्यादि का विशद वर्णन किया गया है। चौदहवें सर्ग में किरात की सेना का अर्जुन के ऊपर आक्रमण तथा पन्द्रहवें से अठारहवें सर्ग तक अर्जुन और किरात के युद्ध का सजीव वर्णन है। इसके नायक अर्जुन तथा प्रतिनायक किरात के नाम पर किरातार्जुनीयम् नाम रखा गया है। उक्त सामग्री के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'किरातार्जुनीयम्' में महाकाव्य के लक्षण पूर्णतया गठित होते हैं। अतः यह एक अत्यन्त उत्कृष्ट महाकाव्य है।

किरातार्जुनीयम् का कथानक

प्रथम सर्ग—जब महाराज युधिष्ठिर दुर्योधन के साथ द्यूत में हारकर अपने भाइयों तथा द्रौपदी के साथ द्वैतवन में निवास करते थे, उस समय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्होंने दुर्योधन की राज्यव्यवस्था जानने के लिए एक वनेचर को ब्रह्मचारिवेष में भेजा। वह सब वृत्त जानकर महाराज युधिष्ठिर के पास लौट आया और यथार्थ समाचार वतलाने की क्षमायाचना कर कहने लगा कि दुर्योधन अनीति से प्राप्त पृथ्वी का नीतिपूर्वक शासन कर रहा है। वह शत्रु तथा मित्र को धर्मशास्त्रानुसार दण्ड देता है किसी के साथ कोई पक्षपात नहीं, राजा लोग उसे कर देते हैं तथा उसकी आज्ञा का सभी पालन करते हैं। प्रजा दुर्योधन के राज्य की सुव्यवस्था से अत्यन्त प्रसन्न है। सर्वत्र कृषि उत्तम रूप से होती है। दुःशासन को युवराज बनाकर स्वयं यज्ञादि में निरत रहता है। इसके पश्चात् महाराज युधिष्ठिर ने उसे पारितोषिक देकर विदा किया और स्वयं द्रौपदी के प्रासाद में जाकर अपने भाइयों के सामने वनेचर द्वारा प्राप्त समाचार कह सुनाया। उसे सुनकर द्रौपदी अत्यन्त क्षुब्ध हुई और भर्त्सनापूर्वक महाराज को वहुत कुछ कह सुनाया। उसने कहा—भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा मेरी जो दुर्दशा हुई है, उस सबके एकमात्र कारण आप ही हैं। आपकी शान्ति-नीति के कारण आपको तथा आपके भाइयों को अगणित कष्ट उठाने पड़ हैं। फिर भी आप नहीं चेतते। शान्ति से तो मुनियों को मोक्षरूप सिद्धि प्राप्त होती है राजाओं को राज्योपलब्धि नहीं। राज्य तो पराक्रम से मिलता है, जैसा कि कहा गया है 'वीरभोग्या वसुन्धरा।' यदि आप शान्ति को ही सुख का साधन मानते हैं तो धनुष का परित्याग कर जटा वढ़ा कर अग्नि में हवन कीजिए। हे महाराज! आप सब प्रकार से समर्थ हैं। आपको समय की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। विजयेच्छु राजा तो बहाने से सन्धि भी तोड़ देते हैं। इस प्रकार द्रौपदी उन्हें शीघ्र युद्ध के लिए प्रेरित करती है।

द्वितीय सर्ग—द्रौपदी की बातें भीम के मन के अनुकूल थीं। अतः उन्होंने भी समर्थन करते हुए कहा कि द्रौपदी का कथन वहुत ही उपयुक्त है। आप में पुरुषार्थ होते हुए भी शत्रु को वढ़ते देख चुप रहना उचित नहीं है। शीघ्र ही उसका दमन करना चाहिए। आपके दिग्विजयी चारों भाइयों के तेज को कौन सहन कर सकता है। अतः आप शीघ्र ही युद्ध छेड़ दीजिए। सब सुनकर युधिष्ठिर ने कहा कि हे भीम, जो कुछ तुमने कहा वह सब समयोचित शास्त्रसंगत है तथापि मैं विचारपूर्वक काम करना चाहता हूँ। क्योंकि बिना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोचे-समझे सहसा कोई काम नहीं करना चाहिए। असमय में क्रोध करना अत्यन्त अनुचित है। धैर्यपूर्वक प्रतिज्ञात अवधि की प्रतीक्षा करना उचित है। अवधि के बाद राजा लोग हमारी सहायता करें। अहंकारी मनुष्य से कोई प्रसन्न नहीं रहता। समय पड़ने पर लोग उसका साथ छोड़ देते हैं। इस प्रकार जब महाराज युधिष्ठिर भीम को समझा रहे थे, उस समय दैवसंयोग से भगवान् वेदव्यास वहाँ आ पहुँचे। सभी ने उठकर उनका स्वागत किया तथा सादर उन्हें उच्च आसन पर बैठाया तथा आज्ञा पाकर स्वयं भी सम्मुख बैठ गये।

तृतीय सर्ग—उन्होंने व्यास जी की सम्मति ली तो व्यास जी ने भी युद्ध की अनिवार्यता पर बल देते हुए कहा कि प्रबल शत्रु को जीतने के लिए दिव्य अस्त्र की आवश्यकता है। अतः अर्जुन को मेरे कथनानुसार मुनियों की भाँति तपस्या करनी चाहिए। यक्ष तपःस्थल पर शीघ्र ही पहुँचा देगा। व्यास जी के अन्तर्धान होते ही यक्ष अर्जुन के सामने उपस्थित हो गया। उन्हें जाने के लिए उद्यत देख द्रौपदी ने कहा कि जब तक तपस्या पूरी न हो हम लोगों के लिए व्यग्र न होना; क्योंकि दृढ़ आग्रह के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। तेजस्वी का अपमान प्राणहानि से बढ़कर होता है। शत्रुकृत दुर्व्यवहार अब तक मुझे पीड़ा देता है। इन्द्र भगवान् से सफलता की कामना करती हुई द्रौपदी ने अर्जुन को विदा दी। उन्होंने कवच पहन कर तलवार, धनुष और तरकश लेकर यक्ष द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करने के लिए प्रस्थान किया। उनके चले जाने पर लोगों को अत्यन्त दुःख हुआ, पर समझा-बुझाकर सबों ने अपने चित्त को शान्त किया। आकाश में दुन्दुभि बजने लगी तथा देवताओं ने पुष्पवृष्टि की।

चतुर्थ सर्ग—इसमें यक्ष अर्जुन का मार्ग प्रदर्शन करता है तथा इन्द्रकील पर्वत की ओर जाते हुए अर्जुन शरद् की शोभा देख कर अत्यन्त मुग्ध हो गये। इस प्रकार अर्जुन को शरद् की शोभा को देखने में आसक्त जानकर यक्ष भी शरद् सम्बन्धी बातें करते हुए गोपाङ्गनाओं के मधुर गीतों का वर्णन करने लगा, जिन सुमधुर गीतों को सुनकर हरिणियाँ तृण चरना भूल गई थीं। इस सर्ग में शरत्कालीन दृश्य का अंशतः कवि के वर्णन द्वारा और अंशतः यक्ष के शब्दों द्वारा एक सुन्दर चित्र खींचा गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चम सर्ग—इसमें इन्द्रकील पर्वत की ओर जाते हुए अर्जुन ने हिमालय की शोभा का अवलोकन किया। कवि ने बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है। यक्ष हिमालय की रहस्यमय स्थिति पर तथा शिव और पार्वती के साथ उनके घनिष्ठ सम्बन्ध पर जोर देता है। यक्ष अर्जुन को इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करने के लिए इस प्रकार उपदेश देता है—

हे अर्जुन, शस्त्रधारण कर इस पर्वत पर आप तपस्या करें। तप में बहुत सी विघ्न-बाधाओं के बाद आपको सिद्धि प्राप्त होगी। अतः जितेन्द्रिय होकर तप में संलग्न हो जाइए, भगवान् शंकर से वरप्राप्ति में सफलता मिलेगी। इस प्रकार आशीर्वाद देकर यक्ष अन्तर्हित हो गया।

षष्ठ सर्ग—इसमें अर्जुन तप में संलग्न हो गये। उनकी तपस्या से इन्द्रकील पर रहने वाले गुह्यक अत्यन्त भयभीत हो गए। वे इन्द्र से सहायतार्थ प्रार्थना करते हैं तथा तप भङ्ग करने के लिए गन्धर्वों और अप्सराओं को भेजते हैं। इन्द्र के आदेश से वे अप्सराएँ अनेक आभूषणों से आभूषित होकर स्तनभारों से अवनत एवं अत्यन्त भ्रूविक्षेप, कटाक्षपात आदि चेष्टाओं से सबको मोहित करती हुई इन्द्र को प्रणाम कर अर्जुन के पास इन्द्रकील पर्वत की ओर चल पड़ीं।

सप्तम सर्ग—इन्द्र ने इन अप्सराओं की रक्षा के लिए रथ, हाथी, घोड़ों के साथ अपने सेवकों को भेजा। मार्गगमन-जनित क्लेशों का कवि मनोहर वर्णन करता है। क्रमशः वे अप्सराएँ मन्दाकिनी के पास पहुँचीं। वहाँ नदी के तरंगों के सम्पर्क से शीतल एवं सुगन्धित पवन ने उनकी श्रान्ति को दूर किया। अर्जुन के तप में विघ्न डालने के लिए अनेक प्रकार की वार्तालाप करती हुई वे इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचीं। बाद में गंधर्व वहाँ पहुँच कर हरी-हरी घासों से भरी हुई भूमि की शोभा बढ़ाने लगे। वहाँ वे निवास करने लगे। उन लोगों के रहने से उस पर्वत की शोभा भी नगर के समान हो गई।

अष्टम सर्ग—ये अप्सराएँ गन्धर्वगणों से युक्त, अनेक सुख-साधनों से सम्पन्न, कांतियुक्त होती हुई बिजली की तरह चमकने लगीं और अपनी माया की शक्ति से तुरन्त बनाये गये प्रासादों का त्याग कर पुष्पचयनार्थ भ्रमण करती हैं। बाद में गङ्गा-स्नान के लिए गन्धर्वों को आमन्त्रित करती हैं। स्नान के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृश्य का एवं गन्धर्वों और अप्सराओं के जलक्रीड़ादि का वर्णन अत्यन्त आकर्षक एवं हृदयग्राही है।

नवम सर्ग—इस सर्ग में सायंकाल, चन्द्रोदय, सुरापान तथा प्रभातवर्णन किया गया है। सर्वप्रथम कवि उत्प्रेक्षा द्वारा सूर्यास्त का वर्णन करता है। एक ओर तो सूर्य के अस्त होने पर चक्रवाक विरह का अनुभव करने लगा, दूसरी ओर स्वच्छ चन्द्र-चन्द्रिकाएँ दिगन्तों को व्याप्त कर प्रकाशित होने लगीं। हिमवत् शुभ्र चन्द्रकिरण नीलाकाश में समुद्रजल-मध्य-प्रविष्ट स्वच्छ गङ्गा-जल के समान फैल कर शोभायमान होने लगा। इस अनुकूल समय को सहायक मानकर कामदेव ने विश्वविजयी चाप का सन्धान किया। सुरवनिताएँ केलि के लिए उन्मत्त हो गईं तथा शृंगारादि से अपने को सुसज्जित करने लगीं। अपने प्रेमियों के साथ सुरापान करने लगीं तथा प्रेमानन्द में विभोर हो गईं। इतने में ही रात बीतकर प्रभात होने को आया। प्रभात-पवन धीरे-धीरे बहने लगा।

दशम सर्ग—अर्जुन को लुभाने के लिए उत्तम आभूषणों से आभूषित, सुगन्धित साधनों से प्रसन्न होकर अप्सराएँ आईं। अनेक प्रकार के हाव-भाव, नृत्यादि प्रदर्शित करने लगीं; गन्धर्वगण मृदंगवीणा बजाने लगे। सारी ऋतुएँ एक साथ एकत्र हो गईं। शीतल मन्द सुगन्ध पवन प्रवाहित होने लगा। सुराङ्गनाओं की सारी शृंगार-चेष्टाएँ विफल हो गईं। कोई दूती द्वारा सन्देश भेजतीं, कोई कटाक्ष-विक्षेप करती हुई हाव-भाव चेष्टा द्वारा लास्य कर रही थीं। परन्तु जितेन्द्रिय अर्जुन के प्रति उन अप्सराओं के सारे हाव-भाव शृंगार-रति-चेष्टा, कटाक्षपात, हंसगमनादि प्रयास निष्फल ही होते गये। इस प्रकार दृढ़प्रतिज्ञ अर्जुन को तपश्च्युत करने में असमर्थ होकर वे गन्धर्व और अप्सराएँ अपने-अपने स्थान को चली गईं।

एकादश सर्ग—अप्सराओं के लौट जाने पर उनके मुख से अर्जुन की जितेन्द्रियता का वृत्तान्त श्रवण कर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा स्वयं अत्यन्त भद्र मुनिवेश में प्रकट हुए। उन्होंने अर्जुन की तपस्या के उत्साह की प्रशंसा की। साथ ही यह भी कहा कि शस्त्र धारण करना और तपस्या करना परस्पर विरोधी हैं। अर्जुन ने उनके कथन को सत्य मानते हुए अपनी परिस्थिति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बतलाई कि दुर्योधनादि शत्रुओं से अपमानित होकर वे तपःप्रवृत्त हुए हैं, अपने कुटुम्ब के सम्मान की रक्षा में उन्हें सब कुछ करना है। भगवान् व्यास से आदिष्ट होकर अस्त्र ग्रहण कर क्षत्रिय कुल के इष्टदेव इन्द्र की आराधना के लिए आये हैं। मेरे जेष्ठ भ्राता युधिष्ठिर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार शत्रु-वधार्थी होकर मेरी प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं। मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। मेरी प्रतिज्ञा है कि या तो मैं इस पर्वत में विलीन हो जाऊँगा या अपने इष्टदेव इन्द्र की आराधना कर अपयश मिटाऊँगा। इन्द्र इससे बहुत प्रभावित हुए और अर्जुन को महादेव की आराधना करने के लिए विजयार्थ उपदेश देकर अन्तर्हित हो गये।

द्वादश सर्ग—शिव जी के आराधनार्थ अर्जुन कठिनतम तपस्या करने लगे। कठिन तप से शरीर के कृश होने पर भी ओज नहीं घटा बल्कि बढ़ता ही गया। महर्षिगण अर्जुन की घोर तपस्या से व्याकुल होकर शिव जी की शरण में पहुँचे तथा उनसे प्रार्थना करने लगे। उन्होंने कहा कि इस तपस्वी में एक विचित्रता है कि तपस्वी होते हुए भी तापसवेष के विरुद्ध धनुष, बाण, कवच तथा खड्ग भी धारण किये हुए है। भगवान् शंकर ने उनसे कहा—यह तो कृष्ण का मित्र अर्जुन है जो भगवान् नारायण का अंश होकर पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ है। अपने प्रबल शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की कामना से तप में निरत हुआ है। देव-कार्य में संलग्न इसके तप में विघ्न डालने के लिए मूक दानव छल से वराह रूप धारण करेगा। अर्जुन की रक्षा के लिए मैं भी किरात-वेष में अपने गणों के साथ वहाँ उपस्थित रहूँगा। मेरे बाण द्वारा वराह के मारे जाने पर अर्जुन अपने बाण द्वारा विद्ध जानकर मृगया के लिए मुझसे झगड़ पड़ेगा। उस समय मेरे साथ घोर संग्राम करते हुए तुम लोग अर्जुन को देखोगे। तदनन्तर शिव जी किरातवेष धारण कर तैयार हो गये। अर्जुन के आश्रम पर पहुँच कर वहाँ वराहरूपधारी मूक दानव को अर्जुन की ओर धावा करते देख किरातों (जो शिवगण थे) के साथ शिवजी उसके पीछे चल पड़े।

त्रयोदश सर्ग—मूकदानव को अपनी ओर आते हुए देख कर अर्जुन तर्क करने लगे कि मेरे तप के प्रभाव से इस स्थान पर सर्वत्र शान्तिमय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वातावरण हो गया है। यह वराह हिंसावृत्ति से मेरी ओर आ रहा है तथा इसे देखकर मेरे मन में कालुष्य उत्पन्न होता है, अतः वराहरूपधारी यह कोई दानव ही है। इस प्रकार सोचकर उन्होंने अपने गाण्डीव धनुष पर वाण सन्धान किया। उधर शिव जी ने तुरन्त ही उस वराह को लक्ष्य करके अपने पिनाक धनुष से वाण चलाया। उस वाण ने वराह के शरीर को विद्ध कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। अर्जुन के द्वारा छोड़ा हुआ वाण भी उसी समय लक्ष्य को विद्ध कर पार चला गया। मृत वराह के पास अर्जुन अपना वाण लेने गये। उसी समय शिव जी द्वारा भेजा हुआ किरात उसको अपने स्वामी के नाम पर माँगने लगा तथा अर्जुन को वाण लौटाने के लिए अनेक प्रकार से समझा कर कहा।

चतुर्दश सर्ग—उस वनेचर के गर्वीले वचनप्रपंचों द्वारा प्रस्तुत की हुई माँग को अर्जुन ने एक लम्बे भाषण द्वारा अस्वीकार कर दिया। उसके प्रत्याख्यान को सुनकर वह वनेचर अपनी गर्वोक्ति से अर्जुन को डराता हुआ महादेवजी के पास चला गया। बाद में शिवजी की आज्ञा से किरात-सेना गरजती हुई अर्जुन से युद्धार्थ चल पड़ी। शिवजी भी अपना पिनाक धनुष तान कर सेना के अधिपति बने। शिवजी के वे सब गण पहुँचते ही एक बार ही अर्जुन पर टूट पड़े, परन्तु उनके द्वारा अनेक अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार करने पर भी अर्जुन का एक बाल भी बाँका नहीं हुआ। बाद में अर्जुन गाण्डीव लेकर युद्धार्थ किरात-सेना पर टूट पड़े। उनकी बाणवृष्टि से सारी किरात-सेना मूर्छित हो गई।

पंचदश सर्ग—इस सर्ग में शिवजी और अर्जुन के युद्ध का वर्णन है। वीर अर्जुन के वाणप्रहारों से सारा भूतवर्ग संत्रस्त हो गया। शिवजी जी की सेना अपने आयुधों को छोड़कर भाग गई। उन सैनिकों को कार्त्तिकेय समझाने लगे। शिव और स्कन्ध भागते हुए अपने गणों को पुनः एकत्र करते हैं। शिवजी ने उनको अभयवाक्य देकर सन्तुष्ट किया। बाद में शिव और अर्जुन में घोर युद्ध होने लगा। शिवजी ने अर्जुन द्वारा फेंके हुए बाणों को बड़ी चतुरता से काट दिया। अर्जुन भी शिववाणों को छिन्न-भिन्नकर समरभूमि में विचरने लगे। शिवजी ने दयार्द्र होकर मर्म-वेधी बाणों को नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फेंका। अर्जुन भी उनके अनेक वाणों से आहत होकर भी नहीं घबड़ाये। इनके रोमांचकारी युद्ध को देखकर देवता, महर्षि तथा प्रमथादि गण सभी विस्मित हो गये।

षोडश सर्ग--अर्जुन किरातपति की संग्राम-कुशलता देख कर विस्मित हो गये। उन्होंने दिव्यास्त्रप्रयोग द्वारा ही शत्रु के पराक्रम को विफल करना चाहा। यह सोचकर गांडीव धनुष पर प्रस्वापन नामक महास्त्र चढ़ाया। उसके प्रभाव से सारी सेना मूच्छित हो गई तथा सर्वत्र अन्धकार छा गया। उस समय किरात-वेशधारी शिव जी के ललाट से क्रोध के मारे आग की चिनगारी निकलने लगी। उसके प्रकाश से अन्धकाररहित होकर प्रमथ-गण मूर्छा त्याग कर पुनः युद्धार्थ सन्नद्ध हो गये। अर्जुन ने प्रस्वापनास्त्र को विफल जानकर नागपाशों को चढ़ाया। उसके प्रभाव को दूर करने के लिए शिवजी गरुडास्त्र का प्रयोग कया। तदनन्तर अर्जुन ने आग्नेयास्त्र द्वारा चारों ओर आग की लपटें फैला दीं। भगवान् शंकर ने आग को शान्त करने के लिए वरुणास्त्र का प्रयोग किया। इसके प्रभाव से आकाश मेघाच्छन्न हो गया तथा मूसलाधार वृष्टि होने लगी। इस प्रकार अर्जुन ने अपने सभी अस्त्रों को विफल होते देख शिवजी के साथ बाहुयुद्ध ही करने की इच्छा की।

सप्तदश सर्ग--सारे दिव्यास्त्रों के समाप्त होने पर यद्यपि अर्जुन भयभीत हुए तथापि धैर्य धारण कर पुनः युद्धार्थ संनद्ध हो गये। अर्जुन के बाणों से आहत होकर शिवजी की सारी सेना थर्रा गई। भगवान् शंकर ने तुमुल युद्ध करके अर्जुन के सारे बाणों को एक साथ ही नष्ट कर दिया। फिर मर्मवेधी बाणों से अर्जुन को व्यथित किया। वे कवचहीन होकर भी अत्यन्त देदीप्यमान हुए। उनका खड्ग भी शिव जी ने छिन्नभिन्न कर दिया। तब वे बड़ी-बड़ी चट्टानों और बड़े-बड़ पेड़ों के तनों से शिवजी पर आक्रमण करने लगे, पर सब कुछ निष्फल ही रहा।

अष्टादश सर्ग--निःशस्त्र होने पर अर्जुन ने शिवजी के साथ बाहुयुद्ध करना निश्चित किया। दोनों के बाहुयुद्ध से उत्पन्न ध्वनि उस समय कन्दराओं में व्याप्त थी। दोनों का शरीर रुधिर से लथपथ था जिससे पहचानने में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमथगणों को भी धोखा होता था। बाहुयुद्ध करते-करते अर्जुन ने आकाश में उठे हुए शिवजी के चरणों को पकड़ लिया। पादग्रहण करते ही शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें गले लगा लिया। तदनन्तर किरात वेश का परित्याग कर भगवान् शंकर भस्मावृत चन्द्रकला से शोभित होकर अपने स्वरूप में प्रकट हो गये। उनके उस रूप को देखकर अर्जुन उनके सामने नतमस्तक हो गय। अर्जुन उठकर अपने शरीर को वाण, कवच, चर्म आदि से युक्त देख कर अत्यन्त विस्मित हुए। तक अर्जुन ने भगवान् शंकर से अभीष्ट वर माँगा। तदनन्तर आशुतोष शिवजी ने नतमस्तक अर्जुन को सान्त्वना देकर गुप्त रहस्य के साथ पाशुपतास्त्र और समग्र धनुर्वेद पढ़ाया। इन्द्रादि ने भी अमोघ आशीर्वादपूर्वक अपने-अपने अस्त्रों को देकर अर्जुन को प्रोत्साहित किया। अन्त में सफलमनोरथ अर्जुन शिवजी से आदिष्ट होकर धर्मावतार महाराज युधिष्ठिर के पास लौट आये।

महाभारत की कथा से किरात में भारविकृत परिवर्तन

'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य का मूलस्रोत महाभारत है। इसका कथानक बहुत कुछ मूलस्रोत के समीप है और साम्य होते हुए भी भारवि ने यत्र तत्र परिवर्तन अपने लक्ष्य की सिद्धि की दृष्टि से किये हैं। प्रथम, द्वितीय सर्ग में द्रौपदी, भीम और युधिष्ठिर के संवादों के कारण कथानक का प्रारंभिक भाग अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं सजीव हो गया है। तृतीय सर्ग में व्यास का युधिष्ठिर को उपदेश देना कवि की कल्पना है। महाभारत की मूलकथा में व्यास का कुछ स्थान नहीं है और युधिष्ठिर आदि का वार्तालाप भी महत्त्वहीन है। प्रारंभ में ही भारवि ने राजनीति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। कवि द्वारा कर्मयोग के दार्शनिक सिद्धान्तों का उपदेश देखकर संन्यास तथा शान्ति के सिद्धान्तों का खण्डन-सा कर दिया गया है। भारवि ने ग्यारहवें सर्ग में इन्द्रार्जुन संवाद द्वारा निवृत्तिमूलक संन्यासवाद का खण्डन कर प्रवृत्तिपरक व्यवहारवाद की स्थापना की है।

महाभारत में व्यास ने युधिष्ठिर को मन्त्र दीक्षा दी है तथा युधिष्ठिर द्वारा अर्जुन को मन्त्र दिया गया है। किन्तु किरात में भारवि ने व्यास ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा अर्जुन को मन्त्र दिलाया है। इस प्रकार उनका काव्य मूलकथा के अनावश्यक विस्तार से वच गया।

मूलकथा में मन्त्र के वल पर अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचते हैं पर किरातार्जुनीय में व्यास की आज्ञा से वे यक्ष द्वारा वहाँ पहुँचाये जाते हैं।

मार्ग में आये हुए हिमालय, गन्धमादन और इन्द्रकील पर्वतों का वर्णन जोड़कर किरात को महाकाव्यत्व प्रदान किया गया है। इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचकर अर्जुन ने घोर तप किया। उनकी तपश्चर्या का वर्णन करना तथा उससे चराचर का प्रभावित होना कवि की अपनी निजी कल्पना है। महाभारत में इसका उल्लेख नहीं है।

मूलकथा में तपस्यारत अर्जुन को इन्द्र ने तप से विरत होने का उपदेश दिया है, किन्तु किरात में इन्द्र वनेचरों द्वारा अर्जुन के तपोऽनुष्ठान का वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, पर हर्ष का वेग रोकते हुए उनकी तपस्या के परीक्षणार्थ गन्धर्वों और अप्सराओं को भेजा। उन्होंने जाकर अनेक साधनों द्वारा अर्जुन को डिगाना चाहा, पर उनकी दृढ़ता से वे सब अपने प्रयत्नों में विफल होकर लौट गये। गन्धर्वों के साथ अप्सराओं के विलासपूर्वक क्रीडादि के वर्णन ने महाकाव्य में चार चाँद लगा दिये हैं। इससे कवि को सन्ध्या, रात्रि, सुरतादि वर्णन करने का अच्छा अवसर मिल गया है, जो महाकाव्य के सर्वथा अनुकूल है। महाभारत में शिव को पार्वती और कुछ गणों के साथ किरातवेश में आते हुए दिखाया गया है तथा शिव और अर्जुन का मल्लयुद्ध वर्णन किया है। पार्वती तथा गणलोग केवल दर्शक रूप में उपस्थित हैं। उन्होंने स्वयं कोई भाग युद्ध में नहीं लिया, पर किरात में स्कन्द के सेनापतित्व में शिव सहित उनकी सेना के साथ अर्जुन का युद्ध हुआ है, जिसमें अर्जुन ने विजय पाई। फिर स्वयं शिव ने किरातवेश में मायावी अस्त्रों द्वारा अर्जुन से युद्ध किया, जिसमें अर्जुन के सारे अस्त्र विफल हो गये। तदनन्तर दोनों में मल्लयुद्ध होने लगा। इस प्रकार शिव और अर्जुन के युद्ध का वर्णन चार सर्गों में अर्थात् पन्द्रह से अठारह तक अत्यन्त रोमहर्षण एवं सजीव हुआ है। इसमें कवि को युद्ध के दृश्य, मायावी अस्त्रों और समग्ररूप से सेना के वर्णन का अवसर प्राप्त हो जाता है। दोनों में युद्ध की समाप्ति में बड़ी विभिन्नता है। महाभारत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के अनुसार किरात से युद्ध करता हुआ अर्जुन मूर्छित हो गया और मूर्छानिवृत्ति के बाद उसने देखा कि जो माला अर्जुन ने प्रातःकाल शिव की पार्थिव मूर्ति पर चढ़ाई थी वह किरात के सिर पर विराजमान है। इससे वह समझ गया कि किरात स्वयं शिव ही है। इसके विपरीत किरात में वर्णन है कि शिव मल्ल-युद्ध करते-करते उछल कर आकाश की ओर चले जा रहे थे, किन्तु अर्जुन ने कूद कर तुरन्त ही नीचे से उनके चरण पकड़ लिए। आशुतोष भगवान् शंकर इस पर बहुत प्रसन्न हुए और स्वयं प्रकट होकर दर्शन दिया। महाभारत के अनुसार अर्जुन पाशुपतास्त्र प्राप्त करन के पश्चात् स्वर्ग दर्शनार्थ जाते हैं। वहाँ से भाइयों के पास लौटते समय तक बहुत से आख्यान तथा उपाख्यानों का वर्णन मिलता है, जिससे कथानक में शिथिलता आ जाती है। किन्तु किरात में पाशुपतास्त्र की प्राप्ति के बाद अर्जुन अविलम्ब लौटकर अपने भाइयों एवं द्रौपदी से मिलते हैं।

भारवि की काव्यप्रतिभा

कालिदास के समय से भारवि के समय तक आते-आते काव्य का रूप बदलता गया। अब कवियों की अभिरुचि कलापक्ष में कृत्रिम सौन्दर्य अधिक मात्रा में लाने की हो गई। कालिदास और भारवि के बीच किसी काव्य का पता नहीं, केवल मन्दसोर का वत्सभट्टि रचित शिलालेख ही पाया जाता है। भारवि स्पष्टतः कलापक्ष के कवि हैं। उनका विशेष ध्यान अर्थगाम्भीर्य पर रहा है। इसलिए पुराने समीकक्षों ने 'भारवेरर्थगौरवम्' कहा है। कला के सम्बन्ध में स्वयं उनका मत किरात के द्वितीय सर्ग के निम्नलिखित २७वें श्लोक से पता चलता है :—

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्।।

अर्थात् काव्य के पद प्रयोग में अस्पष्टता न हो, अर्थगांभीर्य पर विशेषरूप से ध्यान दिया जाय, वाणी से अर्थ में पुनरुक्ति न हो और अर्थ-सामर्थ्य नष्ट न हो। वस्तुतः थोड़े शब्दों में विपुल अर्थ की अभिव्यक्ति ही अर्थ गौरव है, जिसे दूसरे शब्दों में 'गागर में सागर भरना' कहते हैं। मल्लिनाथ की 'घण्टापथ' नाम की टीका का यह श्लोक द्रष्टव्य है :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"नारिकेलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते ।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम् ।।"

मल्लिनाथ ने भारवि के वचन को 'नारिकेलफलसम्मित' तथा 'रसगर्भनिर्भरसार' बताया है। जिसका आशय है कि वह बाहर से कठोर और भीतर रसपेशल किन्तु सारमय है। कृष्ण कवि ने उनके सम्बन्ध में कहा है—

"प्रदेशवृत्त्यापि महान्तमर्थं प्रदर्शयन्ती रसमादधाना ।
सा भारवेः सत्पथदीपिकेव रम्याकृतिः कैरिव नोपजीव्या ।।"

वास्तव में भारवि की कृति महान् अर्थयुक्त तथा रस से ओतप्रोत है। एक समालोचक ने 'प्रकृतिमधुरा भारविगिरः' कहा है। शारदातनय के अनुसार उनकी वाणी में भाव और रस का तादात्म्य है 'तादात्म्यं भावरसयोः भारविः स्पष्टमूचिवान्'। किरात के प्रथम सर्ग का वनेचर तक 'सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी' और 'विनिश्चितार्था' वाणी का प्रयोग कर सकता है। वह 'प्रवृत्तिसारा' वाणी से युधिष्ठिर को प्रभावित करने में समर्थ है। भारवि अत्यधिक गंभीर अर्थ को प्रचलित और सरल शब्दों में सन्निविष्ट कर देते हैं। उनका विश्वास निम्नाङ्कित छन्द में निहित है :—

विविक्तवर्णाभरणासुखश्रुतिः प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम् ।
प्रवर्त्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ।।

(किरात० १४।३)

अर्थात् स्फुटवर्ण ही जिसके आभूषण हों, जो कर्णसुखद हो, शत्रु को भी आनन्दविधायक हो तथा जिसके अर्थ गौरवशाली हों, ऐसी वाणी का विकास बिना पुण्य के नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि प्रसादगुणयुक्त किन्तु अर्थगाम्भीर्यसे सम्पन्न शैली भारवि की विशेषता है। द्रौपदी की वाणी इतनी अर्थगाम्भीर्यमण्डिता है कि बृहस्पति वागधिप होते हुए भी विस्मित हो जाते हैं 'अपि वागधिपस्य दुर्वचं वचनं तद्विदधीत विस्मयम्।' उसका वचन व्यथितकारी होते हुए भी परिणाम में सुखद है :—

परिणामसुखे गरीयसि व्यथकेऽस्मिन् वचसि क्षतौजसाम् ।
अतिवीर्यवतीव भेषजे बहुरल्पीयसि दृश्यते गुणः ।।

(किरात०२।४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि का अर्थगौरव निम्नलिखित सूक्तियों से स्पष्ट विदित होता है जिससे उसने अपने विशाल व्यावहारिक ज्ञान को स्वल्प शब्दों में सन्निविष्ट कर दिया है :—

'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' । 'दुर्लभाः सर्वमनोरमाः गिरः' । 'विचित्र-रूपाः खलु चित्तवृत्तयः, वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुषु, सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् । वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः । भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः' इत्यादि ।

राजनीति के पाँच अंगों से निर्धारित नीति, राजकोष और सेना का उद्गम इस श्लोक में बतलाया गया है :—

प्रभवः खलु कोशदण्डयोः कृतपञ्चांगविनिर्णयो नयः ।
स विधेयपदेषु दक्षतां नियतिं लोक इवानुरुध्यते ।।

(किरात० २।१२)

सदा अपकार करने वाले राजा के साथ की गई सन्धि को भङ्ग कर देना चाहिए :—

न समयपरिरक्षणं क्षमं ते निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः ।
अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशाः विदधति सोपधिसन्धिदूषणानि ।।

(किरात० १।४६)

सफल क्रोध वाले मनुष्य के सभी वशीभूत हो जाते हैं किन्तु क्रोधहीन व्यक्ति उपेक्षित रहता है :—

अबन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः ।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना, न जातु हार्देन न विद्विषादरः ।।

(किरात० १।३३)

शत्रु की दुरन्त उन्नति भी सह्य है, पर सुखद परिणामवाली हानि नहीं :—

द्विषतामुदयः सुमेधसा गुरुरस्वन्ततरः सुमर्षणः ।
न महानपि भूतिमिच्छता फलसम्पत्प्रवणः परिक्षयः ।। २ । ८

समयानुकूल मृदुता एवं तिग्मता धारण करने वाला राजा सूर्य-प्रकाश के समान सम्पूर्ण लोक पर अपना आधिपत्य जमा लेता है :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समवृत्तिरुपैति मार्दवं समये यश्च तनोति तिग्मताम् ।
अधितिष्ठति लोकमोजसा स विवस्वानिव मेदिनीपतिः ।।२। ३८

इसके अतिरिक्त भारवि ने अपने चरित्र-चित्रण एवं प्रकृति-चित्रण में भी अर्थगौरव का सन्निवेश किया है। उनके पात्रों में वड़ी सजीवता है। आजन्म वनवासी वनेचर प्रणाम करके सत्य बात कहने में अपनी शिष्टता का परिचय देता है। अपमानज्वालासंतप्ता द्रौपदी भी शिष्टतापूर्वक अपने पति युधिष्ठिर से कहती है :—

भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम् ।
तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां निरस्तनारीसमया दुराधयः ।।

(किरात० १, १२८)

प्रकृति-चित्रण में सन्ध्या समय चरागाह से लौटती हुई गायों का कितना स्वाभाविक वर्णन निम्नलिखित श्लोक में किया गया है .—

उपारतः पश्चिमरात्रगोचरादपारयन्तः पतितुं जवेन गाम् ।
तमुत्सुकाश्चक्रुरवेक्षणोत्सुकं गवां गणाः प्रस्नुतपीवरोधसः ।।

(किरात० ४, १०)

इस श्लोक में भारवि ने वात्सल्य रस की मानो वर्षा कर दी है। छन्द और व्याकरण के अनूठे प्रयोगों से भी अर्थगौरव भरने की चेष्ट ाकी है। पन्द्रहवें सर्ग में चित्रकाव्य के रूप में सर्वतोभद्र विलोम के साथ-साथ एकाक्षर श्लोक इसके प्रमाण हैं। इस प्रकार भारवि ने अपने काव्य में प्रत्येक पहलू से अर्थ-गौरव का सन्निवेश करने की सफल चेष्टा की है। इसीलिए कीथ[1] ने कहा है :—

"इनमें सन्देह नहीं कि भारवि की वर्णन-शक्ति और अपने सर्वोत्कृष्ट

1—There isno doubt of the power of Bharvi in description, his style at its best has a calm dignity which is certainly attractive, while he excels also in the observation and record of the beauties and of maidens.

A History of Sanskrit Literature by *A. B. Keith*

P. 112

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप में उनकी शैली में एक शान्तिपूर्ण गौरव है, जो सचमुच आकर्षक है। साथ ही वे प्रकृति और युवतियों के सौन्दर्य के निरीक्षण तथा चित्रण में भी सर्वातिशायी हैं।"

अन्ततः इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारवि का अर्थगाम्भीर्य अत्युत्कृष्ट है। उसमें वे सब कवियों को अतिक्रान्त कर जाते हैं।

शैली—उनकी वर्णन-शैली बड़ी अद्भुत है, शान्त गौरव से ओतप्रोत एवं आकर्षक है। प्रकृति और युवती की सुन्दरता को आँकने में उनकी निरीक्षण शक्ति बड़ी विलक्षण है। शरद्वर्णन के अन्तर्गत यह श्लोक इस विषय में द्रष्टव्य है :—

मुखैरसौ विद्रुमभंगलोहितैः शिखाः पिशंगी कलमस्य बिभ्रती।
शुकावलिर्व्यक्तशिरीषकोमला धनुःश्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति॥
(किरात० ४। ३६)

अर्थात् विकसित शिरीषपुष्प के समान कोमल वह शुकावलि अपने प्रवाल के टुकड़े के समान लाल रंग के चंचुओं से पीले रंग की धान की फलसंयुक्त शिखा धारण करती हुई इन्द्रधनुष की शोभा का अनुकरण कर रही है। (इन्द्रधनुष में अनेक रंग पाये जाते हैं) इसी प्रकार इन तोतों के समूहों में विविध रंग (चोंचें लाल, धान की बालि पीली और उनके बदन का रंग हरा तथा गले में पड़ी हुई रेखा अनेक रंग की होती है) होने से उसकी और इन्द्रधनुष की समानता हो रही है।

भारवि में कालिदास जैसा कथा-प्रवाह नहीं है। उनकी कथावर्णनशैली मन्द-मन्थर गति से चलती है। कालिदास अपनी कथा के मध्य आए हुए सुन्दर वर्णन पर प्रकाश डालते हैं पर पाठक के ऊबने के पूर्व ही कथासूत्र को पकड़ कर आगे बढ़ चलते हैं। पर भारवि इसके विपरीत कथा प्रसंग के मध्य आये हुए वर्ण्य-विषय के सम्बन्ध में अलंकार-वैचित्र्य तथा कल्पनासंपत्ति पूरी समाप्त करके आगे बढ़ते हैं। पाठक के ऊबने का ध्यान नहीं रखते। इस प्रकार के वर्णन से प्रबन्धकाव्य का प्रवाह बार-बार रुक जाता है तथा प्रभावोत्पादकता में कमी पड़ जाती है। पर किरात में कई स्थल प्रभावोत्पादकता से पूर्ण हैं। भारवि वीर तथा श्रृंगार रस के कवि हैं। दूसरे सर्ग में भीम की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्तियाँ वीर रसोचित दर्प से परिपूर्ण हैं। वे अपने बाहुबल से राज्य प्राप्त करना चाहते हैं, जैसे सिंह अपने हाथों से मारे हुए हाथियों से ही अपनी जीविका का निर्वाह करता है :—

मदसिक्तमुखैर्मृगाधिपः करिभिर्वर्तयते स्वयंहतैः।
लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः॥
(किरात० २।१८)

इसके साथ ही अर्जुन की वीरता का चित्र निम्नलिखित श्लोक में द्रष्टव्य है :—

उन्मज्जन्मकर इवामरापगाया वेगेन प्रतिमुखमेत्य बाणनद्याः।
गाण्डीवी कनकशिलानिभं भुजाभ्यामाजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्षः॥
(किरात० १७, ६३)

अर्थात् अर्जुन, वेग से बाणों की नदी के सामने निकलकर उसी प्रकार आया, जैसे मगर, वेग से गंगा के जल को चीरकर सतह के ऊपर उठ आता है और उसने त्र्यम्बक शिव के सुवर्णशिला के समान दृढ़ तथा विस्तीर्ण वक्षः-स्थल पर दोनों भुजाओं से जोर से प्रहार किया।

इस श्लोक से भारवि के नादानुकृति का गुण पाया जाता है। पूर्वार्ध की लय में स्वयं उछलते हुए अर्जुन का चित्र खींचा गया है तो 'आजघ्ने' की नादानुवृत्ति ऐसी है, जैसे किसी कठोर वस्तु पर चोट पड़ रही हो। प्रहर्षिणी छन्द से भी वर्णन की चित्रमत्ता में सहायता मिलती है।

भारवि में दीर्घ समासों का प्रयोग नहीं मिलता। समूचे रूप में विचार करने पर उनकी शैली में क्लिष्टता का दोष नहीं पाया जाता। दुर्योधन के प्रति उसकी प्रजा की भक्ति कितने बोधगम्य एवं सुस्पष्ट शब्दों में अंकित है :—

महौजसो मानधना धनार्चिता धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।
न संहतास्तस्य न भिन्नवृत्तयः प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम्॥
(किरात० १।१९)

किरातार्जुनीय के आठवें, नवें तथा दशवें सर्ग में शृंगार रस के कतिपय सरस स्थल हैं। अप्सराओं के वन-विहार, पुष्पावचय, जलक्रीड़ा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा सुरति के वर्णन से भारवि की प्रणयकलाकुशलता का अच्छा परिचय मिलता है :—

विहस्य पाणौ विधृते घृताम्भसि प्रियेण वध्वा मदनार्द्रचेतसः ।
सखीव काञ्ची पयसा घनीकृता बभार वीतोच्चयबन्धमंशुकम् ॥
(किरात० ८।५११)

जलविहार करते समय किसी नायिका ने हाथ में जल लेकर नायक पर उछालना चाहा, इसे देख कर उसके प्रिय गन्धर्व ने हँस कर उसका हाथ पकड़ लिया। अतएव कामासक्त होने के कारण उस नायिका का नीवीबन्धन ढीला हो गया। पर पानी से खींचे गये उसकी अंशुक को करधनी ने इस प्रकार रोक लिया जैसे एक सखी अपनी सखी की लाज रखने के लिए करती है। नीवी के ढीली पड़ने पर भी करधनी के कारण वह विवस्त्र नहीं होने पाई। किरात के इन तीन सर्गों में शृंगार-वर्णन मुक्तशृंगार वर्णनों का समूह सा दिखाई पड़ता है। अष्टम सर्ग में नायक की परांगनासक्ति से कुपिता एक खण्डिता मुग्धा का उदाहरण द्रष्टव्य है :—

प्रयच्छतोच्चैः कुसुमानि मानिनी विपक्षगोत्रं दयितेन लंभिता ।
न किञ्चिदूचे चरणेन केवलं लिलेख बाष्पाकुललोचना भुवम् ॥
(किरात० ८।१४)

अर्थात् एक अप्सरा, जिस समय उसका प्रेमी गन्धर्व भ्रमवश उसकी सपत्नी के नाम से उसे संबोधित कर पुष्पों का गुच्छा प्रदान कर रहा था, मान का आश्रय ले लिया, पर बोली कुछ नहीं, केवल अश्रुमुखी होकर पैर से भूमि खोदने लगी। यह मानाभिव्यक्ति का कैसा अनूठा ढंग है।

भारवि ने प्रकृति के उद्दीपन तथा आलंबन दोनों का ही वर्णन किया है। नवम सर्ग में सूर्यास्तवर्णन, रात्रिवर्णन तथा प्रभातवर्णन शृंगार के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आवेंगे। चतुर्थ तथा पंचम सर्ग में आलंबन विभाव वर्णित है। उनके नीचे के श्लोक में अप्रस्तुत विधान की बड़ी सुन्दर कल्पना है, जिससे मुग्ध होकर पण्डितों ने उन्हें 'आतपत्रभारवि' की उपाधि दी थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मादुद्भूतः सरसिजसंभवः परागः ।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्तादाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम् ॥
(किरात० ५।३९)

अर्थात् स्थलकमलों के वन के वन खिले हुए हैं। उनसे पीत पराग झर रहे हैं। हवा झोंके से वह रही है। वह पराग को उड़ाकर आकाश में फैला-कर मण्डलाकार बना रही है और मण्डलाकृति पराग-समूह ऐसा प्रतीत होता है जैसे सुवर्णछत्र की शोभा को धारण कर रहा हो। यह ऐसी अनूठी कल्पना है कि इसी के कारण वे 'आतपत्र भारवि' कहलाये।

किरातार्जुनीय में साधर्म्यमूलक अर्थालंकारों का अच्छा प्रयोग है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना, दृष्टान्त, समासोक्ति आदि अलंकारों का वहुत प्रयोग हुआ है। पन्द्रहवाँ सर्ग उनकी अलंकारप्रियता का उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसमें यमक, सर्वतोभद्र, विलोम, प्रहेलिका, चक्रवन्ध आदि चित्रकाव्य का प्रयोग किया गया है। नीचे के पद्य में उपमा का सरस शृंगारी प्रयोग है :—

ततः स कूजत्कलहंसमेखलां सपाकसस्याहितपाण्डुतागुणम् ।
उपाससादोपजनं जनप्रियः प्रियामिवासादितयौवनां भुवम् ॥४,१॥

अर्थात् लोकप्रिय अर्जुन कृषिकादिजनों से युक्त पृथ्वी के पास उसी तरह गया जैसे कोई नायक प्राप्तयौवना प्रेयसी के पास जाता है। शरद् भूमि पर कलहंस उसी प्रकार शब्द कर रहे थे जैसे नायिका की करधनी शब्द कर रही हो।

प्रकृतिवर्णन में रूपक का अप्रस्तुतविधान द्रष्टव्य है :—

विपाण्डुसंव्यानमिवानिलोद्धतं
निरुन्धतीः सप्तपलाशजं रजः ।
अनाविलोन्मीलितबाणचक्षुषः
सपुष्पहासा वनराजियोषितः ॥४, २८॥

अर्थात् अर्जुन ने उन वनपंक्तिरूपी युवतियों को देखा जो वायु से विकीर्ण सप्तपर्ण के पीत पराग को वायु से उड़ते हुए उत्तरीय की तरह सम्हाल रही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थीं, जिनके सुन्दर बाणपुष्पों के निर्मलनेत्र उत्फुल्ल हो रहे थे तथा जो पुष्पों के विकास रूपी हास से युक्त थीं ।

पंचम सर्ग में यमक की वहुलता है । यमक के कई प्रकार के रूप यहाँ पर देखे जाते हैं । उनका श्लेष अर्थालंकार का अंग वन जाता है, शुद्ध श्लेष नहीं रह जाता । निम्नांकित श्लोक श्लेषानुप्राणिता उपमा का उदाहरण है :—

कथाप्रसंगेन जनैरुदाहृतादनुस्मृताखंडलसूनुविक्रमः ।
तवाभिधानाद् व्यथते नताननः सुदुःसहान्मंत्रपदादिवोरगः ।।

(किरात० १।२४)

अर्थात् जिस तरह सर्प विषवैद्य के द्वारा उच्चारित गरुड़ और वासुकि के नामयुक्त असह्य मंत्र से विष्णु के पक्षी गरुड़ के पराक्रम का स्मरण कर अपने फण को नीचे गिरा देता है, उसी तरह जनसमूह की चर्चा में जब युधिष्ठिर का नाम किसी के मुँह से निकल आता है तो अर्जुन की वीरता को स्मरण कर चिन्ता के कारण दुर्योधन नतमस्तक हो जाता है ।

किरात के वर्णन अत्यन्त सजीव एवं रोचक हैं । किरात का कथानक छोटा है, पर भारवि न प्राकृतिक एवं आलंकारिक वर्णनों से विशाल बना दिया है । चौथे सर्ग से ग्यारहवें तक अलंकृत शैली के बल पर कवि ने काव्य का विस्तार किया है ।

भारवि व्याकरण-सम्वन्धी निपुणता प्रदर्शित करने के अनुरागी हैं । वे कई प्रकार से उत्तरकालीन कवियों में सवे हुए शब्दों के वार-वार प्रयोग करने की प्रवृत्ति के पथप्रदर्शक हैं । उसकी पुष्टि में तन का प्रयोग वाहुल्य, उपसर्ग और गति से निर्मित सामासिक अव्यय पदों का प्रयोग, शास् धातु का द्विकर्मक प्रयोग, दर्शयते का आत्मनेपद में प्रयोग, अनुजीविसात्कृताः स्तनोपपीडम्, दो निषेधात्मक प्रयोग करके विध्यात्मक वनाना (यथा न निवृत्तम्) आदि उद्धृत किये जा सकते हैं । भारवि ने लङ् और लुङ् लकारों का अपरोक्ष प्रयोग किया है तथा लङ् का अनद्यतने भी । लुङ् का प्रयोग दस वार करात म आया है । आह और वेद को छोड़कर अन्य सभी लिट् लकार के रूपों को कथावर्णन में प्रयुक्त किया गया है । व्याकरण की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुद्धियाँ बहुत कम हैं, पर आजघ्ने का प्रयोग किसी प्रकार साधु नहीं माना जा सकता।

छन्दों के प्रयोग में भारवि उतने ही बढ़े हुए हैं जितने कि अलंकारों के प्रयोग में। पांचवें तथा अठारहवें सर्ग में सोलह-सोलह प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। बारहवें में तो केवल अन्तिम श्लोक में प्रहर्षिणी को छोड़कर शेष सभी उद्‌गाता छन्द हैं। इन्दवज्रा की कोटि का उपजाति छन्द तीसरे, सोलहवें और सत्रहवें में प्रधानरूप से प्रयुक्त हुआ है। वंशस्थ पहले, चौथे और चौदहवें में, वैतालीय दूसरे में, द्रुतविलम्वित अठारहवें में, प्रमिताक्षरा छठे में, रथोद्धता तेरहवें सर्ग में अनेक वार प्रयुक्त हुआ है, किन्तु शालिनी, मालिनी, प्रभा और शिखरिणी का प्रयोग बहुत कम हुआ है। पन्द्रहवें सर्ग में एक श्लोक में प्रथम और तृतीय तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण समान हैं एक में वस्तुतः च और र ही हैं, दूसरे में स, श, ल और य। एक दूसरे पद्य में प्रत्येक चरण को उल्टा पढ़ने से अगला चरण मिल जाता है और पूरे श्लोक को उल्टा पढ़ने से अगला। एक श्लोक सीधा और उल्टा दोनों ओर से पढ़ने पर ज्यों का त्यों एक ही रहता है। भारवि ने एकाक्षर, द्व्यक्षर श्लोकों की रचना इसमें की है। इनका प्रयोग संस्कृत महाकाव्यों में प्रथम बार यहाँ पर हुआ है। श्लोक में भारवि साधारणतः उन्हीं नियमों का पालन करते हैं जिनका कि कालिदास, किन्तु विपुला के चतुर्थ भेद का प्रयोग वे कदापि नहीं करते। इसके विपरीत कालिदास को तृतीय विपुला ही सर्वाधिक प्रिय है।

भारवि तथा माघ

अनेक विद्वानों का मत है कि माघ में भारवि की स्पर्धा कर उन्हें अतिक्रान्त करने के लिए अपना शिशुपालवध महाकाव्य लिखा। इस सम्बन्ध में यह श्लोक उद्धृत किया जाता है :—

माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।
स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वर्गीय पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय के शब्दों में 'माघ का आदर्श भारविकृत किरातार्जुनीय था', इस बात का स्पष्टीकरण दोनों महाकाव्यों की पारस्परिक तुलना से हो जाता है :—

माघ ने अपने पूर्ववर्ती भारवि से बढ़ जाने के लिए बड़ा प्रयत्न किया। दोनों का कथानक महाभारत से लिया गया है। दोनों में आरम्भ 'श्री' शब्द से होता है यथा—श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम् (किरात०)। श्रियःपतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेव-सद्मनि (शिशुपाल०)। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में 'श्री' के पर्यायवाची लक्ष्मी का प्रयोग भारवि ने किया है, पर माघ ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'श्री' शब्द का ही प्रयोग कर अधिक चमत्कार ला दिया है। दोनों के प्रथम सर्ग में सन्देशकथन है। किरात में वनेचर द्वारा दुर्योधन का प्रसंग युधिष्ठिर के प्रति और माघ में नारद के द्वारा शिशुपालवध का प्रसंग श्रीकृष्ण के प्रति। इसमें शिशुपाल के जन्मान्तरीय दुराचारों का वर्णन विशद रूप से किया गया है। किरात में प्रथम सर्ग में द्रौपदी तथा द्वितीय सर्ग में भीमसेन के मुख से ओजस्वितापूर्ण और युधिष्ठिर के मुख से अतिशय शान्तिपूर्ण राजनीतिविषयक प्रसंग उपस्थित किया गया है तो 'शिशुपालवध' में भी द्वितीय सर्ग में ही बलराम जी के मुख से ओजस्वितापूर्ण तथा उद्धव के मुख से शान्तिपूर्ण राजनीति का उत्तम प्रसंग उपस्थित किया गया है। तृतीय सर्ग में किरात में अर्जुन की यात्रा का वर्णन है तो माघ ने भी इसी सर्ग में श्रीकृष्ण भगवान् की यात्रा का सुन्दर वर्णन किया है तथा नागरिकों की अवस्था के वर्णन से उत्कृष्ट बना दिया है। किरात में महर्षि वेदव्यास पाण्डवों को मार्ग प्रदर्शन करते हैं तो माघ में देवर्षि नारद ऐसा ही करते हैं। किरात में अर्जुन तपश्चरणार्थ इन्द्रकील पर्वत पर जाते हैं तो शिशुपाल वध में श्रीकृष्ण रैवतक पर्वत के समीप ठहरते हैं। भारवि ने चतुर्थ तथा पंचम सर्ग में हिमालय एवं शरद् ऋतु का वर्णन विविध छन्दों में किया है और अर्जुन को ले जाने वाले यक्ष के मुख से शरद् ऋतु का वर्णन कराया है तो माघ ने भी शिशुपालवध के उन्हीं सर्गों में रैवतक पर्वत तथा वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का अत्यन्त हृदयहारी वर्णन प्रस्तुत किया है तथा श्रीकृष्ण को ले जाने वाले दारुक के मुख से रैवतक पर्वत का सुन्दर वर्णन कराया है। यमकालंकारों का आश्रय दोनों महाकवियों ने लिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टम सर्ग में भारवि द्वारा गन्धर्वों तथा अप्सराओं के पुष्पावचयन तथा जलक्रीड़ा का वर्णन किया गया है तो माघ ने भी सप्तम सर्ग में यादवों के साथ यादवांगनाओं के पुष्पावचयन का और अष्टम सर्ग में उनकी जलक्रीड़ा का मनोहर एवं विशद वर्णन किया है। किरात के सप्तम सर्ग में गन्धर्व तथा अप्सराओं के सेनानिवेश का वर्णन है तो शिशुपालवध के पंचम सर्ग में ही श्रीकृष्ण के सेनानिवेश का अत्यन्त विशद एवं मनोहारी वर्णन किया गया है। भारवि ने नवम सर्ग में सन्ध्या, चन्द्रोदय, सुरतादि का वर्णन किया है तो माघ ने भी नवम सर्ग में सन्ध्या तथा चन्द्रोदय का और दशम सर्ग में पानगोष्ठी एवं सुरत का विस्तृत वर्णन किया है। किरात में तपःसंलग्न अर्जुन की तपस्या में विघ्न उपस्थित करने के हेतु इन्द्र द्वारा देवांगनाएँ प्रेषित की गई हैं तो शिशुपालवध में यादवांगनाओं के उत्कृष्ट शृंगार-वर्णन द्वारा कवि ने अपनी कृति को किरात से श्रेष्ठ प्रमाणित कर दिया है। दोनों कवियों के प्रभात-वर्णन में अत्यधिक समानता है। भारवि ने अर्जुन की घोर तपस्या का वर्णन किया है तो माघ द्वारा भी महाराज युधिष्ठिर के यज्ञसभा तथा राजसूय यज्ञ का वर्णन विस्तार से किया गया है। भारवि शैव थे, जिनका काव्य शिव के वरदान के विषय में है। माघ वैष्णव थे, जिन्होंने विष्णु-विषयक महाकाव्य का प्रणयन किया। वह स्वयं अपने महाकाव्य को 'लक्ष्मी-पतेश्चरितकीर्त्तनचारुमात्र' कहते हैं। किरात में किरातवेषधारी शिव का दूत अपने स्वामी शिव की प्रशंसा अर्जुन के सामने करता है तो शिशुपालवध में शिशुपाल का दूत शिशुपाल की प्रशंसा श्रीकृष्ण भगवान् के समक्ष करता है। भारवि ने अर्जुन तथा किरातवेषधारी शिव जी के भयंकर युद्ध का वर्णन चार सर्गों (१५—१८) में किया है तो माघ ने शिशुपाल तथा यादव-पाण्डवों के रोमांचकारी तुमुल युद्ध का विस्तृत वर्णन उससे बढ़ चढ़ कर किया है। दोनों महाकाव्यों में द्वन्द्व युद्ध के पूर्व विपक्षियों की सेनाओं में संघर्ष होता है। किरात के पन्द्रहवें सर्ग में युद्धवर्णन प्रसंग में विकट बन्धमय छन्दों की रचना की गई है तो शिशुपालवध में किरात से भी अधिक संख्या में विकटमय छन्दों की रचना पाई जाती है। इन प्रसंगों के अतिरिक्त कहीं-कहीं किरात के श्लोकों का भाव माघ के श्लोकों में लक्षित होता है, यथा व्यास के आने पर युधिष्ठिर ने अपने भाव व्यक्त किये हैं :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनाप्तपुण्योपचयैर्दुरापा फलस्य निर्धूतरजःसवित्री ।
तुल्या भवद्दर्शनसंपदेषा वृष्टेर्दिवो वीतवलाहकायाः ।। (३,५)

नारद के आने पर शिशुपालवध में श्रीकृष्ण अपने हार्दिक आनन्द को व्यक्त करते हुए कहते हैं :—

हरत्यघं संप्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः ।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ।।

युधिष्ठिर व्यास जी से अपने हृदय के भावों को व्यक्त करते हुए कहते हैं :—

निरास्पदं प्रश्नकुतूहलित्वमस्मास्वधीनं किमु निःस्पृहाणाम् ।
तथापि कल्याणकरीं गिरं ते मां श्रोतुमिच्छा मुखरीकरोति ।।
(किरात० ६, ६)

श्रीकृष्ण अत्यन्त विनम्रभाव से नारद जी से कहते हैं :—

विलोकनेनैव तवामुना मुने कृतः कृतार्थोऽसि निर्बाहितांहसा ।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसा गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते ।।
(शि० व० १. २९)

इतना ही नहीं, किरात १८ सर्गों में समाप्त हुआ है तो माघ ने शिशुपालवध को बीस सर्गों में रचकर अपनी उत्कृष्टता काव्यकलेवर की दृष्टि से भी सिद्ध कर दी है। वास्तव में 'तावद्‌भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः' उक्ति को माघ ने सिद्ध करके दिखा दिया है।

संस्कृत-साहित्य में भारवि का स्थान

भारवि का स्थान महाकाव्य-रचयिताओं में आता है। विश्वनाथ, भामह और दण्डी द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षण उनके ग्रन्थ पर पूर्णतया घटित होते हैं। महाकाव्य की दृष्टि से वे अत्यधिक सफल हुए हैं। लौकिक संस्कृत काव्य में प्रायः सभी कवि अपनी रचना का आधार रामायण और महाभारत को मानते आये हैं। परवर्ती आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार वाल्मीकीय रामायण महाकाव्य की कोटि में आ सकती है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाभारत नहीं। महाभारत में मुख्यरूप से तिहास प्रस्तुत किया गया है। पर रामायण में इतिहास के साथ-साथ काव्य का पुट भी अत्यन्त सरस और सहज-सुबोध शैली में पाया जाता है। त्रिविक्रमभट्ट ने वाल्मीकि जी को इन शब्दों में अभिवादन किया है :—

सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा॥

अपने आश्रम के समीप व्याधबाण से विद्ध क्रौञ्च के लिए क्रौञ्ची के विलाप ने वाल्मीकि के हृदय में करुणा का सञ्चार कर दिया और वे अत्यन्त दयार्द्र होकर कह उठे :—

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥'

इन शब्दों के उच्चारण करते ही ब्रह्मा जी स्वयं उपस्थित होकर भवभूति के शब्दों में बोले—

"ऋषे प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि। तद् ब्रूहि रामचरितम्। अव्याहतज्योतिरार्षं ते चक्षुः तिभाति। आद्यः कविरसि।"

इससे स्पष्ट है कि वाल्मीकि जी आदि कवि हैं तथा उनका काव्य आदि-काव्य। स्वच्छ एवं शुद्ध-निर्मल हृदय से निःसृत होने के कारण इसमें सरलता, सरसता एवं स्वाभाविकता दृष्टिगोचर होती है। छोटे-छोटे मंजुल एवं हृदय-ग्राही पदों के समावेश होने से काव्यदृष्टि से रामायण का बड़ा महत्त्व है।

प्रतीत होता है रामायण का ही विश्लेषण कर आचार्यों ने 'महाकाव्य' का लक्षण प्रस्तुत किया है। आचार्य दण्डी की महाकाव्यकल्पना 'रामायण' को ही आधार मानकर लिखी गई है। इसका आरम्भ ही करुणरस से होता है तथा अन्त भी करुणरस से। रामायण के अध्ययन से रस की पूर्ण अनुभूति होने से पाठक को तन्मयता प्राप्त होती है। इसीलिए इसकी शैली 'रसमयी-पद्धति' अथवा 'सुकुमार मार्ग' कही गई है।

वाल्मीकि के मार्ग का अनुसरण करने वाले प्रथम कवि कालिदास हैं। वे प्रकृति के अनन्य पुजारी हैं जिसकी प्रेरणा उन्हें आदि कवि वाल्मीकि से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिली। कालिदास का मुख्य उद्देश्य था काव्यरचना करना। उन्होंने जगत् और प्रकृति के बीच रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है और अपनी सरस प्रवाहमयी भाषा के द्वारा उसकी अभिव्यक्ति की है। यहाँ तक कि मानव अपने को प्रकृति से अभिन्न समझने लगता है। प्रकृति के साथ उसका सामंजस्य हो जाता है। उनके काव्यों में अलंकारों का स्वाभाविक रूप से समावेश हो गया है। उनके लिए कवि को प्रयत्न नहीं करना पड़ा। उनके काव्य भी रस से सराबोर हैं। कालिदास के काव्यों में श्रृंगाररस सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, पर 'करुणरस' भी कम उत्कृष्ट नहीं है। रघुवंश के अष्टम सर्ग में अपनी रानी के लिए 'अज का विलाप' तथा कुमारसंभव के चतुर्थ सर्ग में अपने पति के लिए 'रति-विलाप' उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कालिदास ने रघुवंश एवं कुमारसंभव दो महाकाव्यों की रचना की थी पर उनके समय तक आचार्यों ने कोई नियम नहीं बनाये थे। अतः उनके काव्यों में आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्यविषयक नियम कम घटित होते हैं। बाद के कवियों ने इन लक्षणों को पूर्णरूप से अपने ग्रन्थों में स्थान दिया। आगे चलकर महाकाव्य केवल पाण्डित्य तथा कलाप्रदर्शन के क्षेत्र रह गये। भारवि, भट्टि, माघ तथा श्रीहर्ष इन चारों कवियों में यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। कालिदास के काव्यों में काव्य का चरम परिपाक प्राप्त होता है। परवर्ती काव्यों में भाषा की कलात्मकता, शब्दालंकार, अर्थालंकार और प्रहेलिकादि का सन्निवेश बहुलता से उपलब्ध होता है। कालिदास तथा भारवि के बीच लगभग १५० वर्ष किसी काव्य का पता नहीं लगता, केवल वत्सभट्टिप्रणीत मन्दसौर काव्य का शिलालेख पाया जाता है। व्यास, वाल्मीकि और कालिदास ने कथा पर ध्यान दिया, यद्यपि कालिदास ने इतिवृत्त को ही सब कुछ नहीं समझा तथापि उसे क्षीण नहीं होने दिया। बीच-बीच में वर्णन आये। उनका यथोचित निर्वाह करके कथासूत्र फिर पकड़ लेते थे, जिससे कथा-प्रवाह शिथिल न होने पावे। बाद के कवियों ने इसका ध्यान नहीं रक्खा। कथा के मध्य में वर्णन आने पर वह वहीं जमकर बैठ जाते थे और वर्ण्य-विषय पर जितनी जानकारी रहती थी, सब वहीं समाप्त कर देते थे। इस प्रकार प्रवाह में शिथिलता आ जाना स्वाभाविक ही था। जहाँ कालिदास ने कुमार की उत्पत्ति के लिए कई युगों तक की पूर्वकालीन कथा को लेकर १७ सर्गों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में समाप्त किया है तथा रघुवंश में महाराज दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक की कथा १९ सर्गों में ही पिरो दी है वहाँ भारवि ने केवल महाभारत के युद्ध की तैयारी के हेतु अर्जुन के दिव्यास्त्र की प्राप्ति की कथा १८ सर्गों में और माघ ने केवल शिशुपाल वध की कथा को २० सर्गों में वर्णन किया है। वाल्मीकि के प्रभाव पर चलने वाले हैं कालिदास, अश्वघोष। इनमें काव्य विषय अत्यन्त विस्तृत होता था, प्राकृतिक वर्णन और अलंकार-विधान अपेक्षा-कृत कम। इनकी भाषा भी सरस, सरल, प्रसादगुणयुक्त एवं प्रवाहमयी होती थी। क्लिष्टत्व दोष उनमें नहीं पाया जाता। दूसरे मार्ग के प्रवर्त्तक हैं भारवि, जिससे माघ, श्रीहर्ष, भट्टि, कुमारदास आदि प्रभावित हुए हैं। इसमें स्वल्प कथा-वस्तु को प्राकृतिक वर्णन और अलंकारों से बोझिल बना दिया गया है। इनकी भाषा अलंकारों और प्राकृतिक वर्णनों के कारण स्वाभाविकता से दूर जा पड़ी है।

संस्कृत साहित्य में दूसरी शैली (अलंकृत शैली) के प्रवर्त्तक के रूप में भारवि का स्थान उच्च है। इनकी शैली से परवर्ती कवि इतने प्रभावित हुए कि वे कविकुलगुरु कालिदास को भूल गये और स्वाभाविकता की उपेक्षा करके भारवि द्वारा निर्दिष्ट पथ के पथिक बन गये। भारवि वीर और श्रृंगार दोनों के कवि हैं। वे प्रणयकला (technique of love) के पण्डित हैं। पंडित-सम्प्रदाय में यह श्लोक प्रसिद्ध है—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्,

जैसा पहले लिखा जा चुका है, भारवि अपने गौरव के लिए प्रसिद्ध हैं। इस गुण में कोई भी कवि उनकी समकक्षता नहीं कर सकता। इस अर्थगौरव का कारण उनकी अद्‌भुत अभिव्यक्ति-शक्ति है। ये थोड़े शब्दों में अधिक भावों का सन्निवेश करने में समर्थ हैं। अथवा 'गागर में सागर' भर सकते हैं। उनकी कविता में ओज है, शक्ति है तथा रति का माधुर्य है। कथोपकथन के माध्यम से चरित्र और कथा दोनों का विकास किया है। वक्ताओं की बल-वती उक्तियों से उनके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। ये उक्तियाँ गंभीर घाव करती हैं। उनमें अद्‌भुत गहराई, संक्षिप्तता और उपयुक्ता है। द्रौपदी की भर्त्सना किसी के भी हृदय पर चोट कर सकती है। वनेचर की शिष्टतापूर्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्ति सराहनीय है। पात्रों के कथोपकथन तर्क, उक्ति एवं मार्मिक अर्थ से युक्त हैं, जिसके कारण काव्य में सजीवता आ गई है। इन गुणों के कारण भारवि का संस्कृतकवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

किरातार्जुनीयम् का प्रथम सर्ग

वर्णन की दृष्टि से यह सर्ग दो भागों में विभक्त है—(१) युधिष्ठर के प्रति वनेचर की उक्ति और (२) युधिष्ठिर के प्रति द्रौपदी की उक्ति।

जब महाराज युधिष्ठिर दुर्योधन के साथ द्यूत-क्रीड़ा में हार गये और उन्हें बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञात वास मिला तो वे अपनी पत्नी द्रौपदी तथा भाइयों के साथ द्वैतवन में निवास करने लगे। उन्होंने उस समय दुर्योधन का वृत्त अवगत करने के लिए एक वनेचर को ब्रह्मचारी के वेष में भेजा। उसने कुरुप्रदेश में पहुँच कर वहाँ का सव समाचार ुप्तरूप से जान लिया। तदनन्तर वह युधिष्ठिर के पास द्वैतवन को लौट आया और शिष्टतापूर्वक अभिवादन करके शत्रु की वास्तविक स्थिति वतलाने में उसे तनिक भी कष्ट अथवा संकोच नहीं हुआ। भारवि की वर्णन-शक्ति का उत्कृष्टरूप हमें आरम्भ में ही मिल जाता है जिसके प्रथम पंक्ति में ही उच्चनीति का दर्शन होता है। इसके बाद जन्म भर वन में रहने वाले वनेचर का शिष्टाचार द्रष्टव्य है—उसने 'सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी' एवं 'विनिश्चितार्था' वाणी में दुर्योधन की प्रजाविषयक सद्वृत्ति के वर्णन से एक चित्र सा खड़ा कर दिवा है। राजाओं का चरित्र निसर्गतः दुर्वोध होते हुए भी उसने अपनी बुद्धि से कहा कि दुर्योधन राज्यस्थ होकर भी आप से भयभीत है और न्यायप्रिय शासन द्वारा अनीति से जीती हुई पृथ्वी को नीति से वश में करना चाहता है। वह आश्रितों को मित्रवत्, मित्रों को वन्धु के समान तथा वन्धुओं को अपने ऊपर का अधिकारी मानता है। वह कर्तव्य पालन में पुत्र और शत्रु के साथ एक सा व्यवहार करता है। पुत्र के भी अपराध क्षमा नहीं करता। राज्य में सिंचाई के प्रवन्ध से प्रजा निरंतर सुखी रहती है। प्रशंसनीय कार्य के लिए कर्मचारी को पुरस्कृत करता है। योधा लोग प्राणपण से भी उसकी रक्षा करना चाहते हैं। उसे धनुष उठाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। राजा लोग उसे स्वयं दरबार में आकर कर देते हैं तथा सम्मानपूर्वक उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। राज्य में सर्वत्र कृषि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तमरूप से होती है और प्रजा प्रसन्नतापूर्वक समय-समय पर कर देती हैं। अब वह दुःशासन को युवराज बनाकर पुरोहित के आदेशानुसार यज्ञादि कर्म करता है पर इतना होते हुए भी आपका नाम प्रसंगक्रम से आने पर वह नतमस्तक हो जाता है। अतः आप उसे जीतने के लिए कोई प्रबल उपाय करें। इसके बाद महाराज युधिष्ठिर ने उसे पारितोषिक देकर विदा किया और द्रौपदी के भवन में जाकर भाइयों के समक्ष कहा, जिसे सुनकर द्रौपदी बोली।

युधिष्ठिर के प्रति द्रौपदी की उक्ति--हे नाथ, स्त्री का उपदेश आप ऐसे महानुभावों के लिए अपमान के समान है, पर मेरे चित्त की व्यथा मुझे कहने के लिए विवश करती है। आपके अतिरिक्त कौन ऐसा राजा होगा जो अपनी स्त्री के समान राजलक्ष्मी को दूसरे के अधीन कर देगा। भीम की दुर्दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि जो पहले सुन्दर पलंग पर सोते थे वे आज अपरिष्कृत भूमि पर लेटते हैं। जिसने उत्तरकुरु जीत कर बहुत-सा द्रव्य प्राप्त किया था वे ही अर्जुन आज वल्कलधारी बने हुए हैं। दोनों सुकुमार नकुल तथा सहदेव कठिन भूमि पर सोते हैं। फिर स्वयं आप अपनी दुर्दशा पर ध्यान दीजिए। हे महाराज, शान्ति छोड़कर शत्रुओं को नष्ट करने का उपाय कीजिए। शान्ति से मुनियों को सिद्धि मिलती है राजाओं को नहीं। यदि आप शान्ति को ही सिद्धि का साधन समझते हैं तो राजचिह्न, धनुषादि का परित्याग कर अग्नि में हवन कीजिए। हे महाराज, आप सब प्रकार से समर्थ हैं, अतः अपकारी शत्रु के विजय के लिए समय की प्रतीक्षा न कीजिए विजयेच्छु राजा किसी बहाने से सन्धि-भंग कर देते हैं।

'भारवेरर्थगौरवम्' की उक्ति प्रथम सर्ग में ही पूर्णतया चरितार्थ होती है। द्रौपदी के तीखे वाक्यों से पाण्डवों की हीनावस्था का चित्र उपस्थित किया गया है। चारों भाइयों की दुर्दशा का एक मात्र कारण युधिष्ठर को बताया है। इस दुरवस्था से किसी भी भाई के चित्त पर आघात पड़ सकता है। स्वयं द्रौपदी अपनी दुर्दशा का नग्नचित्र खींचते हुए वाग्वज्र का प्रहार करती है पर महाराज युधिष्ठिर अचल के समान शान्त हैं। अन्त में द्रौपदी ने सारे दुःखों के कारणभूत पति युधिष्ठिर के प्रति मंगलकामना करके अपने पत्नीत्व का अच्छा परिचय दिया है। छोटी-छोटी सूक्तियों में गंभीर और विपुल भाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि ने भर दिया है। एक-एक शब्द साभिप्राय है। शब्दों में सौष्ठव है ओज तथा अर्थ-गौरव के दर्शन होते हैं। इस सर्ग में राजनीति-वर्णन कौशल, शब्दवैचित्र्य, अर्थगौरव, शिष्टाचार आदि के उदाहरण बहुलता से उपलब्ध हैं।

प्रथम सर्ग में प्रयुक्त सूक्तियाँ

१--न हि प्रियं, प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः।	श्लोक	२
२--हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।	"	४
३--स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं, हितान्न यः संश्रृणुते स किंप्रभुः।	"	५
४--वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।	"	८
५--गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया।	"	१२
६--अहो दुरन्ता वलवद्विरोधिता।	"	२३
७--प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः।	"	२५
८--व्रजन्ति ते मूढधियः परभवं, भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।	"	३०
९--अबन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां, भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।	"	३३
१०--अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः।	"	३३
११--विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः।	"	३७
१२--परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्।	"	४१
१३--व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः।	"	४२
१४--निराश्रया हन्त हता मनस्विता।	"	४३
१५--अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि।	"	४५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किरातार्जुनीयम् का नामकरण

१५ सर्ग से १८ सर्ग तक में वर्णित किरातवेषधारी शिव और अर्जुन के युद्ध को, जो महाकाव्य का मुख्य विषय है, आधार मानकर इस महाकाव्य का नाम 'किरातार्जुनीयम्' रक्खा गया है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

किरातश्च अर्जुनश्च किरातार्जुनौ तौ अधिकृत्य (कृतो ग्रन्थः) अथवा कृतं काव्यम् इति किरातार्जुन+छ 'शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्च'—शिशुक्रन्द, यमसभ, द्वन्द्व और इन्द्रजनन आदि से छ प्रत्यय होता है। यदि उनके विषय में रचित ग्रन्थ की संज्ञा बनानी हो तो—इस नियम से किरातार्जुन द्वन्द्व से छ प्रत्यय लगाकर किरातार्जुनीयम् होता है।

मल्लिनाथ के अनुसार इस महाकाव्य के 'नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नरायणस्यांशजः' नायक अर्जुन हैं। नायक के प्रतिभट के रूप में किरात का वर्णन किया गया है। अन्य टीकाकार चित्रभानु के मतानुसार नायक युधिष्ठिर हैं। काव्य में अर्जुन बहुत बाद में आते हैं। उनका दिव्य पाशुपतास्त्र लाभ भी युधिष्ठिर के शत्रुओं के उन्मूलन के निमित्त साधनरूप है। पर युधिष्ठिर आदि, मध्य और अन्त में मुख्य रूप से आते हैं। प्रारम्भिक सर्ग में तो युधिष्ठिर की प्रधानता निर्विवाद है। अतएव महाकाव्य के नायक युधिष्ठिर को ही मानना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

।। श्रीः ।।

किरातार्जुनीयम्

प्रथमः सर्गः

घण्टापथः—

अर्धाङ्गीकृतदाम्पत्यमपि गाढानुरागि यत् ।
पितृभ्यां जगतस्तस्मै कस्मैचिन्महसे नमः ।। १ ।।

आलम्बे जगदालम्बं हेरम्बचरणाम्बुजम् ।
शुष्यन्ति यद्रजःस्पर्शात् सद्यः प्रत्यूहवार्धयः ।। २ ।।

तद्दिव्यमव्ययं धाम सारस्वतमुपास्महे ।
यत्प्रकाशात्प्रलीयन्ते मोहान्धतमसश्छटाः ।। ३ ।।

वाणीं काणभुजीमजीगणदवाशासीच्च वैयासकी-
मन्तस्तन्त्रमरंस्त पन्नगगवीगुम्फेषु चाजागरीत् ।
वाचामाचकलद्रहस्यमखिलं यश्चाक्षपादस्फुरां
लोकेऽभूद्यदुपज्ञमेव विदुषां सौजन्यजन्यं यशः ।। ४ ।।

मल्लिनाथकविः सोऽयं महोपाध्यायशब्दभाक् ।
तत्किरातार्जुनीयाख्यं काव्यं व्याख्यातुमिच्छति ।। ५ ।।

नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते ।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम् ।। ६ ।।

नानानिबन्धविषमैकपदैर्नितान्तं
साशंकचंक्रमणखिन्नधियामशंकम् ।
कर्तुं प्रवेशमिह भारविकाव्यबन्धे
घण्टापथं कमपि नूतनमातनिष्ये ।।७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया ।
नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते ।।८।।

अथ तत्रभवान् भारविनामा कविः "काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये । सद्यः परनिवृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।।" इत्याद्यालङ्कारिकवचनप्रामाण्यात् काव्यस्य अनेकश्रेयःसाधनतां, 'काव्यालापांश्च वर्जयेत्' इति निषेधशास्त्रस्य असत्काव्यविषयताञ्च पश्यन् किरातार्जुनीयाख्यं महाकाव्यं चिकीर्षुः चिकीर्षितार्थाविघ्नपरिसमाप्तिसम्प्रदायाविच्छेदलक्षणफलसाधनत्वात् "आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्" इत्याद्याशीर्वादाद्यन्यतमस्य प्रवन्धमुखलक्षणत्वाच्च, वनेचरस्य युधिष्ठिरप्राप्तिरूपं वस्तु निर्दिशन् कथामुपक्षिपति—

श्रियः कुरुणामधिपस्य पालनीं प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम् ।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः ।।१।।

श्रिय इति । आदितः श्रीशब्दप्रयोगाद्वर्णगणादिशुद्धिर्नातीवोपयुज्यते । तदुक्तम्—"देवतावाचकः शब्दाः ये च भद्रादिवाचकाः । ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा ।।" इति । कुरूणां निवासाः कुरवो जनपदाः 'तस्य निवासः' इत्यण् प्रत्ययः । जनपदे लुप् । तेषामधिपस्य सम्वन्धिनीम् । शेषे षष्ठी । श्रियो राजलक्ष्म्याः । 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठी । पाल्यतेऽनयेति पालनी ताम् । प्रतिष्ठापिकामित्यर्थः । प्रजारागमूलत्वात्संपद इति भावः । "करणाधिकरणयोश्च" इति करणे ल्युट् । "टिड्ढाणञ्" इत्यादिना ङीप् । प्रजासु जनेषु विषये । "प्रजा स्यात् सन्ततौ जने" इत्यमरः । वृत्तिं व्यवहारं ज्ञातुं यं वनेचरमयुङ्क्त नियुक्तवान् । वर्णः प्रशस्तिरस्यास्तीति वर्णी ब्रह्मचारी तदुक्तम्—"स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च । एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः । विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ।" एतदष्टविधमैथुनाभावः प्रशस्तिः । 'वर्णात् ब्रह्मचारिणि' इति इनिप्रत्ययः । तस्य लिङ्गं चिह्नमस्यास्तीति "वर्णिलिङ्गी" ब्रह्मचारिवेषवानित्यर्थः । स नियुक्तः वने चरतीति वनेचरः किरातः । "भेदाः किरातशबरपुलिन्दा म्लेच्छजातयः" इत्यमरः । 'चरेष्टः' इति टप्रत्ययः । 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इत्यलुक् । विदितं वेदनमस्यास्तीति विदितः । पर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृत्तान्तज्ञानवानित्यर्थः । 'अर्श आदिभ्योऽच्' इत्यच्प्रत्ययः । उभयत्रापि 'पीताः गावः' 'भुक्ता ब्राह्मणाः' 'विभक्ता भ्रातरः' इत्यादिवत्साधुत्वम् । न तु कर्त्तरि क्तः । सकर्मकेभ्यस्तस्य विधानाभावात् । अतएव भाष्यकारः—अकारो मत्वर्थीयः । विभक्तमेषामस्तीति 'विभक्ताः' पीतमेषामस्तीति 'पीताः' इति सर्वत्र । अथ-वोत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः । विभक्तधनाः विभक्ताः पीतोदकाः पीताः इति । अत्र लोपशब्दार्थमाह कैयटः—'गम्यार्थस्याप्रयोग एवं लोपोऽभिमतः । विभक्ताः भ्रातरः इत्यत्र च धनस्य यद्विभक्तत्वं तद् भ्रातृषूपचरितम् । 'पीतो-दकाः गावः' इत्यत्राप्युदकस्य पीतत्वं गोष्वारोप्यते इति । तद्वदत्रापि वृत्ति-गतं विदितत्वं वेदितरि वनेचर उपचर्यते । एतेन "वनाय पीतप्रतिवद्धवत्साम्" "पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या" एवमादयो व्याख्याताः । अथवा विदितवान् । सकर्मकादप्यविवक्षिते कर्मणि क्तः । यथा 'आसितः कर्त्ता' इत्यादौ । यथाहुः—"धातोरर्थान्तरे वृत्ते धात्वर्थेनोपसंग्रहात् । प्रसि-द्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया ।" इति द्वैतवने द्वैताख्ये तपोवने । यद्वा द्वे इते गते यस्मात् तद् द्वीतम् । तच्च तद्वनं च तस्मिन् । शोकमोहा-दिवर्जित इत्यर्थः । युधि रणे स्थिरं युधिष्ठिरं धर्मराजम् "हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्' इत्यलुक् । 'गवियुधिभ्यां स्थिरः' इति षत्वम् । समाययौ प्राप्तवान् । अत्र 'वने वनेचरः' इति द्वयोः स्वरव्यञ्जनसमुदाययोरेकदैवावृत्त्या वृत्त्यनुप्रासो नामालङ्कारः । अस्मिन् सर्गे वंशस्थवृत्तम् । तल्लक्षणम्—"जतौ तु वंश-स्थमुदीरितं जरौ" इति ॥१॥

अन्वय—कुरूणाम् अधिपस्य श्रियः पालनीं प्रजासु वृत्तिं वेदितुम् यम् अयुङ्क्त स वर्णिलिङ्गी विदितः (सन्) वनेचरः द्वैतवने युधिष्ठिरं समा-ययौ । अथवा यं कुरूणामधिपस्य श्रियः पालनीं प्रजासु वृत्तिं वेदितुम् अयुङ्क्त वर्णिलिङ्गी (भूत्वा) विदितः (सन्) स वनेचरः युधिष्ठिरं समाययौ ।

हिन्दी अनुवाद—कुरुदेश के स्वामी की राजलक्ष्मी के रक्षक प्रजा-विषयक व्यवहार को जानने के लिए (युधिष्ठिर ने) जिसे नियुक्त किया था, वह ब्रह्मचारी का वेश धारण करने वाला वनेचर सारा वृत्तान्त अवगत कर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास लौट आया ।

English Translation:—The forester whom he (Yudhisthira) had appointed with a view to know about the behaviour of

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

the King of the Kurus towards his subjects assumed for the protection of his fortune, returned to Yudhisthira in the Dvaita forest being well informed in the guise of a celibate student.

संस्कृतभावार्थ—द्यूते दुर्योधनेन पराजितः हृतसर्वस्वः युधिष्ठिरः द्वैतवने निवसन् शत्रोः दुर्योधनस्य प्रजाविषयकं व्यवहारमधिगन्तुं यं किरातं गूढचरत्वेन नियुक्तवान्, स ब्रह्मचारिवेषधारी कुरुषु चरन्नशेषतो वृत्तान्तं ज्ञात्वा द्वैतवने निवसन्तं युधिष्ठिरम् उपेयाय।

व्याख्या—पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर राज्य के उत्तराधिकारी हुए। उनके चचेरे भाई दुर्योधन ने उन्हें पदच्युत करने के विचार से जुआ खेलने के लिए आमंत्रित किया। तथा द्यूत-कुशल अपने मामा शकुनि की सहायता से पहले दाँव में ही सारा राज्य ले लिया और दूसरे दाँव में हार कर महाराज युधिष्ठिर को परिवार सहित बारह वर्ष के लिए वनवास जाना पड़ा। पहले वे काम्यक वन में फिर द्वैतवन में जाकर रहने लगे। वहाँ रहते हुए उन्होंने जिज्ञासा और राजनीति की दृष्टि से दुर्योधन के राज्य का वृत्तान्त जानने के लिए एक विश्वासपात्र वनेचर को भेजा। वह वनेचर ब्रह्मचारी के वेष में हस्तिनापुर जाकर वहाँ के लोगों में हिलमिलकर सब वृत्तान्त अवगत करके पुनः युधिष्ठिर के पास लौट आया। महाकवि भारवि ने महाभारत की कथा के इस स्थल से ही अपना महाकाव्य आरंभ किया है।

टिप्पणी—आचार्यों का कथन है कि काव्य का आरम्भ आशीर्वाद, नमस्कार अथवा वस्तुनिर्देश से होना चाहिए। अतः प्राचीन परिपाटी का अनुसरण करते हुए कालिदास, भासादि की भाँति भारवि ने भी प्रथम श्लोक में ही अपने महाकाव्य की कथावस्तु का संकेत कर दिया है। 'ग्रन्थादौ ग्रन्थ-मध्ये ग्रन्थान्ते च मंगलमाचरणीयम्' इस उक्ति के अनुसार भारवि ने श्लोक के आरंभ में श्री शब्द का प्रयोग किया है। काव्य की रचना में कवि का लक्ष्य अनेक श्रेयों की सिद्धि है।

काव्यारम्भ में कुछ मंगलकारी वर्णों और गणों का प्रयोग करना शास्त्रानुकूल है किन्तु यहाँ देवतावाची 'श्री' शब्द का प्रयोग उस उद्देश्य की पूर्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है। जैसा कि कहा गया है—'देवतावाचकाः शब्दाः ये च भद्रादि-वाचकाः। ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युः लिपितो गणतोऽपि वा ॥' महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य 'शिशुपालवध' में भी प्रथम श्लोक के आदि में 'श्री' शब्द का प्रयोग किया है। जैसे "श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि।" **श्रियः**—श्रयति पुरुषमिति श्रीः (श्रि+क्विप् कर्त्तरि) तस्याः यहाँ 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त हुई है। 'पालनीम्' (पालने की) क्रिया का कर्म श्री है, अतः श्री में षष्ठी का प्रयोग हुआ है। **कुरूणाम्**—कुरु क्षत्रियों की एक जाति का नाम है। कुरूणां निवासाः कुरवो जनपदाः, तेषाम्। यहाँ 'तस्य निवासः' पाणिनि के इस सूत्र के अनुसार अण् प्रत्यय होता है फिर 'जनपदे लुप्' नियम से लुप् हो जाता है। एक ही जनपद सूचित करने वाला कुरु शब्द 'लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने' (एक प्रत्यय के लुप्त होने पर उससे निष्पन्न शब्द का लिंग और वचन पूर्ववत् रहता है) इस नियम के अनुसार 'कुरु' का प्रयोग बहुवचन में हुआ है। **अधिपस्य**—राज्ञः। राजा को। अधिपातीति अधिपः अधि+पा+क कर्त्तरि तस्य आधिपस्य 'आतश्चोपसर्गे' इस सूत्र से क प्रत्यय हुआ। शेषे षष्ठी। इसका सम्बन्ध 'वृत्ति' से है। **पालनीम्**—पाल्यते अनया इति पालनी, ताम् (पाल्+ल्युट् करणे+ङीप् स्त्रियाम्) "करणाधिकरणयोश्च" सूत्र से ल्युट् तथा "टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्न-ञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः" सूत्र से ङीप्। **प्रजासु**—प्र+जन्+ड कर्त्तरि+टाप् स्त्रियाम्—प्रजाः, तासु। विषयाधिकरणे सप्तमी। **वृत्ति**—व्यवहारम्। वर्तते अनया इति वृत्तिः ताम् (वृत्+क्तिन् करणे)। 'वेदितुम्' का कर्म है। **अयुङ्क्त**—नियुक्तवान्। नियुक्त किया। युज्+लङ् त। यहाँ आत्मनेपद "कर्त्रभिप्राये क्रियाफले आत्मनेपदम्" नियम से है। क्योंकि युधिष्ठिर वनेचर के द्वारा स्वयं वृत्तान्त जानना चाहते थे। **वर्णिलिङ्गी**—(ब्रह्मचारिवेषधारी) वर्णः प्रशस्तिरस्यास्तीति वर्णी, (वर्ण+इनि) तस्य लिंगम् (षष्ठीतत्पुरुष) वर्णिलिङ्गमस्यास्तीति वर्णिलिङ्गी (वर्णिलिङ्ग+इनि) ब्रह्मचारी।

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एतदष्टविधमैथुनाभावः प्रशस्तिः। इन आठों प्रकार के मैथुन का अभाव ही ब्रह्मचर्य कहलाता है और वही प्रशस्ति या वर्ण कहा जाता है। यह वर्ण जिसमें विद्यमान हो वह वर्णी या ब्रह्मचारी होता है। वनेचर दुर्योधन के राज्य की व्यवस्था जानने के लिये ब्रह्मचारी के वेष में हस्तिनापुर गया था। इस छद्मवेष में उस पर कोई अविश्वास नहीं कर सकता था। मनु ने भी तापसवेष में शत्रु-वृत्तान्त जानने का विधान वताया है—

कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गं च तत्त्वतः।
अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ॥ मनु अ० ? श्लो० १५७ ॥

विदितः—वेदनं विदितम् (विद्+क्त नपुंसके भावे) विदितमस्यास्तीति (विदित+अच् मत्वर्थीयः) विदितः। यहाँ अच् प्रत्यय 'अर्श आदिभ्योऽच्' (अर्थात् अर्श आदि गण में आने वाले शब्दों के आगे अच् प्रत्यय लगता है) इस सूत्र से अच् प्रत्यय हुआ। यद्यपि 'विदितम्' अर्श आदि गण में नहीं है तथापि आकृतिगण अर्थात् उसके अन्तर्गत आने वाले शब्दों के समान होने के कारण इसमें भी अच् प्रत्यय लग गया है। महाभाष्यकार पतंजली ने ऐसे ही उदाहरण दिये हैं जैसे 'पीताः गावः, भुक्ता ब्राह्मणाः, विभक्ता भ्रातरः' इत्यादि में मत्वर्थीय अच् हो जाता है। भाष्यकार ने एक दूसरी व्याख्या भी दी है, जैसे 'पीतोदका गावः, विभक्तधनाः भ्रातरः' आदि प्रयोगों में उत्तरपद का लोप हो जाता है। उदक के पान का तथा धन के विभाग का आरोप 'गावः' और 'भ्रातरः' पर करके उन्हें ही पीताः और विभक्ताः कहा गया है। जैसे 'पीतोदकाः, विभक्तधनाः' के उत्तरपद उदक एवं धन के विना भी अर्थ सर्वथा स्पष्ट हो जाने के कारण लुप्त हो जाता है उसी प्रकार 'विदितः' अर्थात् 'विदितवृत्तान्तः' में भी उत्तरपद वृत्तान्त के लुप्त हो जाने से अर्थ में किसी प्रकार की अस्पष्टता नहीं आती, अतः उत्तरपद वृत्तान्त लुप्त हो गया है और केवल विदितः ही रह गया है। मल्लिनाथ के अनुसार तीसरा मत यह है कि विदितः में 'कर्त्तरि क्तः' है, क्योंकि यद्यपि विद् धातु सकर्मक है पर कर्म का कथन नहीं किया गया है, अतः अकर्मक हो गई है यथा—"धातोरर्थान्तरे वृत्ते धात्वर्थेनोपसंग्रहात्। प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया॥" अर्थात् धातु के नानार्थों में प्रयुक्त होने से धातु के अर्थ में ही कर्म के समाविष्ट होने पर तथा उसके कर्म के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत्यन्त प्रख्यात होने पर अथवा कथन अभीष्ट न होने के कारण सकर्मक धातु भी अकर्मक हो जाती है। 'विदितः' में 'विद्' धातु का कर्म अविवक्षित है, अतः उपर्युक्त कारिका के अनुसार 'विद्' अकर्मक धातु हो गई। पाणिनि ने 'आशितः कर्त्ता' सूत्र में आशितः में 'कर्त्तरि क्तः' माना है। भाष्यकार के कथनानुसार इसका निपात हो जाता है। जैसे "आशितः इति क्तः कर्त्तरि निपात्यते।" चौथा मत है कि विदितः में कर्मणि क्तः है। जिसका अर्थ है 'युधिष्ठिरेण विज्ञातः' युधिष्ठिर के द्वारा जाना गया वनेचर। इनके अनुसार विद् धातु से कर्म में क्त लगाकर विदितः बनेगा। 'बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मणाञ्च निजेच्छया" से व्याकरणसम्मत है। अथवा दुर्घटवृत्ति के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि 'वेदनं वित् ततः क्विबन्तात् तारकादित्वादितचि विदितः इति'। विद्+क्विप्+इतच्+सु। विदितः के सम्बन्ध में ये पाँच बातें हुईं—

(क) विदितः—विद् भावे क्त विदित+अच् मत्वर्थे।

(ख) विदितः—विदितवृत्तान्तः—कर्मणि क्तः।

(ग) विदितः—ज्ञातः कर्मणि क्तः।

(घ) विदितः—विदितवान् कर्त्तरि क्तः।

(ङ) विदितः—विद्+क्विप्+इतच्—विदितः।

इनमें प्रथम दो (क, ख) भाष्य का अनुसरण करते हैं। तृतीय (ग) 'बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मणाञ्च' के अनुसार व्याकरणसम्मत तो है पर असाधारण है। चतुर्थ (घ) भाष्य के प्रतिकूल होने से अमान्य है। पञ्चम (ङ) भी व्याकरणसम्मत होने से शुद्ध है।

समाययौ—सम्+आ+या+लिट् अ। **वनेचरः**—वने चरतीति वनेचरः (वने+चर्+टः) यहाँ ट प्रत्यय 'चरेष्टः' सूत्र से हुआ है। 'वने' में सप्तमी विभक्ति का लोप 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' सूत्र के लगने के कारण नहीं हुआ। **युधिष्ठिरं**—युधि रणे स्थिरः युधिष्ठिरः (सप्तमी अलुक्) यहाँ 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' (समास में हलन्त और अदन्त से परे सप्तमी विभक्ति का लोप नहीं होता) इस सूत्र से युधि की सप्तमी विभक्ति का लोप नहीं हुआ। 'गवियुधिभ्यां स्थिरः' सूत्र से 'स्' का 'ष्' हो गया। **द्वैतवने**—द्वौ शोकमोहौ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतौ गतौ अस्मात् इति द्वीतम् (द्वि+इ+क्त कर्त्तरि) द्वीतम् एव द्वैतम्। प्रज्ञादित्वात् स्वार्थे अण्। द्वैतञ्च तत् वनञ्च इति द्वैतवनम्। तस्मिन्। विषयाधिकरणे सप्तमी यद्वा द्वि+तल्+भावे द्विता। ततः स्वार्थे अण्।

कोष—'कुरुवर्षं कुरुश्चन्द्रवंशीयोऽपि नृपः कुरुः, 'अधिभूर्नायको नेता प्रभुः परिवृढोऽधिपः', 'लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया', 'वर्णिनो ब्रह्मचारिणः'।

'द्वैतवने वनेचरः' में स्वर व्यंजन के समुदाय की एक बार आवृत्ति होने से मल्लिनाथ ने वृत्यनुप्रास अलङ्कार माना है। इस सर्ग में अन्तिम दो छन्दों को छोड़कर शेष में वंशस्थ छन्द है। उसका लक्षण वृत्तरत्नाकर में इस प्रकार है—"जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ" अर्थात् जगण तगण जगण रगण से वंशस्थ छन्द होता है।

"मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतोरलमध्यः सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥"

गणज्ञान के लिए यह सरलता से स्मरण किया जा सकता है—
"यमाताराजभानसलगम्'

यगण—ISS	जगण—I S I
मगण—SSS	भगण—S I I
तगण—SSI	नगण—I I I
रगण—SIS	सगण—I I S

जगण	तगण	जगण	रगण
I S I	S S I	I S I	S I S
श्रि यः कु	रू णा म	धि प स्य	पा ल नीं

यह समवृत्त है अतः इसके चारों चरण बराबर इसी प्रकार होंगे।

वाच्यपरिवर्त्तन—कुरूणामधिपस्य श्रियः पालनीं प्रजासु वृत्तिं वेदितुं यः अयुज्यत तेन वर्णिलिङ्गिना विदितेन वनेचरेण युधिष्ठिरः समाययेे।

सम्प्रति तत्कालोचितत्वमादेशयंस्तस्य सद्गुणसम्पन्नत्वमादर्शयन्नाह—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाचार प्रतिकूल होने पर भी शत्रु को वास्तविक स्थिति का वर्णन करने से उस वनेचर के चित्त में कोई क्षोभ नहीं आ—

कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे
जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः ।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं
प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः ॥ २ ॥

कृतप्रणामस्येति । कृतप्रणामस्य तत्कालोचितत्वात् कृतनमस्कारस्य सपत्नेन रिपुणा 'दुर्योधनेन 'रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः' इत्यमरः । जितां स्वायत्तीकृतां महीं महीभुजे युधिष्ठिराय क्रियाग्रहणात् सम्प्रदानत्वम् । निवेदयिष्यतः ज्ञापयिष्यतः । 'लृटः सद्वा' इति शतृप्रत्ययः । तस्य वनेचरस्य मनो न विव्यथे । कथमीदृगप्रियं राज्ञे विज्ञापयामीति मनसि न चचालेत्यर्थः । व्यथ भयचलनयोः इति धातोर्लिट् । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन समर्थयते—न हीति । हि यस्मात् हितमिच्छन्तीति हितैषिणः स्वामिहितार्थिनः पुरुषा मृषा मिथ्याभूतं प्रियं प्रवक्तुं नेच्छन्ति अन्यथा कार्यविघातकतया स्वामिद्रोहिणः स्युरिति भावः । 'अमौढ्यममान्द्यममृषाभाषित्वमभ्यूहकत्वं चेति चारगुणाः' इति नीतिवाक्यामृतम् ॥ २ ॥

अन्वय—कृतप्रणामस्य सपत्नेन जितां महीं महीभुजे निवेदयिष्यतः तस्य मनः न विव्यथे । हि हितैषिणः मृषा प्रियं प्रवक्तुं न इच्छन्ति ।

हिन्दी अनुवाद—प्रणाम करके शत्रु से जीत ली गई पृथ्वी का वृत्तान्त महाराज युधिष्ठिर से वर्णन करते हुए उस किरात का मन व्यथित नहीं हुआ । क्योंकि हितैषी पुरुष असत्य प्रिय बोलने की इच्छा नहीं करते ।

English Translation:—The heart of his, who, having rendered obeisance was about to report to the enjoyer of the earth that his world was conquered by the enemy, did not feel pain for those who are well-wishers do not wish to speak false pleasant words.

संस्कृतभावार्थ—तत्कालोचितमभिवादनं कृत्वा स वनेचरः युधिष्ठिराय नृपतये अरेः दुर्योधनस्य यथार्थं वृत्तान्तं विज्ञापितवान् । परञ्च स्वामिनः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समक्षं शत्रुप्रशंसां कुर्वतोऽपि तस्य मनसि किञ्चिदपि व्यथा न जाता। यतः य स्वामिनः हितमिच्छन्ति ते तु वास्तविकां स्थितिमज्ञापयित्वा तं प्रमत्तं न कुर्वन्ति। हितैषिणः कटुसत्यमपि कथयित्वा स्वकर्त्तव्यं पालयन्ति।

व्याख्या—वनेचर ने महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम करके दुर्योधन के प्रजा-विषयक व्यवहार को सत्य-सत्य कह दिया। कुछ नमक-मिर्च मिलाकर उसने अपने स्वामी को सुख देने वाली बातों को कहने की चेष्टा नहीं की। वह जानता था कि शत्रु की प्रशंसा करने से उसके स्वामी को कष्ट होगा तथापि अपने कर्त्तव्य को समझते हुए उसने वस्तुस्थिति का ठीक-ठीक वर्णन किया। वह वस्तुतः हितैषी है, अतः स्वामी को अन्धकार में नहीं रखना चाहता। क्योंकि शत्रु के बल को जानकर महाराज युधिष्ठिर उसका यथोचित प्रतिकार करने में समर्थ हो सकते हैं।

टिप्पणी—**कृतप्रणामस्य**—कृतः प्रणामः येन स तस्य (बहुव्रीहि) कृ+क्त+कर्मणि कृतः। प्र+नम्+घञ् भावे प्रणामः। **महीभुजे**—महीं भुनक्ति इति महीभुज् (मही+भुज्+क्विप् कर्त्तरि) तस्मै महीभुजे "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" सूत्र से यहाँ चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। जब तुमुन् प्रत्यय युक्त धातु का प्रयोग अव्यक्त रहे तो उसके कर्म में चतुर्थी प्रयुक्त होती है। जैसे 'फलेभ्यो याति कृष्णः' कृष्ण फल के लिए अर्थात् फल लाने के लिए जाता है। यहाँ याति क्रिया के साथ 'आहर्तुं' भाव के छिपे होने के कारण आहर्तुं के कर्म 'फल' में चतुर्थी प्रयुक्त होती है। वस्तुतः यहाँ 'महीभुजं बोधयितुं निवेदयिष्यतः' होना चाहिए था किन्तु बोधयितुं परोक्ष हो जाने से उसके कर्म महीभुज का प्रयोग चतुर्थी में हो गया। भाष्य के अनुसार 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' सूत्र से महीभुज में चतुर्थी प्रयुक्त हुई है। **सपत्नेन**—शत्रुणा दुर्योधनेन। **जिताम्**—व्याजद्यूतेनात्मसात्कृताम्। जि+क्त कर्मणि स्त्रियाम् "रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः" इत्यमरः। **निवेदयिष्यतः**—नि+विद्+णिच्+लृट्+शतृ+ङस्। यहाँ शतृप्रत्यय 'लृटः सद्वा' सूत्र से हुआ है। तस्य वनेचरस्य मनः (चेतः) 'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः। न **विव्यथे**—न विचलितं न वा भयान्वितं जातम्। व्यथ्+लिट् ए कर्त्तरि। 'व्यथ्—भयचलनयोः' इति धातोर्लिट्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(व्ययते, अव्यथिष्ट) विव्यथे का कर्त्ता है मनः। इस उक्ति का अर्थान्तरन्यास से समथन किया जाता है। हि—यतः यस्मात्। "हिः पादपूरणे हेतौ विशेषेऽप्यवधारणे। प्रश्ने हेत्वपदेशे च सम्भ्रमासूययोरपि" इति मेदिनी। हितैषिणः—हितमिच्छन्तीति हितैषिणः स्वामिहितार्थिनः पुरुषाः। हित+इष्+णिनि कर्त्तरि ताच्छील्ये। 'सुप्यजातौ णिनिः ताच्छील्ये' से णिनि प्रत्यय हुआ है। मषा—मिथ्या। 'मृषा मिथ्या तु वितथे' इत्यमरः। प्रियं—मधुरं प्रवक्तुं (कथयितुं) प्र+वच्+तुमुन्। न इच्छन्ति—नाभिलषन्ति। नीतिवाक्यामृत, ग्रन्थ में गुप्तचर के इन चार गुणों का उल्लेख है—अमूढ़ता, अशैथिल्य, सत्यभाषित्व तथा ठीक अनुमान करना। इस वनेचर में ये सभी गुण विद्यमान हैं, अतः कार्यविघात के भय से वह अप्रिय सत्य भी बेधड़क कहता है। वनेचर का प्रिय न कहकर हित के लिए वास्तविक बात कहना—इस विशेष कथन का समस्त हितैषियों के सत्य कथन रूप सामान्य उक्ति से समर्थन किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है। उसका लक्षण 'साहित्यदर्पण' में इस प्रकार है :—

सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि।
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते॥
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासः।

वाच्यपरिवर्त्तन—वनेचरस्य मनसा न विव्यथे, हितैषिभिः मृषा प्रियं न प्रवक्तुमिष्यते।

तथापि प्रियार्हे राज्ञि कटुनिष्ठुरोक्तिर्न युक्तेत्याशंक्य स्वाम्यनुज्ञया न दुष्यतीत्याशयेनाह—स्वामी की आज्ञा से उसने कहना आरंभ किया—

द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो
रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः।
स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं
विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे॥ ६॥

द्विषामिति—रहस्येकान्ते स वनेचरो द्विषां शत्रूणाम् कर्मणि षष्ठी। विघाताय विहन्तुमित्यर्थः। "तुमर्थाच्च भाववचनात्" इति तुमर्थे घञ्प्रत्ययः। अत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तादर्थ्यमपि न दोषः । तथापि प्रयोगवैचित्र्यविशेषस्याप्यलंकारत्वादेवं व्याचक्षते । विधातुं व्यापारं कर्त्तुमिच्छतः 'समानकर्तृकेषु तुमुन्' द्विषो विहन्तुमुद्युक्तज्ञानस्येत्यर्थः । अतएव भूभृतो युधिष्ठिरस्यानुज्ञामधिगम्य सुष्ठु भावः सौष्ठवं शब्दसामर्थ्यम् । सुष्ठुशब्दादव्ययादुद्गात्रादित्वादन्प्रत्ययः । उदारस्य भावः औदार्यमर्थसम्पत्तिः तयोर्द्वन्द्वः सौष्ठवौदार्ये । अत्रौदार्यशब्दस्याजाद्यदन्तत्वेऽपि 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' इत्यत्राल्पस्वरस्यापि हेतुशब्दस्य पूर्वनिपातमकुर्वता सूत्रकृतैव पूर्वनिपातस्यानित्यत्वज्ञापनान्न पूर्वनिपातः । उक्तं च काशिकायाम्—"अयमेव लक्षणहेत्वोरिति निर्देशः। पूर्वनिपातव्यभिचारचिह्नम्' इति । त एव विशेषः तयोर्वा विशेषः तेन शालते इति सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी ताम् । ताच्छील्ये णिनिः । विनिश्चितार्थां विशेषतः प्रमाणतो निर्णीतार्थामिति वक्ष्यमाणरूपां वाचमाददे स्वीकृतवान् । उवाचेत्यर्थः ।

अन्वय—स द्विषां विघाताय विधातुम् इच्छतः भूभृतः अनुज्ञाम् अधिगम्य रहसि सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं विनिश्चितार्थाम् इति वाचमाददे ।

हिन्दी अनुवाद—शत्रुओं के विनाश के लिए प्रयत्न करने के इच्छुक महाराज युधिष्ठिर का आदेश पाकर एकान्त में उस (वनेचर) ने शब्दवैचित्र्य और अर्थों के गुणों से विशेष रूप से सम्पन्न तथा प्रमाण से निर्णीत अर्थ वाली वाणी कही ।

English Translation:—Having got the permission in private of the sustainer of the earth *i.e.* king, who was anxious of arranging for the destruction of his enemies he made this speech possessed of excessive elegance and nobleness of thought and teeming with well ascertained facts.

संस्कृतभावार्थ—धर्मराजो युधिष्ठिरः कथं दुर्योधनो राज्यं करोति इति सर्वं यथार्थं वृत्तान्तं निवेदयितुं वनेचरमादिदेश । ततो वनेचरो युधिष्ठिरं प्रति शब्दार्थगुणशोभितां प्रमाणादिनिर्णीतविषयां नितिसारयुक्तां वाणीमुवाच ।

व्याख्या—दुर्योधनराज्यसंबंधी वृत्तान्त सुनने के लिए महाराज युधिष्ठिर अत्यन्त उत्सुक थे । वे अपने शत्रुओं का मूलोच्छेद करना चाहते थे, परन्तु वह उपाय वनेचर द्वारा सूचना मिलने पर निर्भर था । उसकी वाणी शब्दार्थचमत्कार से यक्त थी । यहाँ 'सौष्ठव' का अर्थ शब्दसौष्ठव और औदार्य का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तात्पर्य 'अर्थ की शोभा' है। अर्थ पूरा-पूरा होने के साथ ही उसमें प्रभावोत्पादकता भी है। क्योंकि शब्दवैचित्र्य के कारण उसमें वैसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

टिप्पणी—**सः**—धनेचरः। **द्विषाम्**—द्विषन्तीति द्विषः द्विष्+क्विप् कर्त्तरि तेषाम्। यहाँ षष्ठीविभक्ति 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र से हुई है, जिसकी व्याख्या प्रथम श्लोक की टिप्पणी में द्रष्टव्य है। **विघाताय**—विहन्तुमिति विघातः (वि+हन् घञ् भावे) विघातः। यहाँ तुमर्थ में 'भाववचनाच्च' से घञ् तथा चतुर्थी विभक्ति 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' अर्थात् किसी धातु में यदि तुमुन् प्रत्यय न जोड़ कर धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा का प्रयोग करें तो चतुर्थी लगती है—सूत्र से चतुर्थी हुई है। **विधातुम्**—वि+धा+तुमुन् भावे। यह अकर्मक प्रयोग है। मल्लिनाथ ने व्यापारं कर्तुम् अर्थ किया है। **इच्छतः**—इष्+शतृ, तस्य। **भूभृतः**—भुवं बिभ्रतीति भूभृत् (भू+भृञ्+क्विप् कर्तरि) तस्य। शेषे षष्ठी। 'भूभृद् भूमिधरे नृपे।' इत्यमरः। **अनुज्ञाम्**—अनु+ज्ञा+अङ् भावे, ताम्। अनुमतिम्। **अधिगम्य**—अधि+गम्+ल्यप्। वैकल्पिक रूप अधिगत्य भी है (अधिगत्य जगत्यधीश्वरादथ—नैषध) प्राप्त करके। **रहसि**—एकान्त में। रमन्ते अस्मिन्निति रहः (रम्+असुन्) तस्मिन्। मल्लिनाथ ने इसका संबंध अधिगम्य के साथ दिखाया है, जिसका अर्थ है 'उस वनेचर ने एकान्त में युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर' किन्तु वास्तव में तात्पर्य यह है कि आज्ञा पाकर वनेचर ने सारा वृत्तान्त एकान्त में कह सुनाया। इसका समर्थन इसी सर्ग के २६ वें श्लोक 'इतीरयित्वा गिरमात्तसत्क्रिये गतेऽथ पत्यौ वनसन्निवासिनाम्। प्रविश्य कृष्णासदनं महीभुजा तदाचचक्षेऽनुजसन्निधौ वचः॥' से होता है, जहाँ युधिष्ठिर ने द्रौपदी और अपने भाइयों के समक्ष सूचना दी कि वनेचर ने यह वृत्तान्त उनको एकान्त में बतलाया है। 'विविक्तविजनच्छन्ननिःशलाकास्तथा रहः।' इत्यमरः। **सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं**—सौष्ठव और औदार्य से शोभित। सुष्ठु भावः सौष्ठवम् (सुष्ठु+अञ्) उदारस्य भावः औदार्यम् (उदार+ष्यञ्) सौष्ठवञ्च औदार्यञ्च सौष्ठवौदार्ये (इतरेतर द्वन्द्व) त एव विशेषः तयोर्वा विशेषः तेन शालते शोभते इति सौष्ठवौदार्यविशेष+शाल्+णिनि कर्त्तरि (ताच्छील्ये)+ङीप् स्त्रियाम्, ताम् सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम्। यहाँ पर सौष्ठवौदार्ये समस्त पद में 'अजाद्यन्तम्' सूत्र के अनुसार स्वरादि शब्द औदार्य का पूर्व प्रयोग होना चाहिए किन्तु ऐसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं हुआ। क्योंकि पाणिनि ने 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' सूत्र में 'लक्षणहेत्वोः' द्वन्द्व समास के अन्तर्गत हेतु शब्द का 'अल्पाच्तरम्' सूत्र से पूर्वनिपात न प्राप्त होने पर भी पूर्वनिपात नहीं किया। अतः यह स्पष्ट है कि पूर्वनिपात के नियमों में परिवर्तन नहीं होता। काशिका में भी कहा गया है—'अयमेव हेत्वोरिति निर्देशः पूर्वनिपातव्यभिचारचिह्नम्।' विनिश्चितार्थाम्—विशेषेण निश्चितः विनिश्चितः तादृशः अर्थः यस्याः सा ताम् (बहुव्रीहि)—विशेष प्रमाणों से निश्चित विषय वाली। इति—एवम्। वाचम्—वाणीम्। आददे—स्वीचकार उवाचेत्यर्थः। आङ्+दा+लिट्+ए [ददाति, दत्ते, अददात्, अदत्त, अदात्, अदित, ददौ, ददे] 'आददे' में 'आङो दोऽनास्यविहरणे' सूत्र से आत्मनेपद हुआ है। दा का अर्थ देना है, पर आङ् उपसर्ग लगाने के कारण स्वीकार करना या कहना अर्थ होगा। अलंकार अनुप्रास है।

वाच्यपरिवर्त्तन—भूभृतोऽनुज्ञामधिगम्य तेन सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी विनिश्चितार्था इति वाक् आददे।

प्रथमं तावत्प्रत्यक्षक्षोभकमात्मानं प्रत्यक्षोभं याचते—सर्वप्रथम वह हितकारी अतएव अप्रिय निवेदन करने वाले अपने लिए क्षमा याचना करता है, क्योंकि वह अपने स्वामी को धोखे में नहीं डालना चाहता—

क्रियासु युक्तैर्नृप चारचक्षुषो न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ॥४॥

क्रियास्विति—हे नृप, क्रियासु कृत्यवस्तुषु युक्तैर्नियुक्तैरनुजीविभिर्भृत्यैः। चारादिभिरित्यर्थः। चरन्तीति चराः। पचाद्यच्। त एव चाराः। चरेः पचाद्यजन्तात्प्रज्ञादित्वादण्प्रत्ययः। त एव चक्षुर्येषां ते चारचक्षुषः। 'स्वपरमंडले कार्याकार्यावलोकने चाराश्चक्षूंषि क्षितिपतीनाम्' इति नीतिवाक्यामृतम्। प्रभवो निग्रहानुग्रहसमर्थाः स्वामिनो न वञ्चनीया न प्रतारणीयाः। सत्यमेव वक्तव्या इत्यर्थः। चारापचारे चक्षुरपचारवद्राजां पदे निपात इति भावः। 'अतोऽप्रतार्यत्वाद्धेतोः। असाध्वप्रियं साधु प्रियं वा मदुक्तमिति शेषः। क्षन्तुं सोढुमर्हसि। कुतः। हितं पथ्यं मनोहारि प्रियं च वचो दुर्लभम्। अतो मद्वचोऽपि हितत्वादप्रियमपि क्षन्तव्यमित्यर्थः।

अन्वय—हे नृप, क्रियासु युक्तैः अनुजीविभिः चारचक्षुषः प्रभवः न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वञ्चनीयाः अतः असाधु साधु वा (मदुक्तं) क्षन्तुम् अर्हसि। हितं मनोहारि च वचः दुर्लभम्।

हिन्दी अनुवाद—हे राजन्! कार्यों में नियुक्त किये गये भृत्यों को गुप्तचर रूपी नेत्रों वाले स्वामी को धोखा नहीं देना चाहिए। इसलिए प्रिय अथवा अप्रिय मेरे (कथन) को आप क्षमा करें। क्योंकि हित करने वाली और प्रिय वाणी दुर्लभ होता है।

English Translation—O king, masters whose spies are their eyes are not to be deceived by the dependents entrusted with special duties. So you should pardon my (for my words) whether agreeable or disagreeable. For the beneficial and pleasant advice is rare.

संस्कृतभावार्थ—मदुक्तं यदि अप्रियमपि स्यात् तदा भवान्न कुप्येदिति वनेचरः कथयति। यतः कार्येषु नियुक्तैः भृत्यैः सर्वथा स्वामिने सत्यमेव निवेद्यम्। भयान्न कदापि अप्रिया स्थितिः गोपनीया। चारास्तु तेषां चक्षु। अतः ते प्रियवचननिवेदनेन स्वामिनं न वञ्चयेयुः। प्रियमप्रियं वा सवमेव यथार्थं प्रभवे निवेदनीयम्। यतः परिणामे कल्याणकरं तथा प्रियं च कथनं सर्वथैव दुर्लभम्। अतः सेवकः परुषमपि वाक्यं यदि हितावहं तदेव निर्भयं कथयेत्।

व्याख्या—राज्य का सम्पूर्ण कार्य स्वयं देखना राजा के लिए असंभव है। अतः उन्हें राज्य भर का समाचार गुप्तचरों द्वारा मिलना चाहिए। ऐसी स्थिति में राजा और राज्य दोनों के ही कल्याण के लिए गुप्तचर का सच्चा होना आवश्यक है। वनेचर इस बात को जानता था। वह यह भी जानता था कि यथार्थ बात अप्रिय होने से महाराज युधिष्ठिर को कटु प्रतीत होगी। इसलिए वह अपनी कटूक्ति के लिए क्षमा-याचना करता हुआ कहता है कि हितकर और प्रिय वचन दुर्लभ है। अतः मेरी कटूक्ति को आप हितकर समझ कर मुझे क्षमा कीजिए।

टिप्पणी—हे नृप—राजन्। नॄन् पातीति नृपः (नृ+पा+क कर्त्तरि) उपपदतत्पुरुष। तत्संबुद्धौ। क्रियासु—करणीयेषु कृ+भावे श तासु। युक्तैः—संयोजितैः। युज्+क्त कर्मणि तः। अनुजीविभिः—भृत्यैः सेवकों से। अनुजीवितुं शीलमेषाम् अनु+जीव्+णिनि कर्त्तरि ताच्छील्ये। अनक्ते कर्त्तरि तृतीया। 'सेवकार्थ्यजीविनः' इत्यमरः। चारचक्षुषः—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रणिधिनेत्राः। चरन्तीति चराः—(चर्+अच्) चर एव चाराः (प्रज्ञादित्वात्स्वार्थेऽण्)। चाराः चक्षूंषि येषां ते (बहुव्रीहि) गुप्तचर राजाओं के नेत्र कहे गये हैं, क्योंकि राजा को राज्य के समाचार गुप्तचर द्वारा ही ज्ञात होते हैं। न वञ्चनीयाः—न प्रतारणीयाः। वञ्च्+णिच् (चुरादि)+अनीयर् कर्मणि। उक्ते कर्मणि प्रथमा। प्रभवः—प्रभवन्तीति प्र+भू+क्विप् कर्त्तरि। अतः—अस्मात् हेतोः। एतद्+ङसि+तस् 'पंचम्यास्तसिल्' इत्यनेन। यह शब्द अव्यय है। असाधु—अप्रियं, साधु—प्रियं वा मत्कथनं। क्षन्तुं—सोढुं सहने के लिए। अर्हसि—युज्यसे। अर्ह्+लट्+सि। हितं—हितकरं, परिणामकल्याणकरम्। मनोहारि—मनो हर्तुं शीलमस्येति मनोहारि (उपपदतत्पुरुष) सद्यः प्रियम्। (मनस्+हृ+णिनि कर्त्तरि ताच्छील्ये)। वचः—वचनम्। दुर्लभम्—दुःखेन लभ्यते (उपपदतत्पुरुष) दुर्+लभ्+खल् कर्मणि। यहाँ 'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राऽकृच्छ्रार्थेषु खल्' सूत्र से खल् प्रत्यय दुः के कारण लगा है। पूर्व ईषद्, दुर्, सु में से कोई कृच्छ्र (कठिनता) अथवा अकृच्छ्र (सुगमता) के अर्थ में आवे तो धातु में खल् प्रत्यय लगता है। इस श्लोक में विशष का सामान्य से समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

वाच्यपरिवर्त्तन—क्रियासु युक्ताः अनुजीविनः चारचक्षुषः प्रभून् न वञ्चययुः। अतः असाधु साधु व वाचनं त्वया अर्ह्यते। हितेन मनोहारिणा वचसा दुर्लभेन भूयते।

तर्हि तूष्णींभाव एव वरमित्याशंक्याह—

यदि कटु वचन ही अपेक्षित है तो मौन रहना ही कल्याणकारी है। इस शंका का निवारण करते हुए वनेचर कहता है कि स्पष्टवादी हितैषी से राजा को शान्तिपूर्वक सुनना चाहिए—

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः॥ ५॥

स इति। यः सखा अमात्यादिः अधिपं स्वामिनं हितं न शास्ति नोपदिशति। 'ब्रुविशासि' इत्यादिना शासेर्दुहादिपाठाद् द्विकर्मकत्वम्। स

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितानुपदेष्टा कुत्सितः सखा किंसखा । दुर्मन्त्रीत्यर्थः । 'किमः क्षेपे' इति समासान्तप्रतिषेधः । तथा यः प्रभुर्निग्रहानुग्रहसमर्थः स्वामी हितादाप्तजनाद्धितोपदेष्टुः सकाशात् । 'आख्यातोपयोगे' इत्यपादानात्पंचमी । न संशृणुते न शृणोतीति शेषः । 'समो गम्यृच्छि' इत्यादिना सम्पूर्वाच्छृणोतेरकर्मकादात्मनेपदम्, अकर्मकत्वम् वैवक्षिकम् । स हितमश्रोता प्रभुः किंप्रभुः कुत्सितस्वामी पूर्ववत् समासः । सर्वथा सचिवेन श्रोतव्यं वक्तव्यं स्वामिना । एवं च राजमंत्रिणोरैकमत्यं स्यादित्यर्थः । ऐकमत्यस्य फलमाह—सदेति । हि यस्मान्नृपेषु अमा सह भवा अमात्यास्तेषु च । 'अव्ययात्त्यप्' । अनुकूलेषु परस्परानुरक्तेषु सत्सु सर्वसम्पदः सदा रतिमनुरागं कुर्वते कुर्वन्ति । न जातु जहतीत्यर्थः । अातेि मया वक्तव्यं त्वया च श्रोतव्यमिति भावः । अत्रैवं राजमंत्रिणोर्हितानुपदेशतदश्रवणनिन्दासामर्थ्यसिद्धैरैकमत्यलक्षणकारणस्य निर्दिष्टस्य सर्वसम्पत्सिद्धिरूपकार्येण समर्थनात् कार्येण कारणसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽलंकारः । तदुक्तम्—'सामान्यविशेषकार्यकारणभावाभ्यां निर्दिष्टप्रकृतसमर्थनमर्थान्तरन्यासः' इति ।

अन्वय—यः अधिपं साधु न शास्ति स किंसखा । यः हितात् न संशृणुते स किंप्रभुः । हि नृपेषु अमात्येषु च अनुकूलेषु सर्वसम्पदः सदा रतिम् कुर्वते ।

हिन्दी अनुवाद—जो स्वामी को उचित उपदेश नहीं देता वह बुरा मित्र है । जो (स्वामी) हितैषी से (हित की बात) नहीं सुनता वह बुरा स्वामी है । क्योंकि सारी समृद्धियाँ राजाओं और मंत्रियों के परस्पर अनुकूल होने पर सदैव अनुराग करती हैं ।

English Translation—He is a bad friend who does not advise the master rightly, he is a bad master who does not hear from his well-wisher. All prosperity always holds revelry where king and ministers act together unitedly.

संस्कृतभावार्थ—यः स्वस्वामिने सत्यरामर्शं ददाति स योग्योऽमात्यः । यः अधिपः हितोपदेशकस्यामात्यस्योपदेशं श्रुत्वा स्वीकरोति स योग्यः प्रभुः । यत्र राजा मंत्रिणश्च अन्योन्यासक्ताः सन्तः सर्वकार्यं सम्पादयन्ति तत्र सर्वाः सम्पत्तयः गुणबद्धा इव स्वयं निवासहेतोः गच्छन्ति । अन्यत्रोपगन्तुं पदं न कुर्वन्ति । अतएव त्वं सत्यं हितकरं मम वचनं शान्तमनसा श्रोतुम् अर्हसि ।

व्याख्या—यदि मंत्री राजा को उचित सलाह नहीं देते तो वे कुत्सित मंत्री हैं तथा जो राजा अपने हितैषी की बात सावधानी से नहीं सुनता उनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्पष्टवादिता पर क्रुद्ध हो जाता है वह बुरा राजा है। क्योंकि जब राजा और मंत्री परस्पर अनुकूल होते हुए एकता से कार्य सम्पादन करते हैं तब सारी सम्पत्तियाँ उनके राज्य में निवास करती हैं। अतः मेरा कर्त्तव्य है कि मैं यथार्थ बात कहूँ और आपका कर्त्तव्य है कि आप उसे सावधानी से शान्तिपूर्वक सुनें।

टिप्पणी—**यः**—जनः। **अधिपम्**—स्वामिनम्, स्वामी को। **साधु**—यहाँ साधु शब्द विशेषण न हेकर संज्ञा है और इसका अर्थ है 'सत्परामर्श'। यह शास्ति क्रिया का प्रधान कर्म है। **न शास्ति**—शास्+लट् ति। नोपदिशति। शास् धातु दुहादिगण में होने के कारण द्विकर्मक है। इसका प्रधान कर्म 'साधु' और गौणकर्म 'अधिप' है। 'दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथमुषाम्। कमयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्।'—ये द्विकर्मक धातुएँ हैं। **सः**—जनः। **किंसखा**—दुर्मित्रम्। कुत्सितश्चासौ सखा किंसखा (कर्मधारय) 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' सूत्र से टच् भी प्राप्त था किन्तु 'किमःक्षेपे' से प्रतिषेध हो गया। 'स्निग्धः सवयाः अथ मित्रं सखा सुहृत्' इत्यमरः। 'किं पृच्छाया जुगुप्सने' इत्यमरः। **यः**—राजा। **हितात्**—हितोपदेशकात् जनादमात्याद्वा। धा+क्त नपुंसके भावे। हितमस्ति अस्य इति। हित+अच् मत्वर्थीयः हितः। 'अर्श आदिभ्योऽच्' सूत्र से यहाँ अच् प्रत्यय हुआ है। हितः आप्तजनः तस्मात्। यहाँ पर अपादान अर्थ में पंचमी का विधान 'आख्यातोपयोगे च' सूत्र से हितैषी से उपदेश सुने जाने के कारण हुआ है जिसका अर्थ है 'जब किसी गुरु या अध्यापक से कोई चीज नियमपूर्वक पढ़ी जाती है तो उपदेशक या विद्यादाता गुरु की अपादान संज्ञा होकर वह पंचमी में प्रयुक्त होता है।' **न संशृणुते**—सम्+श्रु+लट् ते हितवाक्यमपि नाकर्णयति—नही सुनता। श्रु धातु वस्तुतः सकर्मक है किन्तु कर्म की विवक्षा न होने के कारण अग्रलिखित कारिका के अनुसार अकर्मक हो गयी है "धातोरर्थान्तरे वृत्त धात्वर्थेनोपसंग्रहात्। प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया।।" मल्लिनाथ ने आत्मनेपद के लिए 'समो गम्यृच्छि—इत्यादिना' कहकर काशिका के पाठ का उल्लेख किया है (इसका अर्थ—सम् उपसर्गपूर्वक गम् और ऋच्छ धातुओं का अकर्मक होने के कारण आत्मनेपद में प्रयोग होता है।) काशिकाकार द्वारा इस वार्तिक को 'समो गम्यृच्छिभ्याम्' सूत्र के साथ मिलाकर 'समो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गम्यृच्छिभ्यामर्त्तिश्रुदृशिभ्यश्च' पाठ कर दिया गया है। जिसका उल्लेख मल्लिनाथ ने किया है। वास्तव में 'अर्तिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम्' अर्थात् सम् उपसर्गपूर्वक ऋ, श्रु, दृश् धातुएँ अकर्मक होने पर आत्मनेपद में प्रयुक्त होती हैं—इस वार्तिक से यहाँ आत्मनेपद हुआ है। किंप्रभुः—कुत्सितः प्रभुः (कर्मधारय) अविवेकवानधिपः। हि—यतः। सदा—सर्वस्मिन् काले (सर्व+ङि+दा) स्वार्थे अधिकरणे सप्तमी। अव्ययत्वात् विभक्तिलोपः। अनुकूलेषु—अन्योन्यानुरक्तेषु। कूलम् अनुगताः तेषु (प्रादितत्पुरुष) नृपेषु अमात्येषु च परस्परानुरक्तेषु सत्सु। सर्वसम्पदः—निखिलसम्पत्तयः। सम्पद्यन्ते इति सम्+पद्+क्विप् भावे+जस्। सर्वाश्च ताः सम्पदः सर्वसम्पदः (कर्मधारय)। रतिम्—अनुरागम्—रम्+क्तिन् भावे, ताम्। कुर्वते—कृ+लट्+अन्ते। 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' सूत्र से कृ धातु आत्मनेपद हो गई। 'सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च' इत्यमरः। 'सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्' इत्यमरः। 'हि हेतावधारणे' इत्यमरः। यहाँ मंत्री द्वारा हितकर वचन न कहने तथा राजा हितकर वचन न सुनने की निन्दा करके सिद्ध राजा और मंत्री की अन्योन्यानुकूलता रूप कारण का समर्थन सर्वसम्पत्तिलाभरूप कार्य से होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

वाच्यपरिवर्त्तन—येन अधिपः साधु न शिष्यते तेन किंसखिना भूयते। येन हितान्न संश्रूयते तेन किंप्रभुणा भूयते। हि सदानुकूलेषु नृपेष्वमात्येषु सर्वसम्पद्भिः रतिः क्रियते।

सम्प्रति स्वाहंकारं परिहरति—

वनेचर अपना गर्व दूरकर विनम्रतापूर्वक युधिष्ठिर का महत्त्व बतलाता है—

निसर्गदुर्बोधमबोधविक्लवा
क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तवः।
तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया
निगूढतत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम् ॥ ६ ॥

निसर्गेति। निसर्गदुर्बोधं स्वभावदुर्ग्रहम्। 'ईषद्दुः'—इत्यादिना खलु प्रत्ययः। भूपतीनां चरितं क्व। अबोधविक्लवा अज्ञानोपहता जन्तवः। मादृशाः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पामरजना इत्यर्थः। क्व। नोभयं संघटत इत्यर्थः। तथापि निगूढतत्त्वं संवृतयाथार्थ्यं विद्विषां नयवर्त्म षाड्गुण्यप्रयोगः। 'सन्धिविग्रहयानानि संस्थाप्यासनमेव च। द्वैधीभावश्च विज्ञेयाः षड्गुणाः नीतिवेदिनाम् ॥' इत्यादिरूपो यन्मयावेदि। ज्ञातमिति यावत्। विदेः कर्मणि लुङ्। अयम्। इदं वेदनमित्यर्थः। विधेयप्राधान्यात् पुंल्लिङ्गनिर्देशः। तवानुभावः सामर्थ्यम्। अनुगतो भावः अनुभावः इति घञन्तेन प्रादिसमासः। न तूपसृष्टाद् घञ्प्रत्ययः। श्रिणीभुवोऽनुपसर्गाद् भवतेर्वातोर्घञ्विधानात्। अतएव काशिकायाम्—कथं प्रभावो राज्ञां प्रकृष्टो भावः इति प्रादिसमास इति। दोषपरिहारो सम्यग्ज्ञात्वैव विज्ञापयामि। न तु वृथा कर्णकठोरं प्रलपामीत्याशयः।

अन्वय—निसर्गदुर्बोधं भूपतीनां चरितं क्व, अबोधविक्लवा जन्तवः क्व, (तथापि) निगूढतत्त्वं विद्विषां नयवर्त्म यत् मया अवेदि (तत्) अयम् तव अनुभावः।

हिन्दी अनुवाद—कहाँ स्वभावतः न समझने योग्य राजाओं का चरित्र और कहाँ मेरे समान अज्ञान के कारण अशक्त प्राणी ? (ऐसा होने पर भी) जो मैंने आपके शत्रुओं के गूढ़तत्त्व वाले नीतिमार्ग को जान लिया, वह आपका ही प्रभाव है।

English Translation—Where are the naturally incomprehensible undertakings of kings, and where are the creatures like me helpless due to lack of intelligence. It is on account of you that the well-concealed course of the enemies' policy was disclosed to me.

संस्कृतभावार्थ—सम्प्रति स्वहंकारं च परिहरन् वनेचरः निवेदयति राज्ञां प्रकृतिगंभीरं चरितं सुबुद्धिनाऽपि सम्यग्ज्ञातुं न शक्यते। मादृशानां मूढजनानां तु का कथा। अहं तु तंदवगन्तुमसमर्थोऽस्मि। इत्थंभूतेऽपि यन्मया ज्ञातं तत्सर्वं तु तत्रभवतां प्रसादादेवावगतम्।

व्याख्या—राजाओं की वैदेशिक नीति समझना साधारण मनुष्यों के लिए कठिन है। वनेचर चतुर पर्यवेक्षक था। यद्यपि उसके लिए राजनीति के सन्धि, विग्रह, यान, संस्थापन, आसन तथा द्वैधीभावादि छह गुणों का प्रयोग जानना असंभव था तथापि महाराज युधिष्ठिर ने उसे उस विषय का ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भेजने के पूर्व ही करा दिया था। अतः वह दुर्योधन के कार्यों को सुगमता से ठीक-ठीक समझ सका और वह विनम्रतापूर्वक युधिष्ठिर से कहता है कि आपकी ही कृपा से मैं शत्रुनीति को समझ सका हूँ।

टिप्पणी—**निसर्गदुर्बोधम्**—प्रकृतिदुर्ज्ञेयम्। स्वभाव से ही दुर्ज्ञेय। विसृज्यते इति निसर्गः (नि+सृज्+घञ् भावे) दुःखेन बुध्यते इति दुर्बोधम् (दुर्+बुध्+खल् कर्मणि) निसर्गेण दुर्बोधम् (तृतीया तत्पुरुष) यहाँ 'दुर्बोधम्' में खल् प्रत्यय 'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्' सूत्र से हुआ है। **अबोधविक्लवाः**—अज्ञानोपहताः। अविवेक से विमूढ। न बोधः अबोधः (नञ् तत्पुरुष) विगतः क्लवः शक्तिः येषां ते विक्लवाः (बहुव्रीहि) अबोधेन विक्लवाः अबोधविक्लवाः (तृतीयातत्पुरुष)। यहाँ अबोधः में नञ् अभावार्थ में है। **भूपतीनां**—पातीति पा+डरि कर्त्तरि=पति, भुवः पतयः, तेषाम् (षष्ठीतत्पुरुष) नृपाणाम्। 'पतिः समास एव' सूत्र से अर्थात् समास में पति शब्द का रूप इकारान्त पुंलिंग शब्दों के समान चलता है। **चरितम्**—वृत्तम्। **क्व**—कहाँ। क्व चरितः क्व जन्तवः—दो 'क्व' का प्रयोग महान् अन्तर सूचित करता है। इससे यह ज्ञात होता है कि दोनों में महान् अन्तर है। साधारण मनुष्य राजाओं की आन्तरिक राजनीति समझने में सर्वथा असमर्थ है। यथा रघुवंशस्य प्रथमसर्गे—'क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः' तथा कुमारसम्भवस्य पंचमसर्गे—'तपः क्व वत्से क्व च तावकं वपुः'। **निगूढतत्त्वम्**—निगूढं तत्त्वं यस्य तत् (बहुव्रीहिः) नि+गुह्+क्त कर्मणि—निगूढम् निगूढतत्त्वं नयवर्त्म का विशेषण है। **विद्विषाम्**—शत्रूणाम्। विशेषण द्विषः विद्विषः तेषां विद्विषाम्। **नयवर्त्म**—नीयतेऽनेनेति नयः (नी+अच्+बाहुलकात्) यहाँ घञ् प्रत्यय वास्तव में 'श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे' सूत्र से प्राप्त हुआ पर बाहुलकात् अच् अनियमित रूप से (irregularly) हो गया है। भट्टोजिदीक्षित कहते हैं—'कथं राज्ञो नय इति बाहुलकात्'। नयस्य वर्त्म इति नयवर्त्म (षष्ठी तत्पुरुष) उक्ते कर्मणि प्रथमा। नयवर्त्म से तात्पर्य राजनीति के उन छः गुणों के प्रयोग से है, जिनका उल्लेख नीतिशास्त्र में किया गया है। यथा—'सन्धिविग्रहयानानि संस्थाप्यासनमेव च। द्वैधीभावश्च विज्ञेयाः षड्गुणाः नीतिवेदिनाम् ।।" अर्थात् सन्धि—मेल, विग्रह—शत्रु से लड़ाई करना, यान—चढ़ाई, आसन—सेना को सज्जित करके अवसर की प्रतीक्षा करना, द्वैधीभाव—सन्धि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विग्रह अर्थात् अपनी सेना दो दलों में विभक्त करके एक के द्वारा मैत्री करना तथा दूसरे के द्वारा अकस्मात् आक्रमण कर देना। आश्रय—आत्मसमर्पण ये षड्गुण कहलाते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र में छः गुण इस प्रकार बतलाये गये हैं—"तत्र पणबन्धः सन्धिः, अपकारो विग्रहः, उपेक्षणम् आसनम्, अभ्युच्चयो यानम्, परार्पणं संश्रयः, सन्धिविग्रहोपादानं द्वैधीभावेति षड्गुणाः।" यत् अवेदि—यत् ज्ञातम्। विद् अदादि+लुङ् त=अवेदि। मया—वनेचरेण। (तत्) अयम् तव—युधिष्ठिरस्य। अनुभावः—प्रभावः। भवनं भावः भू+घञ् भावे—अवस्था, अनुगतः भावः अनुभावः प्रादितत्पुरुष। 'अनु' 'भू' धातु का उपसर्ग नहीं है 'श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे' अर्थात् श्रि, नी और भू धातुओं में घञ् प्रत्यय तब लगता है जब उनके पहले उपसर्ग न हो यदि भू धातु के पहले 'अनु' उपसर्ग मान लें तो भावः रूप नहीं बनेगा। अतः अनुभावः में 'अनु' उपसर्ग भावः के पूर्व है न कि अनु+भू+घञ्। अयम् अनुभाव का विशेषण है अनुभाव विधेय है और विधेय ही प्रधान है अतः अयं रूप पुंलिंग में प्रयुक्त हुआ है। मल्लिनाथ का कथन है—"विधेयप्रधान्यात् पुंलिंग-निर्देशः।" यही भाव अभिज्ञानशाकुन्तल के सप्तम अंक में प्रदर्शित किया गया है :—

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्॥

इस श्लोक में विषमालंकार है—तल्लक्षणं साहित्यदर्पणे "गुणौ क्रिये वा चेत्स्यातां विरुद्धे हेतुकार्ययोः। यद्वाब्धस्य वैफल्यमनर्थस्य च संभवः। विरूपयोः संघटना या च तद्विषमं मतम्" अर्थात् यदि कार्य और कारण के गुण या क्रियाएँ परस्पर विरुद्ध हों अथवा आरंभ किया हुआ कार्य पूरा न हो प्रत्युत कुछ अनर्थ आ पड़े या दो विरूप पदार्थों का मेल हो तो वहाँ विषमालंकार होता है।

वाच्यपरिवर्त्तन—निसर्गदुर्बोधेन भूपतीनां चरितेन क्व (भूयते) अबोध-विक्लवैः जन्तुभिः क्व (भूयते), निगूढ तत्त्वं विद्विषां नयवर्त्म यदहम् अवेदिषम् अनेन तवानुभावेन भूयते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्प्रति यद्वक्तव्यं तदाह—

अब जो कहना चाहिए वही कह रहा है कि दुर्योधन को आपका भय है, इस कारण अन्याय से जीते हुए राज्य को नीतिपूर्वक शासन के द्वारा स्थिर रखने का प्रयत्न कर रहा है—

वशंकमानो भवतः पराभवं नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः ।
दुरोदरच्छद्मजितां समीहते नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः ॥७॥

विशंकमानः इति । सुखेन युध्यते सुयोधनः । 'भाषायां शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज्वाच्यः' । नृपासनस्थः सिंहासनस्थोऽपि । वनमधिवसतीति तस्माद् वनाधिवासिनो वनस्थात् राज्यभ्रष्टादपीत्यर्थः भवतस्त्वत्तः पराभवं पराजयं विशंकमानः उत्प्रेक्षमाणः सन् । दुष्टमुदरमस्येति दुरोदलं द्यूतम् । पृषोदरादित्वात्साधुः । 'दुरोदरे द्यूतकारे पणे द्यूते दुरोदरम्' इत्यमरः । तस्य छद्मना मिषेण जितां लब्धां दुर्नयार्जितां जगतीं महीम् । 'जगती विष्टपे मह्यां वास्तुच्छन्दोविशेषयोः' इति वैजयन्ती । नयेन नीत्या जेतुं वशीकर्त्तुं समीहते व्याप्रियते । न तूदास्त इत्यर्थः । वलवत्स्वामिकमविशुद्धागमञ्च धनं भुंजानस्य कुतो मनः समाधिरिति भावः । अत्र 'दुरोदरच्छद्मजिताम्' इति विशेषणपदार्थस्य चतुर्थपादार्थं प्रति हेतुत्वेनोपन्यासाद् द्वितीयकाव्यलिंगमलंकारः । तदुक्तम्— 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्' ।

अन्वय—नृपासनस्थः अपि सुयोधनः वनाधिवासिनः भवतः पराभवं विशंकमानः दुरोदरच्छद्मजितां जगतीं नयेन जेतुं समीहते ।

हिन्दी अनुवाद—राजसिंहासन पर बैठा हुआ भी दुर्योधन वन में निवास करने वाले आप से विजित होने की आशंका करता हुआ जुए रूपी कपट से अथवा जुए के वहाने जीती हुई पृथ्वी को (अब) नीति से जीतना चाहता है ।

Egnlish Translation:—Suyodhana, though seated on the royal throne apprehending defeat from you, the forest-dweller, desires to conquer the world by policy won by him through trick at dice.

संस्कृतभावार्थ—अधुना सुयोधनस्य प्रजासु वृत्तिं सूचयन्नाह । राजसिंहा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सनारूढोऽपि दुर्योधनः वनचारिणः भवतः सततं पराजयमाशंकमानः विक्रमेण भवन्तं जेतुमसंभवमवगच्छन् कपटद्यूतेन वशीकृतां भूमिं न्यायाचरणेन संप्रति जेतुमिच्छति ।

व्याख्या—यद्यपि दुर्योधन राजसिंहानारूढ़ है और आप वनवासी हैं तथापि उसको आपसे भय है कि किसी भी दिन आप युद्ध में उसे परास्त करके अपना राज्य वापस ले सकते हैं। अतः न्यायपूर्वक शासन द्वारा प्रजा को आपकी ओर से उदासीन करके कपटद्यूत से प्राप्त राज्य को सुदृढ़ रखना चाहता है। उसका न्यायपूर्वक शासन भी सौजन्य के कारण नहीं है बल्कि स्वार्थसिद्धि के लिए है।

टिप्पणी—नृपासनस्थोऽपि—राजपीठाधिष्ठितोऽपि । राजसिंहासन पर स्थित होने पर भी। नॄन् पातीति नृपः (उपपदतत्पुरुष) । आस्यतेऽस्मिन् इति आसनम् (आस्+ल्युट् अधिकरणे) नृपस्य आसनं नृपासनं (षष्ठीतत्पुरुष) तस्मिन् तिष्ठतीति नृपासनस्थः (उपपदतत्पुरुष) नृपासन+स्था+क कर्त्तरि । अपि—'गर्हा' अर्थ में है क्योंकि सिंहासनस्थ होकर भी दुर्योधन युधिष्ठिर से डरता है। इस भाव से उसकी प्रतिष्ठा निन्दित होती है । सुयोधनः—दुर्योधनः । सुखेन युध्यते इति सु+युध्+युच् कर्त्तरि सुयोधनः (उपपदतत्पुरुष) । 'भाषायां शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज् वाच्यः' वार्त्तिक से युच् प्रत्यय हुआ है। वनाधिवासिनः—वनं (द्वैतवनम्) अधिवसतीति वनाधिवासी (वन+अधि+वस्+णिनि) कर्त्तरि, तस्मात् (उपपदतत्पुरुष) । भवतः—त्वत्तः—भातीति भवत् (भा+डवतु कर्त्तरि), तस्मात् । यहाँ 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' सूत्र से पञ्चमी हुई । 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' सूत्र से पञ्चमी यहाँ इस कारण नहीं हो सकती कि 'विशंकमानः' शब्द के अभाव में भी 'भवतः' में पञ्चमी प्राप्त थी । यथा—'अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम् ।। शा० तृ० ११ ।' पराभवम्—पराजयम् (परा+भू+अप भावे) तम् । विशङ्कमान का कर्म है । 'पराभवः परिभवः परिभूतः पराजयः' इति कोषः । विशङ्कमानः—आशंका करते हुए । वि + शंक् + शानच् कर्त्तरि । दुरोदरच्छद्मजिताम्—जुए में कपट से जीती । दुः दुष्टमुदरम् अस्य इति दुरोदरम् दुरोदरमेव छद्म (रूपक समास) यद्वा दुरोदरे यत् छद्म तत् तेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जितां वशीकृतां दुरोदरच्छद्मजिताम् । जगतीम् का विशेषण है। वास्तव में दुरोदर का रूप होना चाहिए था दुरुदरम् (दुः+उदरम्) किन्तु निपातन के कारण दुरोदरम् हो गया है; क्योंकि पृषोदरादिगण के अन्तर्गत यह शब्द आता है। जसे—पृषत् उदरमस्येति पृषोदरम् पर होना चाहिए था पृषदुदरम् ।। इसी प्रकार के अन्य दूसरे शब्द हंस, सिंह तथा गूढोत्मा हैं। इनके लिए नियम है 'भवेद्वर्णागमाद्धंसः सिंहो वर्णविपर्ययात् । गूढोत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात् पृषोदरम् ।। अर्थात् वर्ण का आगम होने से 'हंस' वर्ण का विपर्यय (उल्टा) होने से 'सिंह', वर्ण का विकार होने से 'गूढोत्मा' और वर्ण का नाश होने से 'पृषोदरम्' बनता है। जगतीं—महीं गच्छतीति जगत् (गम्+क्विप् कर्त्तरि) ततः स्त्रियां जगती (जगत्+ङीष्) ताम् । नयेन—नीत्या । 'भ्रोषः प्लोषे नयो न्याये' इत्यमरः । करणे तृतीया । वास्तव में षाड्गुण्यप्रयोग ही नय है। जेतुम्—वशीकर्त्तुम् । जि+तुमुन् । समीहते—वाञ्छति । सम्+ईह् चेष्टा-याम्+लट् ते । ईहते, ईहाञ्चक्रे, ईहामास, ईहाम्बभूव, ऐहिष्ट । यहाँ 'दुरो-दरच्छद्मजिता' विशेष पद का अर्थ 'नयेन जेतुं' के हेतुरूप में उपन्यस्त है। अतः काव्यलिंग अलङ्कार है। 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते' अर्थात् जब वाक्य या पद के अर्थ से कारण का उपन्यास किया जाय तो काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है।

वाच्यपरिवर्त्तन—नृपासनस्थेनापि सुयोधनेन वनाधिवासिनो भवतः पराभवं विशंकमानेन दुरोदरच्छद्मजिता जगतीं नयेन जेतुं समीह्यते।

'नयेन जेतुं जगतीं समीहते' इत्युक्तम् । तत्प्रकारमाह—

दुर्योधन अपने गुणों द्वारा आपको अतिक्रान्त करना चाहता है। उसको प्रकार कहते हैं—

तथापि जिह्मः स भवज्जिगीषया
तनोति शुभ्रं गुणसम्पदा यशः ।
समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद् वरं
विरोधोऽपि समं महात्मभिः ।।८।।

तथापीति । तथापि साशङ्कोऽपि । जिह्मो वक्रः वञ्चक इति यावत् । स

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुर्योधनो भवज्जिगीषया । गुणैर्भवन्तमाक्रमितुमिच्छयेत्यर्थः । 'हेतौ' इति तृतीया । गुणसम्पदा दानदाक्षिण्यादिगरिम्णा करणेन । शुभ्रं यशस्तनोति स खलो गुणलोभनीयां त्वत्सम्पदमात्मसात्कर्त्तुं त्वत्तोऽपि गुणवत्तामात्मनः प्रकटयतीत्यर्थः । नन्वेवं गुणिनः सतोऽपि सज्जनविरोधो महानस्त्यस्य दोष इत्याशंक्य सोऽपि सत्संसर्गालाभे नीचसंगमाद्वरमुत्कर्षाविहत्वादित्याह—समिति । तथा हि भूतिं समुन्नयन्नुत्कर्षमापादयन् । 'लटः शतृशानचो'—इत्यादिना शतृप्रत्ययः । पुनर्लङ्ग्रहणसामर्थ्यात् प्रथमासानाधिकरण्यम् । महात्मभिः समम् । सहेत्यर्थः 'साकं संत्रा समं सह' इत्यमरः । अनार्यसंगमाद् दुर्जनसंसर्गात् । 'पञ्चमी विभक्ते' इति पञ्चमी । विरोधोऽपि वरं मनाक्प्रियः । 'देवाद् वृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीवो मनाक्प्रिये' इत्यमरः । अत्र मैत्र्यपेक्षया मनाक्प्रियत्वं विरोधस्य । 'भूतिं समुन्नयन्' इत्यस्य पूर्ववाक्यान्वये सम्प्राप्तस्य वाक्यार्थस्य पुनरादानात्समाप्तपुनरात्ताख्यदोषापत्तिः । तदुक्तं काव्यप्रकाशे— 'समाप्तपुनरादानात्समाप्तपुनरात्तकम्' इति । न च वाक्यान्तरमेतत्, येनोक्तदोषपरिहारः स्यात् । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः । स च भूतिं समुन्नयनस्य पदार्थविशेषणद्वारा विरोधक्त्वं प्रति तुत्वाभिधानरूपकाव्यलिङ्गानुप्राणितः इति ।

अन्वय—तथापि जिह्मः स भवज्जिगीषया गुणसम्पदा शुभ्रं यशः तनोति, भूतिं समुन्नयन् महात्मभिः समं विरोधोऽपि अनार्यसंगमात् वरम् ।

हिन्दी अनुवाद—तो भी (सशंकित होकर भी) कुटिल वह दुर्योधन आपसे आगे बढ़ जाने की इच्छा से अपने (दानदाक्षिण्यादि) गुणों से निर्मल यश का विस्तार कर रहा है। ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए मनुष्य के लिए नीचों के संग की अपेक्षा महात्माओं के साथ विरोध करना भी अच्छा है।

English Translation—Yet he, a crooked fellow, spreads spotless fame through a profusion of merits on account of his desire to conquer you. Even conflict with the high souled, raising one's worth is better than the company of the ignobles.

संस्कृतभावार्थ—कुटिलोऽपि दुर्योधनः कपटद्यूतेन जितां पृथ्वीं संप्रति प्रणिपातपूर्वकं राज्यं पालयति । येन प्रजा भवतः शासनं विस्मृत्य तस्मिन्नेवानुरक्ता भवेत् । प्रकृत्या त्वसौ खलः । तस्यासाधुतापि स्वार्थसाधिकैव । दुर्जन-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसर्गात् सज्जनैः सह विरोधोऽपि श्रेयस्करः यतः सज्जनप्रतिस्पर्धया ऐश्वर्यस्य वृद्धिः भवति ।

व्याख्या—आपके राज्य पर अधिकार करके कुटिल दुर्योधन शान्तिपूर्वक शासन द्वारा आप में अनुरक्त प्रजा को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहता है । इसीलिए दयादाक्षिण्यादि गुणों के प्रदर्शन से वह आपको अतिक्रान्त करने की चेष्टा करता है । सच है, सज्जनों से विरोध करना भी दुष्टों के साथ मैत्री करने से अधिक अच्छा है ।

टिप्पणी—तथापि—तद्+थाल् ('प्रकारवचने थाल्' सूत्र से)+अपि । इसका अर्थ मल्लिनाथ ने 'साशंकोऽपि' किया है । किन्तु कोरा भयभीत मनुष्य यश नहीं फैलाता इसलिए 'तथा तदवस्थोऽपि नयेन जगतीं जेतुं समीहते' अर्थात् उस स्थिति में नीतिपूर्वक पृथ्वी को जीतने की इच्छा करता है' यह अर्थ उपयुक्त होगा । जिह्मः—कुटिलः । जहाति सरलमार्गम् इति जिह्मः (हा+मनिन्) "जिह्मस्तु कुटिले मन्दे" इति हैमः । सः—दुर्योधनः । भवज्जिगीषया—जेतुमिच्छा जिगीषा तथा भवतः जिगीषया—भवन्तमतिक्रमितुमिच्छया (षष्ठीतत्पुरुष, हेतौ तृतीया) (जि+सन्+अ+टाप् स्त्रियाम्) । वास्तव में दुर्योधन गुणी नहीं है परन्तु वह यह दिखाना चाहता है कि वह सद्गुणों में आपसे बढ़कर है अतः वह मूर्ख है । गुणसम्पदा—सम्पद् के लिए श्लोक ५ द्रष्टव्य है । गुणानां सम्पत् (षष्ठीतत्पुरुष) तया करणे तृतीया । शुभ्रम्—उज्वल । शोभते इति शुभ्+रक् कर्त्तरि अर्थात् चमकने वाला । यश का विशेषण है । "शुक्लशुभ्रशुचिश्वेतविशदश्वेतपाण्डराः" इत्मयरः । यशः—कीर्त्तिम् । 'यशः कीर्त्तिः समज्ञा च' इत्यमरः । तनोति—विस्तारयति—फैलाता है । तन्+लट्+ति । इसका कर्त्ता सः है । भूतिम्—ऐश्वर्य । भू+क्तिन् भावे, ताम् । समुन्नयन्—समुन्नयतीति समुन्नयन् (सम्+उत्+नी+शतृ कर्त्तरि) विरोधः का विशेषण है (मल्लिनाथ) । 'समुन्नयन्' में मल्लिनाथ के अनुसार 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' सूत्र से शतृ का विधान किया गया है, जिसका अर्थ है लट् के स्थान पर शतृ और शानच् तब होते हैं जब प्रथमा विभक्ति में आये हुए किसी शब्द का वह समानाधिकरण न हो । इस सूत्र के अनुसार यहाँ शतृ विहित नहीं है, तो भी उक्त सूत्र में 'वर्तमाने लट्' से अनुवृत्ति चली आ रही है पर पुनः इस सूत्र में भी ग्रहण करने के कारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथमागत 'विरोधः' के समानाधिकरण में शतृ प्रत्यय हो जायगा। भट्टोजिदीक्षित द्वारा भी इसका समर्थन होता है—"लट् इत्यनुवर्तमाने पुनर्लङ्ग्रहणम् अधिकविधानार्थम् । तेन प्रथमासामान्याधिकरण्येऽपि क्वचित् सन्ब्राह्मणः" इति। पर ऐसा होने पर दूसरी आपत्ति यह है कि 'भूतिं समुन्नयन् विरोधः' और 'भवज्जिगीषया गुणसम्पदा शुभ्रं यशः' इन दोनों का भाव प्रायः एक ही है। इसी कारण मल्लिनाथ के अनुसार यहाँ समाप्त-पुनरात्तता दोष है। पर यदि इस प्रकार अन्वय किया जाय—'तथापि जिह्मः स गुणसम्पदा भवज्जिगीषना शुभ्रं यशस्तनेति। महात्मभिः समं विरोधोऽपि भूतिं समुन्नयन् अनार्यसंगमात् वरम् ।' तो समाप्तपुनरात्तता दोष न पड़ेगा और सीधे-सीधे शतृ का प्रयोग भी 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' सूत्र से हो जायगा। क्योंकि 'समुन्नयन्' क्रिया 'वरीभवन्' अर्थात् श्रेष्ठ होने में हेतु है। महात्मभिः समं महान् आत्मा येषां ते तैः समं। यहाँ "आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः" सूत्र से समास में महत् के स्थान पर 'महा' हो गया और 'सह युक्तेप्रधाने' सूत्र से तृतीया हुई है। **विरोधोऽपि**—विरुध्यते इति विरोधः (वि+रुध्+घञ् भावे)। 'विरोधो विग्रहो मतः' इति। **अपि**—यह समुच्चयार्थक है। गर्हासमुच्चयप्रश्नशंकासभावनास्वपि' इत्यमेरः। **अनार्यसंगमात्**—अर्यन्ते गम्यन्ते आचारपूतत्वादाश्रीयन्ते इति आर्याः (ऋ+ण्यत् कर्मणि) न आर्याः अनार्याः (नञ् तत्पुरुष) तेषां संगमः अनार्यसंगमः षष्ठीतत्पुरुष तस्मात्। **वरम्**—श्रेष्ठम् । 'देवाद् वृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीबं मनाक् प्रिये' इत्यमरः। यहाँ पर अर्थान्तरन्यास अलंकार काव्यलिंग से अनुप्राणित है, क्योंकि महात्माओं के साथ विरोध के अच्छे होने का कारण 'भूतिं समुन्नयन्' से व्यक्त है।

वाच्यपरिवर्त्तन—जिह्मेन तेन शुभ्रं यशः तन्यते भूतिं समुन्नयता अनार्यसंगमान्महात्मभिः समं विरोधेनापि वरेण भूयते।

न तु 'कातर्यं केवला नीतिः' इत्याशंक्य नीतियुक्तं पौरुषमस्येत्याह—दुर्योधन मनूपदिष्ट शासनपद्धति अपनाने की चेष्टा कर रहा है—

कृतारिषड्वर्गजयेन मानवीमगम्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना ।
विभज्य नक्तंदिवमस्ततन्द्रिणा वितन्यते तेन नयेन पौरुषम् ।।९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृतेति। षण्णां वर्गः षड्वर्गः। अरीणामन्तःशत्रूणां कामक्रोधादीनां षड्वर्गोऽरिषड्वर्गः। शिवभागवतवत्समासः। तस्य जयः कृतो येन तेन तथोक्तेन। विनीतेनेत्यर्थः। विनीताधिकारं प्रजापालनमिति भावः। अगम्य-रूपां पुरुषमात्रदुष्प्राप्याम्। मनोरिमां मानवीम्। मनूपदिष्टसदाचारक्षुण्णा-मित्यर्थः। पदवीं प्रजापालनपद्धतिं प्रपित्सुना प्रपत्तुमिच्छुना। प्रपद्यतेः सन्नन्ता-दुप्रत्ययः। 'सनिमीमा'—इत्यादिनेसादेशः। "अत्रलोपोऽभ्यासस्य" इत्यभ्यास-लोपः। अस्ता तन्द्रिरालस्यं यस्य तेनास्ततन्द्रिणा। अनलसेनेत्यर्थः। तदिः सौत्रो धातुः। तस्मात् "वङ्क्र्यादयश्च" इत्यौणादिकः क्रिन्प्रत्ययः 'कृदिका-रादक्तिनो वा ङीप् वक्तव्यः' इति। 'वन्दीघटीतरीतन्द्रीति ङीषन्तोऽपि' इति क्षीरस्वामी। तथा रामायणे प्रयोगः—'निस्तन्द्रिरप्रमत्तश्च स्वदोषपरदोष-वित्' इति। तेन दुर्योधनेन। पुरुषस्य कर्म पौरुषं पुरुषकारः। उद्योग इति यावत् युवादित्वादण्प्रत्ययः। 'पौरुषं परुषस्योक्ते भावे कर्मणि तेजसि' इति विश्वः। नक्तं च दिवा च नक्तन्दिवम् अहोरात्रोरित्यर्थः। 'अचतुर'— इत्यादिना सप्तम्यर्थवृत्त्योरव्ययोर्द्वन्द्वनिपातेऽच् समासान्तः। विभज्यास्यां वेलाया-मिदं कर्मेति विभाग कृत्वा नयेन नीत्या वितन्यते विस्तार्यते ॥९॥

अन्वय—कृतारिषड्वर्गजयेन अगम्यरूपां मानवीं पदवीम् प्रपित्सुना अस्ततन्द्रिणा तेन नक्तंदिवं विभज्य नयेन पौरुषम् वितन्यते ॥९॥

हिन्दी अनुवाद—छः शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) के समुदाय को जीतने वाला, दुर्गम मनु के मार्ग को प्राप्त करने का इच्छुक और आलस्यरहित वह दुर्योधन रात-दिन का ठीक विभाग करके नीतिपूर्वक पुरुषार्थ को बढ़ाता है।

English Translation—Enterprise is being spread with policy by him who has conquered the group of the sin internal enemies, who is desirous of attaining the unattainable line of the conduct laid down by Manu and who has cast off idleness having divided day and night (for the purpose).

संस्कृतभावार्थ—कामक्रोधादिषड्रिपून् विवेकेन विजित्य संयतः सन् निरलसो दुर्योधनः मनूपदिष्टप्रजापालनविधिना राजादर्शं प्राप्तुकामः अहोरात्रं प्रयतते। न केवलं नीत्या अपि तु पुरुषकारेण अस्मिन्समये इदमस्मिंश्च समये

६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इदं कर्मविश्यं कर्त्तव्यमेवं स्वकीयं कार्यजातं विभज्य स्वकर्त्तव्यं प्रजासु प्रदर्शयति। तस्य मनूपदिष्टमार्गानुसरणं तु प्रकृतीनां मनांसि जेतुं छद्म एव न तु याथार्थ्यम् इत्यभिप्राय:।

व्याख्या—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य ये छः विकार मनुष्य के आंतरिक शत्रु हैं। ये षड्वर्ग के अन्तर्गत हैं। इन पर विजय पाकर ही मनुष्य आदर्श शासक बन सकता है। दुर्योधन कपटपूर्वक आदर्शों का पालन करता है और इस प्रकार प्रजा को अपने में अनुरक्त करना चाहता है।

टिप्पणी—**कृतारिषड्वर्गजयन**—वशीकृतकामक्रोधादिषड्वैरिणा—षण्णां वर्गः षड्वर्गः (षष्ठी तत्पुरुष) अरीणां षड्वर्गः तस्य जयः—कृतः अरिषड्वर्गजयः येन (बहुव्रीहि) तेन। शिवभागवतवत्समासः (भगवतोऽयं भागवतः, शिवस्य भागवतः) इसका अर्थ है शिवस्य भगवतः भक्तः। इसी तरह अरिषड्वर्ग का अर्थ होगा अरीणां षण्णां वर्गः केवल षड्वर्ग से ही काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मात्सर्य इन छः आन्तरिक शत्रुओं का बोध हो जाता है। 'अरि' पद के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। द्रष्टव्य—'व्यजेष्ट षड्वर्गमरंस्त नीतौ समूलघातं न्यवधीदरींश्च' भट्टिकाव्यम्। **मानवीम्**—मनूपदिष्टाम्। मनु पृथ्वी पर सर्वप्रथम राजा हुए। मनोरियं मानवी, ताम् मानवीम् (मनु+अण्+ङीप् स्त्रियाम्) सम्पूर्ण ज्ञान के भाण्डार होने के कारण वे मनु कहलाए "सकलवेदार्थमननात् मनुः" इ ल्लूकभट्टः। **अगम्यरूपाम्**—दुर्विज्ञेयाम्। गन्तुं शक्यं इति गम्यम् गम्+यत् कर्मणि, न गम्यम् अगम्यम् (नञ् तत्पुरुष) अगम्यं रूपं यस्याः सा ताम् अगम्यरूपाम् (बहुव्रीहि) पदवीम् का विशेषण है। अथवा अतिशयेन अगम्या इति ताम् (अगम्या+रूपम् प्रशंसायाम्, पुंवद्भावः) द्रष्टव्य—"यक्तरूपमिदं तव" अभिज्ञानशाकुन्तलम्। **पदवीम्**—राजधर्मपद्धतिम् जैसा कि मनुस्मृति के सप्तम अध्याय में वर्णित है। **प्रपित्सुना**—प्र+पद्+सन्+उ कर्त्तरि। प्रपत्तुमिच्छुः, तेन। प्राप्त करने का इच्छुक। 'अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः। सरणिः पद्धतिः पद्यावर्त्तन्येकपदीतिच' इत्यमरः। **अस्ततन्द्रिणा**—अस्ता तन्द्रिः यस्य स तेन (बहुव्रीहि) 'दुर्योधनेन'। आलस्यरहित। 'स्यान्निद्रा शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि। तन्द्री प्रमीला' इत्यमरः। **नक्तंदिवं विभज्य**—नक्तं च

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिवा च नक्तंदिवं (द्वन्द्वसमास)। यहाँ समासान्त अच् प्रत्यय लगा है "अचतुरविचतुरसुचतुर—" इत्यादि सूत्र से। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' से नपुंसक हो गया है। विभज्य—(वि+भज्+ल्यप्)। नयेन—नीत्या। पौरुषम्—उद्योगम् पुरुषस्य कर्म पुरुष+अण्—पौरुषम् उक्ते कर्मणि प्रथमा। वितन्यते—प्रयुज्यते (वि+तन्+लट् ते कर्मणि) 'पुम्भावे तत्क्रियायां च पौरुषम्' इत्यमरः।

वाच्यपरिवर्त्तन—कृतारिषड्वर्गजयः अगम्यरूपां मानवीं पदवीं प्रपित्सुः अस्ततन्द्रिः स नक्तंदिवं विभज्य नयेन पौरुषं वितनोति।

सम्प्रति भृत्यानुरागमाह—

अब दुर्योधन का सेवकादि के प्रति स्नेह प्रदर्शित किया जाता है—

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः
समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः।
स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः
कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम् ॥१०॥

सखीनिवेति। गतस्मयो निरहंकारोऽतएव स दुर्योधनः सन्ततमनारतं साधु सम्यक्। अकपटमित्यर्थः। अनुजीविनो भृत्यान्। प्रीतियुजः स्निग्धान् सखीनिव मित्राणीव दर्शयते। लोकस्येति शेषः। 'हेतुमति च' इति णिच्। 'णिचश्च' इत्यात्मनेपदम्। शोभनं हृदयं येषां तान् सुहृदो मित्राणि च। 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' इति निपातः। बन्धुभिर्भ्रात्रादिभिः समानमानां-स्तुल्यसत्कारान् दर्शयते। बन्धूनां समूहो बन्धुता ताम्। 'ग्रामजनबन्धुसहा-येभ्यस्तल्'। कृतमाधिपत्यं स्वाम्यं यस्यास्तां कृताधिपत्यामिव दर्शयते। बन्धूनधिपतीनिव दर्शयते इत्यर्थः। यथा भृत्यादिषु सख्यादिबुद्धिर्जायते लोकस्य तथा तान् संभावयतीत्यर्थः। अनुजीव्यादीनाम् 'कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म' इति कर्मत्वम्। पूर्वे त्वस्मिन्नेव पदान्वये वाक्यार्थमित्थं वर्णयन्ति—स राजाऽनु-जीव्यादीन् सख्यादीनिव दर्शयते। सख्यादय इव तु तं पश्यन्ति। सख्या-दिभावेन पश्यतस्तांस्तथा दर्शयते। स्वयमेव छन्दानुवर्त्तितया स्वदर्शनं तेभ्यः प्रयच्छतीत्यर्थः। अर्थात्तस्येप्सित कर्मत्वम्। अणिकर्त्तुरनुजीव्यादेः 'अभि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम्' इति पाक्षिकं कर्मत्वम् । एवं चात्राण्यन्त-कर्मणो राज्ञो ण्यन्ते कर्तृत्वेऽपि 'आरोहयते हस्ती स्वयमेव' इत्यादिवद-श्रूयमाणकर्मान्तरत्वाभावान्नायं णेरणादिसूत्रस्य विषय इति मत्वा 'णिचश्च' इत्यात्मनेपदं प्रतिपेदिरे । भाष्ये तु णेरणादिसूत्रविषयत्वमप्यस्योक्तम् । यथाह— 'पश्यन्ति भृत्या राजानम्', 'दर्शयते भृत्यान् राजा', 'दर्शयते भृत्यं राजा' अत्रात्मनेपदं सिद्धं भवति इति । अत्राह कैयटः—"ननु कर्मान्तरसद्भावा-दत्रात्मनेपदेन संभाव्यम् । उच्यते—अस्मादेवोदाहरणाद् भाष्यकारस्याय-मेवाभिप्राय ऊह्यते । अण्यन्तावस्थायां ये कर्तृकर्मणी तद्व्यतिरिक्तकर्मा-न्तरसद्भावादात्मनेपदं न भवति । यथा—'स्थलमारोहयति मनुष्यान्' इति । इह त्वण्यन्तावस्थायां कर्तृणां भृत्यानां णौ कर्मत्वमिति भवत्येवात्मनेपद-मिति ।।१०।।

अन्वय—गतस्मयः स सन्ततं साधु अनुजीविनः प्रीतियुजः सखीनिव सुहृदः च बन्धुभिः समानमानान् (इव) बन्धुतां कृताधिपत्यामिव दर्शयते ।।१०।।

हिन्दी अनुवाद—अहङ्काररहित होकर वह दुर्योधन सर्वदा निष्कपटरूप से भृत्यों को स्नेही मित्रों के समान, मित्रों को बन्धुओं की भाँति सम्मानवाले, और बन्धुगणों को शासन करते हुए सा दिखाता है।

English Translation—He being prideless always makes his dependents appear like affectionate friends. friends as equally honoured with kinsmen, and kinsmen seem as if with sway established (over himself)

संस्कृतभावार्थ—स दुर्योधनोऽभिमानं परित्यज्य सेवकेभ्यः स्वकीयं प्रेम ददाति । तेषु मित्रव्यवहारमाचरति मित्राणि बान्धवानिव पश्यति । बन्धूंस्तु अधिपतीनिव अवगच्छति । एतावता व्यवहारेण सर्वेषां मनांसि जित्वा स्वाधि-पत्यं स्थिरं करोति ।

व्याख्या—दुर्योधन में अब बहुत कुछ परिवर्तन आ गया है । वह अभि-मान का परित्याग कर सब के साथ सद्व्यवहार करता है । सेवकों को प्रेमी सखाओं के समान, सखाओं को बन्धुओं की भाँति तथा बन्धुगणों को स्वामियों के समान दिखाता है । अतः उसने अपने आचरण से सबके चित्त को जीत लिया है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टिप्पणी—**गतस्मयः**—निरवलेपः, गतः स्मयः यस्य सः (बहुव्रीहि) 'दर्पोऽवलेपोऽवष्टम्भश्चित्तोद्रेकः स्मयो मदः' इत्यमरः। **सः**—दुर्योधनः। **सन्ततम्**—सर्वदा। सम्+तन्—क्त कर्मणि। "समो वा ततहितयोः" सूत्र से विकल्प से सततम् रूप भी होता है। सूत्रार्थ—तत और हित परे रहने पर सम् उपसर्ग का 'म्' विकल्प से लुप्त हो जाता है। **साधु**—निष्कपटम्। **अनुजीवनः**—सेवकों को। अनुजीवन्तीति अनुजीविनः अनु+जीव्+णिनि कर्त्तरि ताच्छील्ये, तान्। यह 'दर्शयते' क्रिया का कर्म है। **प्रीतियुजः**—स्नेहयुक्त। प्रीत्या युज्यन्ते ये तान् (प्रीति+युज्+क्विन् कर्त्तरि)। **सखीनिव**—मित्राणीव। 'वयस्यः स्निग्धः सवया अथ मित्रं सखा सुहृत्' इत्यमरः। **सुहृदश्च**—सुशोभनं हृदयं येषां ते तान् 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' से निपातन हुआ। 'दर्शयते' का कर्म है। **बन्धुभिः**—स्वजनैः। बध्यन्ति प्रेम्णा इति बन्धवः तैः (बन्ध्+उण्) सहार्थे तृतीया। **समानमानान्**—समानः मानः येषां तान् (बहुव्रीहि) मन्+घञ् भावे। **बन्धुताम्**—बन्धुवर्गम्। बन्धूनां समूहो बन्धुता—(बन्धु+समूहार्थे तल्) ताम्। यहाँ पर 'ग्रामजनबन्धुसहायेभ्यस्तल्' सूत्र से तल् प्रत्यय हुआ है। 'दर्शयते' का कर्म है। द्रष्टव्य—अधिश्रयन्तीर्जनताः परः शताः' शिशुपालवध। 'ज्ञातेयं बन्धुता तेषां क्रमाद्भावसमूहयोः' इत्यमरः। **कृताधिपत्यामिव**—विहितस्वामित्वामिव। कृतम् आधिपत्यं यस्याः सा ताम् (बहुव्रीहि) अधिपातीति अधिपतिः (अधि+पा+डति कर्त्तरि) तस्य भावः आधिपत्यम् अधिपति+यक् भावे। यहाँ 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्' सूत्र से यक् प्रत्यय हुआ है, पर ब्राह्मणादिगण में परिगणित 'अधिपति' से ष्यञ् प्रत्यय अधिक उचित है। **दर्शयते**—(दृश्+णिच् लट् ते)। 'हेतुमति च' नियम से प्रेरणा के अर्थ में णिच् होता है। 'णिचश्च' नियम से आत्मनेपद हो गया है। यहाँ दर्शन-व्यापार का फल कर्त्ता दुर्योधन को प्राप्त है, अतः आत्मनेपद होता है। 'णेरणौ यत् कर्म णौ चत् स कर्त्ता अनाध्याने' सूत्र से मल्लिनाथ द्वारा आत्मनेपद का विकल्प भी दिया गया है। सूत्रार्थ—यदि ण्यन्त दशा में भी वही क्रिया कही जाय जो अण्यन्त में कही गई है और अण्यन्त का कर्म ण्यन्त में कर्त्ता हो तो ण्यन्त धातु से आत्मनेपद होता है। पर आत्मनेपद का प्रयोग उत्कंठापूर्वक स्मरण में नहीं होता है। यथा—णिच् के बिना प्रयोग होता है—अनुजीविनः तं पश्यन्ति, समानमानः सुहृदः तं पश्यन्ति, बन्धुता तं पश्यति। णिच् के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साथ सः अनुजीविनः आदि अथवा अनुजीविभिः आदि आत्मानं दर्शयते। 'णेरणौ यत्कर्म णौ चेत् स कर्त्ता अनाध्याने' सूत्र से यहाँ भी आत्मनेपद होता है। अण्यन्त की 'दर्शन' क्रिया ही ण्यन्त में भी है। अण्यन्त के कर्त्ता अनुजीवी, सुहृद् और बन्धुता ण्यन्त में कर्म हो जाते हैं। उत्कंठापूर्वक स्मरण है ही नहीं। अतः 'दृश्' धातु आत्मनेपद में प्रयुक्त हो जायगी। अणि कर्त्ता अनुजीवी आदि 'अभिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम्' वार्तिक से कर्म विकल्प से हुआ। अण्यन्तावस्था में सारे उपकरण होते हुए भी उत्कंठापूर्वक स्मरण होने पर आत्मनेपद नहीं होता।

वाच्यपरिवर्त्तन——गतस्मयेन तेन अनुजीविनः प्रीतियुजः सखाय इव दर्श्यन्ते। सुहृदः बन्धुभिः समानमाना इव दर्श्यन्ते। बन्धुता कृताधिपत्या इव दर्श्यते।

न चायं त्रिवर्गात्प्रमाद्यतीत्याह——

वह (दुर्योधन) त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम के विषय में प्रमाद नहीं करता है—

असक्तमाराधयतो यथायथं
विभज्य भक्त्या समपक्षपातया।
गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान्
न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्॥ ११॥

असक्तमिति। यथायथं यथास्वं विभज्य असंकीर्णरूपं विविच्येत्यर्थः। 'यथास्वं यथायथम्' इति निपातनाद् द्विर्भावो नपुंसकत्वं च। 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' इति ह्रस्वत्वम्। पक्षे पातः पक्षपातः आसक्तिविशेषः समस्तुल्यो यस्यां तया समपक्षपातया। भक्त्याऽनुरागविशेषेण। पूज्येष्वनुरागो भक्तिरित्युपदेशः। पूज्यश्चायं त्रिवर्ग इति भावः। असक्तमनासक्तं। अव्यसनितया इति यावत्। आराधयतः सेवमानस्यास्य दुर्योधनस्य त्रयाणां धर्मार्थकामानां गणः त्रिगणस्त्रिवर्गः। 'त्रिवर्गो धर्मकामार्थैश्चतुर्वर्गः समीक्षकैः' इत्यमरः। गुणानुरागात्तदीयगुणेष्वनुरागात्। गुणवदाश्रयलोभादित्यर्थः। सख्यं मैत्रीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'सख्युर्यः' इति यत्प्रत्ययः । ईयिवानुपगतवानिवेत्युत्प्रेक्षा । ('उपेयिवाननाश्वननूचानश्च' इति क्वसुप्रत्ययान्तो निपातः । 'नात्रोपसर्गस्तन्त्रम्' इति काशिकाकार आह स्म ।)' परस्परं न बाधते । समवर्तित्वादस्य धर्मार्थकामाः परस्परानुपमर्देन वर्धन्त इत्यर्थः । उक्तं च—'धर्मार्थकामाः सममेव सेव्या यो ह्येकसक्तः स जनो जघन्यः' इति ।

अन्वय—यथायथं विभज्य समपक्षपातया भक्त्या असक्तम् आराधयतः अस्य त्रिगणः गुणानुरागात् सख्यम् ईयिवान् इव परस्परं न बाधते ।

हिन्दी अनुवाद—समुचित रूप से समय का विभाजन करके बराबर प्रेम से अनासक्तिपूर्वक सेवन करते हुए इस (दुर्योधन) के गुणों के प्रेम से त्रिगण अर्थात् अर्थ, धर्म और काम तीनों मित्रता को प्राप्त हुए के समान एक दूसरे का विरोध नहीं करते ।

English Translaton:—The group of the three piety, prosperity and pleasure regarding this King who honours them dispassionately with an equal regard (for all the three) after having duly differentiated than entered as if into friendship through affection for his virtues and do not come in the way of each other.

संस्कृतभावार्थ—यथोचितं समदृष्टया धर्मार्थकामान् सेवमानस्य दुर्योधनस्य गुणानुरागात् मित्रताम् उपगतवानिव त्रिगणः परस्परं विरोधी न भवति । धर्मार्थकामानाम् उचितरूपेण विभाजनं कृत्वा निःसंगतया तान् सेवते । 'धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः' इति वचनानुसारं स तान् सममेव भजते ।

व्याख्या—धर्म, अर्थ और काम यथोचित रूप से अपना स्थान रखते हैं । जो केवल एक का ध्यान रखकर अन्य दो की उपेक्षा करता है वह निन्दनीय है । धर्मसेवन के समय अर्थ और काम से कोई बाधा नहीं पहुँचती, न अर्थोपार्जन में धर्म और काम बाधा डालते हैं और न तो काम के सेवन में अर्थ और धर्म का ही विरोध होता है। इस प्रकार का विरोध एक अयोग्य शासक में पाया जाता है । दुर्योधन समदर्शी होकर योग्यतापूर्वक शासन करता है।

टिप्पणी—असक्तम्—अनासक्त रूप में । सञ्ज्+क्त कर्त्तरि न सक्तः असक्तः नञ् तत्पुरुष तद्यथा स्यात्तथा । आराधयतः की क्रिया का विशेषण है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आराधयतः—सेवन करते हुए । आ+राध्+लटः स्थाने शतृ आराधयत्, तस्य । यहाँ पर यह धातु चुरादि सकर्मक है । यह दिवादि अकर्मक भी होता है । यथा—"विराध्यन्तं क्षमेत कः" शिशुपालवध द्वितीय सर्ग । **यथायथम्**—'यथार्थं तु यथायथम्' इत्यमरः । विभज्य का विशेषण है । यथा शब्द को वीप्सा सूचित करने के लिए यथास्वम् (यथात्मम् अथवा यथात्मीयम्) के अर्थ में निपातन से द्वित्व हो जाता है । अतएव यथा यथा को कर्मधारय मानना चाहिए । 'यथास्वे यथायथम्' नियम से नपुंसकलिङ्ग और 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से यथायथ के अन्तिम स्वर को ह्रस्व हो गया । प्रथमा-एकवचन का रूप है 'यथायथम्' । यह शब्द अव्यय नहीं है । **विभज्य**—वि+भज्+ल्यप्—यह धर्म है, यह अर्थ है, यह काम है, इसका ठीक-ठीक विवेचन करके । **समपक्षपातया**—पक्षे पातः पक्षपातः (सुप्सुपा) समः पक्षपातः यस्याम् तथा (बहुव्रीहि) । **भक्त्या**—भज्+क्तिन् भावे—भक्तिः तया । करणे तृतीया । **गुणानुरागादिव**—गुणेषु अनुरागः (सुप्सुपा) तस्मात् हेतौ पञ्चमी । हेतु में गुणवचनान्त अस्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों से 'विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्' सूत्र से विकल्प से पञ्चमी होती है । **सख्यम्**—मैत्री । सख्युर्भावः—सख्यम् (सखि+य प्रत्यय) यहाँ 'सख्युर्यः' सूत्र से य प्रत्यय हुआ । **ईयिवान्**—प्राप्त किये हुए । इण् गतौ—लिटःस्थाने क्वसु—'उपेयिवानाश्वाननूचानश्च' नियम से निपातनात् सिद्ध हुआ । **बाधते**—बाध्+लट् ते (बबाध, अबाधिष्ट, बाधिष्यते, अबाधत) । **त्रिगणः**—त्रयाणां धर्मार्थकामानां गणः समूहः षष्ठी तत्पुरुष । **परस्परम्**—अन्योन्यम्—परम् परम् इति परस्परम् । "कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम्" अर्थात् कर्म का व्यतिहार सूचित करने के लिए सर्वनाम का द्वित्व हो जाता है और प्रायः समास भी कर दिया जाता है । यहाँ परं परं क्रिया का व्यतिहार है, अतः विकल्प से परपरम् भी बनेगा । भट्टोजिदीक्षित के मत से अन्य और पर का समास ही नहीं होता 'अन्यपरयोः न समासवत्' । "असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः" वार्तिक से समास न होने पर सुप् को 'सु' हो गया । विसर्ग होने पर परःपरम् रूप हुआ । अब कस्कादि गण में अ के बाद के विसर्ग को 'स्' और इ, उ के बाद के विसर्ग को ष् हो जाता है—'कस्कादिषु च' नियम से विसर्ग को 'स्' हो गया ; क्योंकि 'परस्परम्' 'कस्कादि' गणसमूह के अन्तर्गत है । अतः परस्परम् रूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वना। 'मिथोऽन्योऽन्यं परस्परम्' इति कोषः। इस श्लोक में उत्प्रेक्षालङ्कार है। 'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्'—उपमेय की उपमान के साथ सम्भावना उत्प्रेक्षा कहलाती है—काव्यप्रकाश।

वाच्यपरिवर्त्तन—यथायथं विभज्य समपक्षपातया भक्त्या असक्तमाराधयतोऽस्य गुणानुरागात् सख्यमीयुषा इव त्रिगणेन परस्परं न बाध्यते॥ ११॥

अथ श्लोकत्रयेण उपायकौशलं दर्शयन्नादौ सामदाने दर्शयति—

तीन श्लोकों में दुर्योधन का उपायकौशल दिखलाते हुए सर्वप्रथम सामदान का प्रयोग दिखाया जाता है—

निरत्ययं साम न दानवर्जितं
न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियाम्।
प्रवर्तते तस्य विशेषशालिनी
गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया॥१२॥

निरत्ययमिति। तस्य दुर्योधनस्य निरत्ययं निर्बाधम् अमायिकमित्यर्थः। अन्यथा जनानां दुर्ग्रहत्वादिति भावः। साम सान्त्वम्। 'साम सान्त्वमुभे समे' इत्यमरः। दानवर्जितं न प्रवर्तते। अन्यथा लुब्धाच्चावर्जनस्य शुष्कप्रियैर्वाक्यैर्दुष्करत्वादिति भावः। उक्तं च—'लुब्धमर्थेन गृह्णीयात्साधुमञ्जलिकर्मणा। मूर्खं छन्दानुरोधेन तत्त्वार्थेन च पण्डितम्॥' इति। तथा भूरि प्रभूतम्। न तु कदाचित्स्वल्पमित्यर्थः। दानं धनत्यागः। सदित्यादरार्थेऽव्ययम्। 'आदरानादरयोः सदसती' इति निपातसंज्ञास्मरणात्। तस्य क्रियां सत्क्रियां विरहय्य विहाय। 'ल्यपि लघुपूर्वात्' इत्ययादेशः। न प्रवर्तते। अनादरे दानवैफल्यादिति भावः। न चैवं सर्वत्र, येनाविवेकित्वं कोशहानिश्च स्यादित्याह—प्रेति। विशेषशालिन्यतिशययोगिनी सत्क्रियाऽऽदरक्रिया गुणानुरोधेन गुणानुरागेण विना न प्रवर्तते। 'पृथग्विना'—इत्यादिना तृतीया। गुणेष्वादरो भूरि दानं चेति नोक्तदोषावकाश इत्यर्थः। अत्रोत्तरोत्तरस्य पूर्वपूर्वविशेषणतया स्थापनादेकावल्यलङ्कारः। तदुक्तं काव्यप्रकाशे—'स्थाप्यतेऽपोह्यते वापि यथापूर्वं परं परम्। विशेषणतया वस्तु यत्र सैकावली द्विधा' इति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वय—तस्य निरत्ययं साम दानवर्जितं न, भूरि दानं सत्क्रियां विरहय्य (न) विशेषशालिनी सत्क्रिया गुणानुरोधेन विना न प्रवर्तते ।

हिन्दी अनुवाद—उस दुर्योधन का निष्कपट मधुर वचन विना दान के नहीं होता, प्रचुर-दान आदर-सत्कार को छोड़कर नहीं होता (वह आदरपूर्वक प्रभूत दान देता है) और किसी का विशेष आदर गुणों को आंके विना नहीं करता (बल्कि योग्यतानुसार लोगों का सत्कार करता है ।)

Fnglish Translation:—His sincerely sweet words do not proceed without presents; his generous gifts are not without honour; conspicuously profuse honour does not go without regard for worth—

व्याख्या—दुर्योधन ने मधुर वाणी तथा प्रभूत दान से प्रजा के हृदय को जीत लिया है। वह प्रचुर मात्रा में दान करता है पर सम्मान के साथ। वह गुणग्राही है और गुणों की परीक्षा करके ही योग्य व्यक्तियों का विशेष सत्कार करता है, अयोग्य का नहीं ।

संस्कृतभावार्थ—दुर्योधनः मधुरवचनपूर्वकं धनं वितरति प्रचुरमपि दानं सत्कारेण विना न ददाति। यस्य कस्यापि हि सत्कारं न करोति यः सत्कार-योग्यो गुणवान् जनः तस्यैवादरं करोति। अनेन व्यवहारेण सा गुणग्राहीति ज्ञायते ।

टिप्पणी—**तस्य**—दुर्योधनस्य। **निरत्ययम्**—अति+इ+अच् भावे अत्ययः बाधा, निर्गतः अत्ययः अस्मात् (वहुव्रीहि)। **निरत्ययं**—निर्बाधम् अमायिक-मित्यर्थः। निष्कपट। 'अत्ययोऽतिक्रमे कृच्छ्रे दोषे दण्डेप्ययथापदि' इत्यमरः। **साम**—सान्त्वम्, मधुरवचनं। 'साम सान्त्वमुभे समे' इत्यमरः। **दानवर्जितं**—दानविरहितं। दा+ल्युट् भावे दानम्, वृज्+णिच्+क्त कर्मणि वर्जितं, दानेन वर्जितं (तृतीया तत्पुरुष)। **भूरि**—प्रभूतम्। दान का विशेषण है। 'प्रभूतं प्रचुरं प्राज्यमदभ्रं बहुलं बहु' इत्यमरः। **सत्क्रियां**—सत्कारं—सती क्रिया सत्क्रिया तां (कर्मधारय)। किन्तु मल्लिनाथ 'सदित्यादरार्थेऽव्ययम्' कहकर अव्यय मानते हैं। तस्य क्रिया (षष्ठी तत्पुरुष)। **विरहय्य**—त्यक्त्वा। छोड़ कर। वि+रह्+णिच्+ल्यप् 'ल्यपि लघुपूर्वात्' सूत्र से णिच् के स्थान पर अय् हो गया है। **विशेषशालिनी**—वि+शिष्+घञ् भावे—विशेषः तेन शालते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शोभते इति विशेष+शाल्+णिनि कर्त्तरि ताच्छील्ये । विशेषशालिनी यह सत्क्रिया का विशेषण है। गुणानुरोधेन विना—गुणानाम् अनुरोधः—'अनुरोधोऽनुवर्त्तनम्' इत्यमरः । अनु+रुध्+घञ् भावे अनुरोधः (षष्ठी तत्पुरुष) तेन । ''पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्तरस्याम्'' सूत्र से विना के योग में तृतीया हुई है । न प्रवर्तते—नहीं प्रवृत्त होती । प्र+वृत्+लट्+ते साम, दानम् और सत्क्रिया इसके कर्त्ता हैं (वर्तते, वर्त्स्यति—वर्त्तिष्यते, अवृतत्, अवर्त्तिष्ट) । अलंकार—यहाँ पूर्व-पूर्व वाक्य के प्रति उत्तर-उत्तर वाक्य विशेषण रूप में रक्खे गये हैं, अतः एकावली अलंकार है ।

वाच्यपरिवर्त्तन—निरत्ययेन साम्ना दानवर्जितेन न, सत्क्रियां विरहय्य भूरिणा दानेन न, विशेषशालिन्या सत्क्रियया गुणानुरोधेन विना न प्रवृत्यते ।

अथ दण्डप्रकारमाह—

दुर्योधन वास्तव में न्यायानुसार दण्डनीति का प्रयोग करता है ।

वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना
स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः ।
गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा
निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम् ॥१३॥

वसूनिति । वशी दुर्योधनो वसूनि धनानि वाञ्छन्न । लोभान्नेत्यर्थः । 'वसु तोये धने मणौ' इति वैजयन्ती । निहन्तीति शेषः । तथा मन्युना कोपेन न च । 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः । 'धर्मशास्त्रानुसारेण क्रोधलोभविवर्जितः' इति स्मरणादित्यर्थः । किन्तु निवृत्तकारणो निवृत्तलोभादिनिमित्तः सन्स्वधर्म इत्येव । स्वस्य राज्ञः सतो ममायं धर्मो ममेदं कर्त्तव्यमित्यस्मादेव हेतोरित्यर्थः । अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्डयांश्चैवाप्यदण्डयन् । अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥ इति स्मरणादिति भावः । गुरूपदिष्टेन प्राड्विवाकोपदिष्टेन । 'धर्मशास्त्रं पुरस्कृत्य प्राड्विवाकमते स्थितः । समाहितमतिः पश्येद् व्यवहाराननुक्रमात् ॥' इति नारदस्मरणात् । दण्डेन दमेन शिक्षयेत्यर्थः । रिपौ सुतेऽपि वा । स्थितमिति शेषः । एतेनास्य समदर्शित्वमुक्तम् । धर्मविप्लवं धर्मव्यतिक्रमम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधर्ममिति यावत् । निहन्ति निवारयति । दुष्ट एवास्य शत्रुः शिष्ट एव बन्धुः न तु सम्बन्धनिबन्धनः पक्षपातोऽस्तीत्यर्थः ।

अन्वय—वशी सः वसूनि वाञ्छन् न, मन्युना न, किन्तु निवृत्तकारणः स्वधर्मं इत्येव गुरूपदिष्टेन दण्डेन रिपौ सुतेऽपि वा धर्मविप्लवं निहन्ति ।

हिन्दी अनुवाद—वह जितेन्द्रिय दुर्योधन धन का लोभ न करता हुआ और न क्रोध के कारण (किसी को कुछ दण्ड देता है), किन्तु (लोभ और क्रोध से) निवृत्त होकर 'यह मेरा धर्म है' यह समझकर धर्माधिकारी द्वारा निर्दिष्ट दण्ड से शत्रु और पुत्र में भी धर्मातिक्रमण को रोकता है (न्याय के समक्ष शत्रु और पुत्र उसके लिए बराबर हैं) ।

English Translation—He, who has controlled his passions checks violation of duty, even in the case of an enemy or his own son by punishment enjoined by the preceptor (legal adviser) merely because it is his duty neither desiring riches nor through wrath.

संस्कृतभावार्थ—स जितेन्द्रियः दुर्योधनः यत्प्रजां दण्डयति तद्धनाजनाशया न, न हि क्रोधेन वा अपि तु लोभक्रोधरहितः हेत्वन्तराप्रेरितः सन् ममायं धर्म एवेति बुद्ध्या शत्रौ पुत्रे अपि समदृष्ट्या व्यवहरति । यदि पुत्रोऽपि अपराधं करोति तदा तमपि दण्डयति । शत्रुमित्रयोरुपरि दण्डदानसमये किञ्चिदपि भेदं न करोतीति भावः ।

व्याख्या—दुर्योधन को भली भाँति विदित है कि राज्य न्याय पर ही अवलम्बित है, अतः मित्र और शत्रु के साथ निष्पक्ष रूप से व्यवहार करता है । राजकर्त्तव्यपालन ही उसका मुख्य उद्देश्य है । लोभ या द्वेष उसे कर्त्तव्य-च्युत नहीं कर सकते । क्योंकि निर्दोष को दण्ड देने अथवा दोषी को दण्ड न देने से राजा नरकगामी तथा अपयशभागी होता है । दुष्ट ही दुर्योधन के शत्रु हैं तथा सज्जन मित्र हैं ।

टिप्पणी—वशी—जितेन्द्रियः । वशः अस्ति अस्येति वश + इनि मत्वर्थे । सः—दुर्योधनः । वसूनि—धनानि । वाञ्छन् का कर्म है 'वसु तोये धने मणौ' इति वैजयन्ती । वाञ्छन्—चाहता हुआ । वाञ्छतीति वाञ्छन् (वाञ्छ्+शतृ) (वाञ्छति, अवाञ्छत्, अवाञ्छीत्, ववाञ्छ) इच्छन्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न मन्युना—क्रोधेन न। 'हेतौ' तृतीया। 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः। (अपि तु) **निवृत्तकारणः**—अपगतहेतुः। नि+वृत्+क्त कर्त्तरि निवृत्त, कृ+णिच्+ल्युट्—कारण, निवृत्तं कारणं यस्य सः 'हेतुर्ना कारणं बीजं निदानं त्वादिकारणम्' इत्यमरः। **स्वधर्मः**—स्वस्य आत्मनः धर्मः=कर्त्तव्यम् (षष्ठीतत्पुरुष) 'स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये स्वोऽस्त्रियां धने' इत्यमरः। **इत्येव**—अस्मादेव हेतोः। हेत्यर्थक अव्यय, दुर्योधन धर्मविरोधियों को दण्ड देता था; क्योंकि यही उसका कर्त्तव्य था। **गुरूपदिष्टेन**—गुरुणा उपदिष्टः, तेन (मनूपदिष्टेन प्राड्विवाकोपदिष्टेन वा)। उप+दिश्+क्त कर्मणि= उपदिष्ट। दण्डेन का विशेषण है। **दण्डेन**—दण्ड्यते अनेनेति दण्डः 'साहसं तु दमो दण्डः' इत्यमरः। तेन (दण्ड्+णिच् स्वार्थे घञ् करणे) करणे तृतीया। **रिपौ सुते**—विषयाधिकरणे सप्तमी। मल्लिनाथ के अनुसार—रिपौ सुते अपि वा स्थितं धर्मविप्लवम्। 'आत्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्रः स्त्रियां त्वमी' इत्यमरः। **धर्मविप्लवम्**—ध्रियते अनेनेति धर्मः (धृ+मन् करणे) तस्य विप्लवः (षष्ठी तत्पुरुष) वि+प्लु×अप् भावे। 'डिम्बे डमरविप्लवौ' इत्यमरः। **निहन्ति**—नि+हन्+लट् ति (अहन्, अवधीत् जघान, हनिष्यति, हन्ता, हन्यात्, वध्यात्) यहाँ 'कर्म' की विवक्षा है 'शेष' की नहीं, अतः 'जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम्' सूत्र से यहाँ षष्ठी नहीं होती। अनुप्रासालङ्कार।

वाच्यपरिवर्त्तन—वशिना तेन वसूनि वाञ्छता न, मन्युना न, स्वधर्म एवेति निवत्तकारणेन गुरूपदिष्टेन दण्डेन रिपौ सुतेऽपि वा धर्मविप्लवो निहन्यते।

सम्प्रति भेदकौशलं दर्शयति—

अब भेदनीति में दुर्योधन की प्रवीणता का किरात निर्देश करता है—

विधाय रक्षान्परितः परेतरा
नशंकिताकारमुपैति शंकितः।
क्रियापवर्गेष्वनुजीविसात्कृताः
कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पदः॥ १४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधायेति । शङ्का संजाता अस्य शंकितोऽविश्वस्तः सम्परितः सर्वत्र स्वपरमण्डले परेतरानात्मीयान् । अवञ्चकानिति यावत् । यद्वा परानितरयन्ति भेदेनात्मसात्कुर्वन्ति इति परेतरान् 'तत्करोतीति' ण्यन्तात्कर्मण्यणप्रत्ययः । रक्षन्तीति रक्षान् रक्षकान् । मन्त्रगुप्तिसमर्थानित्यर्थः । 'नन्दिग्रहि—' इत्यादिना पचाद्यच् । विधाय कृत्वा । नियुज्येत्यर्थः । अशंकिताकारमुपैति । स्वयमविश्वस्तोऽपि विश्वस्तवदेव व्यवहरन् परमुखेनैव परान् भिनत्तीत्यर्थः । न च तान् रक्षानुपेक्षते येन तेऽपि विकुर्वीरन्नित्याह क्रियेति । क्रियापवर्गेषु कर्मसमाप्तिष्वनुजीविसात्कृता भृत्याधीनाः कृताः । अपरावर्तिततया दत्ता इत्यर्थः । 'देयेत्रा च' इति साति प्रत्ययः । सम्पदोऽस्य राज्ञः कृतज्ञतामुपकारित्वं वदन्ति । प्रीतिदानैरेवास्य कृतज्ञत्वं प्रकाश्यते, न तु वाङ्मात्रेणेत्यर्थः कृतज्ञे । राजन्यनुजीविनोऽनुरज्यन्तेऽनुरक्ताश्च तं रक्षन्तीति भावः ।

अन्वय—शंकितः परितः परेतरान् रक्षान् विधाय अशङ्किताकारम् उपैति । क्रियापवर्गेषु अनुजीविसात्कृतः सम्पदः अस्य कृतज्ञतां वदन्ति ।

हिन्दी अनुवाद—शंकित हुआ भी वह चारों ओर आत्मीयों को रक्षक नियुक्त कर स्वयं निःशंक सा रहता है । कार्यों की समाप्ति पर भृत्यों को दी हुई सम्पत्ति उसकी (दुर्योधन की) कृतज्ञता बतलाती है ।

English Translation—While suspicious he assumes the looks of the unsuspecting after appointing his own guards on all sides. Riches made over to his servants on the completion of the work speak of his gratefulness (appreciation of their service).

संस्कृतभावार्थ—सन्देहमापन्नः न हि कस्यापि विश्वासं कुर्वन् सर्वतः स्वराष्ट्रे परराष्ट्रेऽपि आत्मीयान् रक्षकान् नियुज्य बहिराकृत्या असन्दिग्धव्यवहारम् इव आत्मानं दर्शयति तथा च कार्यसमाप्तौ अनुजीविनं भूयसोपहारेण सन्तोषयति । एतेन दुर्योधनस्य भृत्यवर्गं प्रति कृतज्ञता ज्ञायते ।

व्याख्या—जब दुर्योधन को किसी की ओर से सन्देह होता है तो वह अपने विश्वासपात्र सेवकों द्वारा उसका पता लगाने की चेष्टा करता है । भृत्यों को विश्वास है कि सन्तोषजनक कार्य करने पर उन्हें पुरस्कार मिलेगा, अतः वे दत्तचित्त होकर बड़े लगन से काम बनाने का भरसक प्रयत्न करते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टिप्पणी---शंकितः---शंका संजाता अस्य इति शंका+इतच् "तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्" नियम से यहाँ इतच् प्रत्यय लगा है। अशङ्कितान कारम्---असन्दिहानस्य आकृतिम्। अशंकित की चेष्टा को। न शंकितः अशंकितः नञ् तत्पुरुष। आ+कृ+घञ् भावे=आकारः अशंकितस्य आकारः षष्ठी तत्पुरुष, तम्। उपैति---प्राप्नोति। उप+इ+लट् ति (एति, ऐत्, इयाय, अगात्, एष्यति)। इसका कर्त्ता है सः। परितः---सर्वतः। 'समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि' इत्यमरः। परेतरान्---आत्मीयान्। परेभ्यः इतरे पंचमीतत्पुरुष अथवा सुप्सुपा। परः इतरः येभ्यः ते परेतराः। तत्पुरुष करने पर इतर सर्वनाम होगा और वहुव्रीहि करने पर 'न बहुव्रीहौ' से निषेध हो जायगा। इसके रूप अकारान्त शब्द की भाँति चलने लगेंगे। मल्लिनाथ 'इतर' का अर्थ 'पृथक्' लेकर इतर+णिच्---इतरि नामधातु से इस प्रकार भी व्युत्पत्ति करते हैं---परान् इतरयन्ति पृथक् कुर्वन्ति इति परेतराः (पर+इतरि+अण् कर्त्तरि) यहाँ अण् प्रत्यय 'कर्मण्यण्' सूत्र से हुआ है। रक्षान्---रक्षक। रक्षन्तीति। रक्ष+अच् रक्षाः, तान्। विधाय का कर्म है। विधाय---कृत्वा, नियुज्य, वि+धा+ल्यप्। क्रियापवर्गेषु---क्रियाणाम् अपवर्गः (षष्ठी तत्पुरुष) कार्यावसानेषु। अप+वृज्+णिच्+घञ् भावे अपवर्गः। 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' सूत्र से सप्तमी हुई; क्योंकि क्रियापवर्गेषु का अर्थ है 'क्रियावर्गेषु सत्सु'। अनुजीविसात्कृताः---सेवकायत्तीकृताः---अनुजीविन्+साति अनुजीविसात् (अनुजीव्यधीना देयाः) ताः। यह 'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' सूत्र से अव्यय पद हो गया, अतः विभक्ति का लोप हो जाता है। मल्लिनाथ ने 'देये त्रा च' सूत्र से साति माना है। अनुजीविसात् न तो उपपद है और न गति। अतः कृताः का उसके साथ समास नहीं होगा। तथापि सुप्सुपा समास 'अनुजीविसात् कृताः' में हो सकता है। कृ+क्त+टाप् स्त्रियाम्=कृता, ताः। सम्पदः---धनानि। कृतज्ञताम्---उपकारज्ञताम्। कृतं जानातीति कृत+ज्ञा+क कर्त्तरि। यहाँ 'आतोऽनुपसर्गे' (उपसर्गरहित अकारान्त धातु से क प्रत्यय लगता है) तस्य भावः कृतज्ञता (कृतज्ञ+तल्), ताम् अथवा जानातीति ज्ञः (ज्ञा+क) 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' (जिन धातुओं की उपधा में इ, उ, ऋ, लृ में से कोई स्वर हो उनके अनन्तर तथा ज्ञा, प्री और कृ के अनन्तर कर्तृवाचक क (अ) प्रत्यय लगता है) सूत्र से क प्रत्यय हुआ। तब कृतस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञः कृतज्ञः (षष्ठी तत्पुरुष)। वदन्ति--कथयन्ति सूचयन्तीति भावः। 'अपवर्गोऽवसानस्तु मोक्षोऽपि च निगद्यते' इत्यमरः। 'अथ सम्पदि सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च' इत्यमरः।

· वाच्यपरिवर्त्तन--शंकितेन तेन परितः परेतरान् रक्षान् विधाय अशंकिताकारः उपेयते। क्रियापवर्गेषु अनुजीविसात्कृताभिः सम्पद्भिरस्य कृतज्ञता उद्यते।

अथोपायप्रयोगस्य फलवत्तां दर्शयति--

सामादि उपायों के प्रयोग का परिणाम अच्छा होता है, इसका वर्णन करते हैं--

अनारतं तेन पदेषु लम्भिता
विभज्य सम्यग्विनियोगसत्क्रियाः।
फलन्त्युपायाः परिबृंहितायती-
रुपेत्य संघर्षमिवार्थसम्पदः ॥ १५ ॥

अनारतमिति। तेन राज्ञा पदेषूपादेयवस्तुषु। 'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इत्यमरः। सम्यगसंकीर्णमव्यस्तं च विभज्य विविच्य। विनियोग एव सत्क्रियाऽनुग्रहः। सत्कार इति यावत्। यासां ताः लम्भिताः स्थानेषु सम्यक् प्रयुक्ता इत्यर्थः। उपायाः सामादयः। सङ्घर्षं परस्परस्पर्धामुपेत्येवेत्युत्प्रेक्षा। परिबृंहितायतीः प्रचितोत्तरकालाः। स्थिरा इत्यर्थः। अर्थसम्पदोऽनारतमजस्रं फलन्ति। प्रसुवत इत्यर्थः।

अन्वय--तेन पदेषु सम्यक् विभज्य विनियोगसत्क्रियाः लम्भिताः उपायाः सङ्घर्षमुपेत्य इव परिबृंहितायतीः अर्थसम्पदः अनारतं फलन्ति।

हिन्दी अनुवाद--उस दुर्योधन द्वारा कर्मों में भलीभाँति विभक्त करके समुचित योगरूप सत्कार को प्राप्त कराये गये साम, दान, दण्ड, भेद और उपाय मानो स्पर्धा को प्राप्त होकर भविष्य में उन्नतिशील होकर नाना प्रकार की सम्पत्तियाँ निरन्तर फलती हैं अर्थात् प्रत्येक कार्य में उसे लाभ ही होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

English Translation—The measures adopted by him, made to receive the honour of application in undertakings after having well distinguished between them, carelessly produce great results of lasting and for reaching consequences as if rivalling with one another.

संस्कृतभावार्थ—सुयोधनः सम्यक् विविच्य सामाद्युपायान् प्रयुङ्क्ते । अतएव ते सत्कृताः भवन्ति । इदं प्रतीयते यत् सामदानदण्डभेदाः स्पर्धामुपेत्य इव अभ्युदयपरिणामा भवन्तः सकलश्रियः फलन्ति । ते न कुत्रापि विफला भवन्तीत्यर्थः ।

व्याख्या—किस समय किस उपाय से काम लेना चाहिए इस प्रकार का विवेचन दुर्योधन अपने प्रत्येक कार्य में करके तदनुसार बड़ी सावधानी से चलता है। परिणामस्वरूप सारी समृद्धियाँ परस्पर एक-दूसरे से स्पर्धा करते हुए के समान उसे प्राप्त होती हैं। उसे अपने किसी कार्य में असफलता नहीं मिलती।

टिप्पणी—**तेन**—दुर्योधनेन। **पदेषु**—वस्तुषु (स्थान यहाँ पर विशेष उपयुक्त है) अधिकरणे सप्तमी। "पदं व्यसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु" इत्यमरः। **सम्यक्**—यथोचितम्। सम्+अञ्च्+क्विन् कर्त्तरि सम्यक् तत् यथा स्यात्तथा (क्रियाविशेषण) 'समः समि' सूत्र से अञ्च् धातु के परे रहने पर सम् के स्थान पर समि हो जाता है। **विभज्य**—वि+भज्+ल्यप्। **विनियोगसत्क्रियाः**—प्रयोग रूपी सत्कार को (वि+नि+युज्+घञ् भावे) विनियोग एव सत्क्रियाः (शाकपार्थिवादिवत् या मयूरव्यंसकादिवत् कर्मधारयः) अथवा विनियोगः=सत्क्रिया यासां ताः (बहुव्रीहि)। **लम्भिताः**—प्रापिताः। 'लभेश्च' सूत्र से यहाँ नुमागम हुआ है जिसका अर्थ है जब लभ् धातु से लट्, लङ्, विधिलिङ् तथा लिट् से भिन्न स्वरादि प्रत्यय परे रहें तो नुम् का आगम हो जाता है। लभ्+णिच्+क्त कर्मणि। **उपायाः**—सामादयः। उपैति उपायते वा एभिः इति उपायाः (उप+इ+अच् अथवा उप+अय्+घञ् करणे)। **संघर्षमुपेत्य इव**—स्पर्धाम् प्राप्य इव सम्+घृष्+घञ् भावे, तम् संघर्षम् उपेत्य—उप+इ ल्यप्। **परिबृंहितायतीः**—विस्तृत भविष्य वाली। परि+बृंह्+णिच्+क्त कर्मणि स्त्रियाम्, आ+यम्+क्तिन् भावे आयतिः, परिबृंहिता आयतिः यासां ताः। अर्थसंपदः का विशेषण है। 'दैर्घ्ये भावकाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चयति:' इति त्रिकाण्डशेषः । "तदात्वायतिसंशुद्धमारभेत विचक्षण:" कामन्दक । अर्थसम्पदः—अर्थानां सम्पदः (षष्ठीतत्पुरुष) ताः सम्पन्ना अर्था इत्यर्थः । सम्+पद्+क्विप् भावे=सम्पदः । अनारतम्—सतत । आ+रम्+क्त कर्त्तरि—आरतम्, न आरतम् इति अनारतम् (नञ् तत्पुरुष) तत् यथा तथा अनारतम् । फलन्ति—प्रतिफलित करते हैं। इसका कर्त्ता है उपायाः । यहाँ पर फल् धातु सकर्मक है । इसका कर्म है अर्थसम्पदः । इसका अकर्मक प्रयोग बहुत साधारण है यथा भाग्यं फलति सर्वत्र (पफाल, अफलत्, अफालीत्, फलिता, फलिष्यति) ।—'सततनारताश्रान्तसन्तताविरतानिशम्' इत्यमरः । 'उत्तरः काल आयतिः' इत्यमरः । 'भेदो दण्डः साम दानमित्युपायचतुष्टयम्' इत्यमरः । इसमें उत्प्रेक्षालंकार है । 'संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्' अर्थात् उपमेय की उपमान के साथ संभावना उत्प्रेक्षा कहलाती है—काव्यप्रकाश ।

वाच्यपरिवर्त्तन—विनियोगसत्क्रियैः लम्भितैः उपायैः अर्थसम्पदः फल्यन्ते ।

अर्थसम्पदमेवाह—

अर्थसम्पत्ति का वर्णन करते हैं—

अनेकराजन्यरथास्वसंकुलं
तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम् ।
नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रताम्
भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः ॥ १६ ॥

अनेकेति । अयुग्मच्छदस्य सप्तपर्णपुष्पस्य गन्ध इव गन्धो यस्यासावयुग्मच्छदगन्धिः । 'सप्तम्युपमान—' इत्यादिना बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्च । "उपमानाच्च" इति समासान्त इकारः । नृपाणामुपायनान्युपहारभूता ये दन्तिनस्तेषां मदः । 'उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा' इत्यमरः । राज्ञामपत्यानि पुमांसो राजन्याः क्षत्रियाः । 'राजश्वशुराद्यत्' इति यत्प्रत्ययः । राज्ञोऽपत्ये जातिग्रहणादण् । रथाश्चाश्वाश्च रथाश्वम् । सेनाङ्गत्वादेकवद्भावः । अनेकेषां राजन्यानां रथाश्वेन संकुलं व्याप्तं तदीयमास्थाननिकेतनाजिरं सभामण्डपाङ्गनं 'अङ्गनं चत्वराजिरे' इत्यमरः । भृशमत्यर्थमार्द्रतां पङ्किलत्वं नयति । एतेन महासमृद्धिरस्योक्ता । अतएवोदात्तालंकारः । तथा चालंकारसूत्रम्—'समृद्धिमद्वस्तुवर्णनमुदात्तः' इति ॥ १६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वय—अयुग्मच्छदगन्धिः नृपोपायनदन्तिनां मदः अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलं तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरं भृशम् आर्द्रतां नयति ।

हिन्दी अनुवाद—सप्तपर्ण (छितौन) के फूल के समान गन्ध वाला, राजाओं के उपहाररूप हाथियों का मदजल बहुत-से राजाओं के रथ और घोड़ों से भरे हुए उसके सभाभवन के आँगन को अत्यधिक गीला कर देता है ।

English Translation—the ichor of the turkers (elephants) presented by kings having adour like that of the saptachchada (flower) makes excessively wet the courtyard of his assemb ly lhall full of the chariots and horses of numerous kshatriy chiefs.

संस्कृतभावार्थ—भूपानाम् असंख्यरथाश्वव्याप्ते तस्य सुयोधनस्य सभामण्डपाङ्गने नृपैः उपायनीकृतानां हस्तिनां सप्तपर्णपुष्पतुल्यगन्धयुक्तेन मदेन पंकिलत्वं भवति । इयता बलवता शत्रुणा सह समरे तावदेव प्रयत्नेन वर्त्तितव्यमिति वनेचरस्याभिप्रायः ।

व्याख्या—दुर्योधन एकच्छत्र सम्राट् है । उसके सभामंडप में प्रत्येक कोने से राजा लोग आकर भेंट देते हैं तथा उसकी अधीनता स्वीकार करते हैं । ऐसे प्रबल शत्रु से लोहा लेने के लिए अत्यन्त सावधानी अपेक्षित है ।

टिप्पणी—अयुग्मच्छदगन्धिः—सप्तपर्णसुरभिः । न युग्मः अयुग्मः (नञ् तत्पुरुष) अयुग्म से यहाँ तात्पर्य है 'सप्त' से । अयुग्माः (सप्त) छदाः अस्येति अयुग्मच्छदः (बहुव्रीहि) अयुग्मच्छदस्य विकारः पुष्पम् इति अयुग्मच्छद+अण्= अयुग्मच्छदम् 'पुष्पमूलेषु बहुलम्' वार्त्तिक से अण् का लुक् हो गया और 'द्विहीनं प्रसवे सर्वम्' (अर्थात् पुष्प-फल आदि के सूचक शब्द नपुंसकलिंग में प्रयुक्त होते हैं) नियम से नपुंसक हो गया । अयुग्मच्छदस्य गन्धः (षष्ठीतत्पुरुष) अयुग्मच्छदस्य गन्धः इव गन्धः अस्येति अयुग्मच्छदगन्धिः (बहुव्रीहि) । यहाँ विग्रह में प्राप्त दूसरा गन्ध शब्द 'सप्तम्युपमानपूर्वस्योत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः' (सप्तमी में प्रयुक्त पद तथा उपमानपद पूर्व में आने पर बहुव्रीहि होकर उत्तरपद का लोप हो जाता है) वार्त्तिक से समास होकर उत्तरपद लुप्त हो गया । तब 'उपमानाच्च' सूत्र से गन्ध शब्द के अन्त में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'इ' लग गया है—अयुग्मच्छदगन्धिः । सूत्रार्थ—बहुव्रीहि समास में उपमान के अन्त में प्रयोग में लाये जाने वाले शब्द में समासान्त 'इ' का प्रयोग होता है । द्रष्टव्य—'सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहमसह्यमाघ्राय मदंतदीयम्' रघुवंश पंचम सर्ग श्लोक ४८ । 'सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः' इत्यमरः । नृपोपायनदन्तिनाम्—राजाओं के उपहार रूप हाथियों का नृ+पा+क्त कर्त्तरि नृपः (उपपद तत्पुरुष) । उप+इ+ल्युट् भावे उपायनम् । दन्तौ एषां स्तः इति दन्तिनः (दन्त+इनि मत्वर्थे प्रशंसायाम् अतिशायने वा) । नृपाणाम् उपायनानि (षष्ठीतत्पुरुष) तान्येव दन्तिनः (कर्मधारय) तेषाम् । षष्ठी शेषे । 'उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा' इत्यमरः । मदः—दानवारि । 'गण्डः कटो मदो दानम्' इत्यमरः । अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलम्—अनेक राजाओं के रथों के अश्वों से । राज्ञः अपत्यानि जातिः इति राजन्+यत्—राजन्यः यहाँ (राजश्वशुराद् यत्) (जातावेव वाच्यम्) सूत्र से जाति सूचित करने के लिए राजन् शब्द से अपत्यार्थे यत् प्रत्यय लगा है । 'ये चाभावकर्मणोः' सूत्र से न का लोप नहीं हुआ । जिसका अर्थ है—भाव और कर्म के अतिरिक्त अन्नन्त शब्दों के बाद यकारादि तद्धितप्रत्यय आने पर अन्त नकार का लोप नहीं होता, अतः राजन्य में 'न' का लोप नहीं हुआ । 'मूर्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट्' इत्यमरः । रथाश्च अश्वाश्च रथाश्वम् 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' सूत्र से समाहार द्वन्द्व हुआ तथा नपुंसक लिंग एकवचन में प्रयुक्त हुआ । अनेके—न एके (नञ् तत्पुरुष) अनेके च ते राजन्याः (कर्मधारय) अनेकराजन्यानां रथाश्वम् (षष्ठीतत्पुरुष) तेन संकुलम् (तृतीया तत्पुरुष) अथवा अनेकराजन्यानाम् रथाः तेषामश्वाः तैः संकुलम् आस्थाननिकेतनाजिरं का विशेषण है, 'संकीर्णे संकुलाकीर्णे' इत्यमरः । 'घोटके वाजितुरगतुरंगाश्वतुरंगमाः' इत्यमरः । तदीयम्—तस्य इदम् तदीयम् (तद्+छ) । आस्थाननिकेतनाजिरम्—आस्थान (दरबार) भवन के प्राङ्गण को । आस्थीयते अस्मिन् इति आस्थानम् आ+स्था+ल्युट् अधिकरणे, निकित्यते अस्मिन् इति नि+कित्+ल्युट् अधिकरणे—निकेतनम् । आस्थानस्य निकेतनम्, तस्य अजिरम् (षष्ठीतत्पुरुष) 'अङ्गणं चत्वराजिरे' इत्यमरः । भृशम्—अत्यर्थम् । आर्द्रताम्—गीलापन को, आर्द्रस्य भावः=आर्द्रता तां (आर्द्र+तल्) । नयति—प्रापयति नी+लट्+ति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नी द्विकर्मक धातु है इसका प्रधान कर्म है "अजिरम्" तथा गौणकर्म है "आर्द्रताम्"। इस श्लोक में महान् ऐश्वर्य के वर्णन होने से उदात्त अलङ्कार है। उसका लक्षण साहित्यदर्पण में इस प्रकार है—"लोकातिशयसम्पत्तिर्वर्णनोदात्तमुच्यते" लोकोत्तरसम्पत्ति के वर्णन में उदात्त अलङ्कार होता है।

वाच्यपरिवर्त्तन——अयुगमच्छदगन्धिना नृपोपायनदन्तिनां मदेन अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलम् तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरम् भृशम् आर्द्रतां नीयते।

सम्प्रति जनपदक्षेमकरत्वमाह—

अत्र सिंचाई के सुचारु प्रबन्ध से राज्य को सुखी बनाने की चेष्टा वर्णन करते हैं :—

सुखेन लभ्या दधतः कृषीवलै-
रकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः।
वितन्वति क्षेममदेवमातृका-
श्चिराय तस्मिन् कुरवश्चकासति॥ १७॥

सुखनेति——चिराय तस्मिन् दुर्योधने क्षेमं वितन्वति क्षेमङ्करे सति। देवः पर्जन्यः माता येषां ते देवमातृकाः वृष्टयम्बुजीविनो देशः ते न भवन्ति इति, 'अदेवमातृका' नदीमातृका इत्यर्थः। "देशो नद्यम्बुवृष्टयम्बुसम्पन्नव्रीहिपालितः। स्यान्नदीमातृको देवमातृकश्च यथाक्रमम्॥" इत्यमरः। एतेनास्य कुल्यादिपूर्तप्रवर्त्तकत्वम् उक्तम्। कुरूणां निवासाः कुरवो जनपदविशेषाः। कृष्टेन पच्यन्ते इति कृष्टपच्याः। "राजसूय——" इत्यादिना कर्मकर्त्तरि क्यप्प्रत्ययान्तो निपातः। तद्विपरीता अकृष्टपच्या इव कृषिर्येषामस्तीति कृशीवलैः कर्षकैरित्यर्थः। "रजःकृषि——" इत्यादिना वलच् प्रत्ययः। "वले" इति दीर्घः। सुखेनाक्लेशेन लभ्या लब्धुं शक्याः सस्यसम्पदो दधतो धारयन्तः। "नाभ्यस्ताच्छतुः" इति नुमागमप्रतिषेधः। चकासति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते इत्यर्थः। "अदभ्यस्तात्" इति झेरदादेशः। "जक्षित्यादयः षट्" इत्यभ्यस्तसंज्ञा। सम्पन्नजनपदत्वादसन्तापकरत्वाच्च दुःसाध्योऽयमितिभावः॥ १७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वय—चिराय तस्मिन् क्षेम वितन्वति अदेवमातृकाः कुरवः अकृष्टपच्या इव कृषीवलैः सुखेन लभ्याः सस्यसम्पदः दधतः (सन्तः) चकासति ।

हिन्दी अनुवाद—बहुत दिनों से प्रजाओं के हितार्थ उपाय करते रहने पर अदेवमातृक (वर्षा के जल से नहीं किन्तु नहरों आदि के जल से सींचने के कारण उत्पन्न धान्य से पलने वाला) कुरुदेश बिना जोती हुई भूमि पर पकने वाली के समान तथा किसानों द्वारा बिना परिश्रम ही प्राप्त होने योग्य धान्यसम्पत्ति को धारण करता हुआ सुशोभित है ।

English Translation—on his having done the good (of the people) for a long time the kuru country not watered by the rain-god or mother, prospers (lit, shines), bearing abundance of crops easily available to the cultivators as though without tilling (the soil)

संस्कृतभावार्थ—दीर्घकालपर्यन्तं तस्मिन् दुर्योधने कृतप्रयत्ने सति कूपकुल्यादीनां निर्माणेन कृषका अनायासमेव सस्यसम्पत्तिमधिगच्छन्त इवातिष्ठन् । पूर्णधर्मानुष्ठिते राजनि—'अकृष्टपच्या पृथिवी भवन्त्योषधयस्तथा' इति महाभारतवाक्यानुसारं दुर्योधनस्याखिलधर्माचरणेन कुरुदेशः सम्प्रति धान्यसम्पत्ति लभमानः विराजते । अतः समृद्धिसन्तुष्टाः प्रजाः सुयोधने दृढमनुरक्ताः इति भावः ।

व्याख्या—कुरुदेश में वृष्टि कम होती है । लोगों को खेती के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है । दुर्योधन ने सिंचाई के सुचारु प्रबन्ध से वृष्टि-अभाव की पूर्त्ति कर दी है तथा बिना अधिक परिश्रम किए ही खूब खेती लहलहाती है । अतएव प्रजा सुखी होने से दुर्योधन में अनुरक्त है । वनेचर ने वास्तविक स्थिति बतलाने का वचन महाराज युधिष्ठिर से पहले ही ले लिया है । शत्रु के बलाबल को समझकर ही उसका प्रतीकार समुचितरूप से किया जा सकता है ।

टिप्पणी—चिराय—द्वितीयार्थे सुवन्तप्रतिरूपक अव्यय । 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र से द्वितीया के अर्थ में प्रयोग हुआ है । चिरात् कालात् परम् (वहाँ से आपके चले आने के बहुत समय बाद) 'चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरर्थका:' इत्यमरः । तस्मिन्—सुयोधने । 'यस्य च भावेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावलक्षणम्' सूत्र से सप्तमी प्रयुक्त हुई है। क्षेमं—मंगलम् (सिंचाई के प्रवन्ध के रूप में)। वितन्वति—करते रहने पर। वि+तन्+शतृ—वितन्वन्, तस्मिन्। अदेवमातृकाः—देवः (वृष्टिरूपो देवः) माता येषां ते (वहुव्रीहि) न तथा अदेवमातृकाः (नञ् तत्पुरुष) कुरवः का विशेषण है। यहाँ 'नद्यृतश्च' सूत्र से 'मातृकाः' में कप् प्रत्यय हुआ है। अमरकोष में देवमातृक और नदीमातृक देश में भेद वतलाया है। देवमातृक देश में वर्षा के जल से खेतों में सिंचाई होती है। किसानों को खेत नहीं सींचना पड़ता। उन्हें सुगमतापूर्वक धान्य की प्राप्ति होती है। पर नदीमातृक देश में नहरों को खोदकर बड़े परिश्रम से खेत तक पानी पहुँचाया जाता है। इस प्रकार वहाँ सस्य-सम्पदा सुख से नहीं प्राप्त हो सकती। 'देशो नद्यम्बुवृष्ट्यम्बु सम्पन्नव्रीहिपालितः। स्यान्नदीमातृको देवमातृकश्च यथाक्रमम्॥'इत्यमरः। अदेवमातृक शब्द से यह प्रतीत होता है कि यद्यपि देश देवमातृक नहीं है फिर भी सस्य-सम्पदा किसानों को सुगमता से प्राप्त है। कुरवः—कुरुदेशः। कुरु+अण् (जनपदे लुप्)। अकृष्टपच्याः—जोताई आदि प्रयत्न के बिना ही स्वतः तैयार हो जाने वाली। कृष्टे पच्यन्ते कृष्टपच्याः, न कृष्टपच्या इति अकृष्टपच्याः (कृष्ट—कृष्+क्त कर्मणि), (पच्याः—पच्+क्यप्+कर्मकर्त्तरि)। यहाँ 'राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः' सूत्र से निपातन से क्यप् लगता है। जैसे 'असूर्यम्पश्य' में समास असमर्थ है वैसे ही यहाँ पर भी। अकृष्टे पच्यन्ते इति अकृष्टपाच्य (ण्यत् प्रत्ययान्त)। तथापि असमर्थ होने पर भी किसी प्रकार 'अकृष्टपच्याः' समास माना गया है। इव—समान। कृषीवलैः—किसानो 'क्षेत्राजीवः कर्षकश्च कृषकश्च कृषीवलः' इत्यमरः। कृषिः अस्ति एषाम् कृषि+वलच्, तैः अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया। यहाँ मत्वर्थीय वलच् प्रत्यय 'रजः कृष्यासुतिपरिषदो वलच्' सूत्र से वलच् हुआ। 'वले' सूत्र से कृषि में दीर्घ हुआ है। सुखेन—'प्रकृत्यादिभ्यश्चोपसंख्यानम्' इस वार्तिक से सुखेन में तृतीया प्रयुक्त हुई है। लभ्याः—लब्धुं शक्या इति लभ्+यत् कर्मणि ताः। सस्यसम्पदः का विशेषण है। 'वृक्षादीनां फलं सस्यम्' इत्यमरः। सस्यसम्पदः—संस्+क्यप्= सस्यानि, तेषां सम्पदः (षष्ठीतत्पुरुष)। 'भावानयने द्रव्यानयनम्' न्याय से इसका अर्थ सम्पन्नानि सस्यानि होगा। दधतः—धारयतः धा+लटः स्थाने शतृ—दधत्। चकासति—चकास्+लट् झि—चकास+अति। यहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'जक्षित्यादयः षट्' से अभ्यस्त होने से झि का अति आदेश हो गया है। उपमालंकार। 'भावुकं भविकं भव्यं कुशलं क्षेममस्त्रियाम्' इत्यमरः।

वाच्यपरिवर्त्तन—......अदेवमातृकैः कुरुभिः अकृष्टपच्या इव कृषीवलैः सुखेन लभ्याः सस्यसम्पदः दधद्भिः चकास्यते।

नन्वेवं जनपदानुर्वतिनः कथमर्थलाभ इत्यत आह—

सुयोधन के गुणों से प्रसन्न होकर स्वयं पृथ्वी सम्पत्ति प्रदान करती है—

उदारकीर्तेरुदयं दयावतः
प्रशान्तबाधं दिशतोऽभिरक्षया।
स्वयं प्रदुग्धेऽस्य गुणैरुपस्नुता
वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी ॥ १८ ॥

उदारेति। उदारकीर्तेर्महायशसः। 'उदारो दातृमहतोः' इत्यमरः। दयावतः परदुःखहरणेच्छोः। अतएव प्रशान्तबाधं प्रशमितोपद्रवं यथो स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् उदयविशेषणं वा। 'वा दान्तशान्त—' इत्यादिना शमिधातोर्ण्यन्तान्निष्ठान्तो निपातः। अभिरक्षया सर्वतस्त्राणेनोदयं वृद्धिं दिशतः सम्पादयतो वसूपमानस्य कुबेरोपमस्य। 'वसुर्मयूखाग्निधनाधिपेषु' इति विश्वः। अस्य दुर्योधनस्य गुणैर्दयादाक्षिण्यादिभिरुपस्नुता द्राविता मेदिनी वसूनि धनानि। 'वसु तोये धने मणौ' इति वैजयन्ती। स्वयं प्रदुग्धे। अक्लेशेन दुह्यत इत्यर्थः। दुहेः कर्मकर्त्तरि लट्। 'न दुहस्नुनमां यक्चिणौ' इति यक्प्रतिषेधः। यथा केनचिद्विदग्धेन नवप्रसूता रक्षिता च गौः स्वयं प्रदुग्धे तद्वदिति भावः। अलङ्कारस्तु—'विशेषणमात्रसाम्यादप्रस्तुतस्य गम्यत्वे समासोक्तिः' इति सर्वस्वकारः। अत्र प्रतीयमानया गवा सह प्रकृताङ्गया भेदिन्या भेदेऽभेदलक्षणातिशयोक्तिवशादपोह्यत्वे नोक्तिरिति सङ्क्षेपः ॥ १८ ॥

अन्वय—उदारकीर्त्तेः दयावतः प्रशान्तबाधम् अभिरक्षया उदयं दिशतः वसूपमानस्य अस्य गुणैः उपस्नुता मेदिनी वसूनि स्वयं प्रदुग्धे।

हिन्दी अनुवाद—निर्मल यश और दया वाले तथा सब ओर से सुरक्षा द्वारा निरुपद्रव उन्नति सम्पन्न करते हुए, कुबेर के सदृश उसके गुणों से द्रवित की गई पृथ्वी स्वयं धनरूप दुग्ध देती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

English Translation—The earth, on her own accord, being softened by the merits of that illustrious and compassionate king who rivals kuvera and brings about on uninterrupted prosperity by all round protection yields wealth.

संस्कृतभावार्थ—यथा काऽपि नवप्रसूता गौर्नूतनकोमलतृणग्रासादिभिः पोषिता तं ग्रासदातारं दृष्ट्वा प्रसन्ना सती स्वयं दुग्धं क्षरति तथैव दुर्योधनस्य अलौकिकगुणैर्द्राविता वसुन्धरा उर्वरा भूत्वा स्वयमेव धनानि उत्पादयति। तस्य जनोपकारकार्यैः वशीकृताः प्रजाः यथासमयं करं ददति। इत्थं तस्य कोषे प्रभूतं धनमनायासेनैवागच्छति।

व्याख्या—यद्यपि दुर्योधन जनता के उपकारार्थ निर्जल में जलाशयनल-प्रणालिकादि जलप्रवाह द्वारा, दुर्भिक्षपीड़ित जनपद में अन्नादि के वितरण में प्रभूत धन व्यय करता था तथापि उसका कोष सदैव भरा रहता था, कभी रिक्त नहीं होता था, क्योंकि पृथ्वी उसके धर्मकार्य से द्रवीभूत हो कर बहुत धन देती थी। पृथ्वी में बहुत धान्य उत्पन्न होता था और सब ओर से सुरक्षा होने के कारण शत्रु के आक्रमण का कोई भय नहीं था। कोई अनधिकृत व्यक्ति फसल नष्ट करने का साहस नहीं कर सकता था।

टिप्पणी—**उदारकीर्त्तेः**—महान् यश वाले। उद्+रा+क स्त्रियां टाप्= उदारा, कृत्+क्तिन् भावे=कीर्त्तिः, उदारा कीर्तिर्यस्य सः (बहुव्रीहि) तस्य। **उदयम्**—उद्+इ+अच् भावे तम्। दिशतः का कर्म है। **दयावतः**—दया+मतुप्+ङस्, दया अस्ति अस्य तस्य। यहाँ 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽय-वादिभ्यः' से मतुप् के म् स्थान में व् हो गया है। 'उदारो दातृमहतोः' इत्यमरः। **प्रशान्तबाधम्**—प्र+शम्+णिच्+क्त कर्मणि स्त्रियाम्। प्रशान्ता बाधा यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा क्रियाविशेषण अथवा प्रशान्ता बाधा यस्मिन् सः तम् (बहुव्रीहि) उदयं का विशेषण हो जायगा। **दिशतः**—दिश्+लटः शतृ—दिशन् तस्य दिशतः। **अभिरक्षया**—अभि+रक्ष्+अ भावे स्त्रियाम् तया अभिरक्षया। करणे तृतीया। **वसूपमानस्य**—कुबेरतुल्यस्य उपमीयते इति उपमानम् (उप+मा+ल्युट् भावे)। वसुः उपमानं यस्य स (बहुव्रीहि) तस्य। 'रत्नं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसु' इत्यमरः। 'दया कृपानुकम्पा स्यात्' इत्यमरः। 'वसुर्मयूखाग्निधनाधिपेषु' इति विश्वः। **अस्य**—दुर्योधनस्य। **गुणैः**—दयादाक्षिण्यादिभिः अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया। **उपस्नुता**—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उप+स्नु+क्त कर्मणि स्त्रियाम्। द्राविता। 'मेदिनी' का विशेषण है। मेदिनी—पृथ्वी (मेद+इनि मत्वर्थे स्त्रियाम्) मेदः अस्ति अस्यामिति। जब भगवान् विष्णु ने मधु और कैटभ दैत्यों का वध किया तब सारी पृथ्वी उनके मेद और मांस से आवृत हो गई तभी से पृथ्वी को लोग मेदिनी कहने लगे। रघुनाथ ने मेद का प्रयोग मेदस् 'चर्बी' के अर्थ में समर्थन करने के लिए निम्नलिखित उद्धरण दिया है। 'तृषाकम्पक्कमिहरो मलघ्नो मेदकुष्ठजित्।' द्रष्टव्य—"मधुकैटभयोस्त्वासीन्मेदमांसपरिप्लुता। तेनेयं मेदिनी देवी प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः ।।" स्वयंप्रदुग्धे—स्वतः प्रदुग्धा भवति प्र+दुह्+लट् ते कर्मकर्त्तरि। दुह् धातु द्विकर्मक है :—

"दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथमुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्।।"

कारिका में आई हुई धातुएँ द्विकर्मक होती हैं। इस श्लोक में समासोक्ति अलंकार है—क्योंकि अप्रस्तुत गो के व्यवहार का केवल विशेषणों की समानता के कारण आरोप हो रहा है। तल्लक्षणम् अलंकारसर्वस्वे—विशेषणमात्र साम्यात् अप्रस्तुतस्य गम्यत्वे समासोक्तिः'।

वाच्यपरिवर्त्तन—उपस्नुतया, मेदिन्या स्वयं वसूनि प्रदुह्यन्ते।

वीरभटानुकूल्यमाह—

उसके सैनिक भी उसके अनुकूल हैं तथा प्राणपण से उसका हित चाहते हैं—

महौजसो मानधना धनार्चिता
धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्त्तयः।
नसंहतास्तस्य न भिन्नवृत्तयः
प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम्।।१९।।

महौजसो इति। महौजसो महाबलाः। अन्यथा दुर्बलानामनुपकारित्वादिति भावः। मानः कुलशीलाद्यभिमान एव धनं येषां ते मानधनाः। अन्यथा कदाचिद्बलदर्पाद्विकुर्वीरन्निति भावः। धनार्चिताः धनैर्चिताः सत्कृताः। अन्यथा दारिद्र्यादेनं जह्युरिति भावः। संयति सङ्ग्रामे लब्धकीर्तयः। बहुयशस इत्यर्थः। अन्यथा कदाचिन्मुह्येयुरिति भावः। संहता मिथः सङ्गताः स्वार्थनिष्ठा न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भवन्तीति न संहताः। नञर्थस्य न शब्दस्य सुप्सुपेति समासः। भिन्नवृत्तयो मिथो विरोधात्स्वामिकार्यविघातकरा न भवन्तीति नभिन्नवृत्तयः। पूर्ववत्समासः। अन्यथा स्वामिकार्यविघातकतया स्वामिद्रोहिणः स्युरित्युभयत्रापि तात्पर्यार्थः। धनुर्भृतो धानुष्काः। आयुधीयमात्रोपलक्षणमेतत्। प्राधान्याद्धनुर्ग्रहणम्। तस्य दुर्योधनस्यासुभिः प्राणैः प्रियाणि समीहितुं कर्तुं वाञ्छन्ति। आनृण्यार्थं प्राणान्दातुमिच्छिन्ति अन्यथा दोषस्मरणादिति भावः। अत्र महौजस आदि-पदार्थानां प्राणदानकर्त्तव्यतां प्रति विशेषणगत्या हेतुत्वाभिधानात्काव्यलिङ्ग-मलङ्कारः। लक्षणं तूक्तम्। तथा साभिप्रायविशेषणवात्परिकरोऽलङ्कार इति द्वयोस्तिलतण्डुलवद्विभक्ततया स्फुरणात्संसृष्टिः ॥१९॥

अन्वय—महौजसः मानधनाः धनार्चिताः संयति लब्धकीर्तयः न संहताः न भिन्नवृत्तयः धनुर्भृतः तस्य असुभिः प्रियाणि समीहितुं वाञ्छन्ति।

हिन्दी अनुवाद—महान् ओजस्वी, अभिमान रूपी धन वाले, लक्ष्मी द्वारा सम्मानित, युद्ध में यश पाने वाले, (स्वार्थ के लिए) संगठित न होने वाले और (आपसी विरोध के कारण) भिन्न वृत्ति न रखने वाले धनुर्धर लोग प्राणपण से उस (दुर्योधन) का कल्याण चाहते हैं।

English Translation—Bowmen of great prowess who regards self-respect as their wealth, honoured with riches, who have achieved fame in battles (who are) neither selfishly grouped together nor working at cross purposes, desire to do him good with their lives.

संस्कृतभावार्थ—तस्य वीरभटाः मिथः स्वार्थसिद्ध्यै न मिलिताः सर्वे दुर्योधनाभिलाषपूरणैकलक्ष्यवन्तः सन्ति। स तान् धनादिना सर्वदैव प्रीणयति। अतएव तस्मिन्ननुरक्ताश्च धानुष्कः स्वप्राणपणेनापि तस्य हितं कुर्वन्तीत्य-भिप्रायः।

व्याख्या—दुर्योधन की सेवा में महाबली, संग्राम में लब्धप्रतिष्ठ एवं आत्माभिमानी वीर हैं, जिनको वह अत्यन्त उदारता से धनवितरण द्वारा सम्मा-नित करता है। वे अपने स्वार्थसाधन के लिए संघ नहीं बनाते। उन सबों का एक ही लक्ष्य है अपने स्वामी को सुदृढ बनाना। वे अपने स्वामी में इतने अनुरक्त हैं कि उसके लिए प्राण तक न्योछावर करने को सन्नद्ध हैं। अतः दुर्योधन का युद्ध में जीतना सरल नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टिप्पणी—**महौजसः**—महत् ओजः येषां ते (बहुव्रीहि)। तात्पर्य है कि व अच्छी सेवा के योग्य थे; क्योंकि दुर्बल रक्षा में समर्थ नहीं हो सकता—मल्लिनाथ। **मानधनाः**—मानिनः। मन+घञ् भावे मानः; मान एव धनं येषां ते (बहुव्रीहि)। द्रष्टव्य—'सदाभिमानैकधना हि मानिनः' शिशुपालवध प्रथम-सर्ग। **धनार्चिताः**—धनेन अर्चिताः—(अर्च्+णिच्+क्त कर्मणि) (तृतीया तत्पु०) 'धनुर्भृतः' का विशेषण है। **संयति**—संग्रामे। सम्+यम्+क्विप् अधिकरणे संयत् तस्याम्। अधिकरणे सप्तमी। **लब्धकीर्त्तयः**—लब्धा कीर्त्तिः यैः ते (बहुव्रीहि)। लभ्+क्त कर्मणि स्त्रियाम्। **न संहताः**—असंगठित अर्थात् स्वार्थनिष्ठ होकर दलबन्दी न करने वाले। सम्+हन्+क्त कर्त्तरि न संहताः (सुप्सुपा समास)। **न भिन्नवृत्तयः**—अविरोधी वृत्ति वाले। भिन्ना वृत्तिर्येषां ते (बहुव्रीहि) न भिन्नवृत्तयः नभिन्नवृत्तयः (सुप्सुपा) 'नैकधा इत्यादौ तु न शब्देन सह सुप्सुपेति समासः' भट्टोजिदीक्षित। **धनुर्भृतः**—धनुः बिभ्रतीति धनुस्+भृ+क्विप् कर्त्तरि धनुर्भृतः (उपपद तत्पुरुष) तस्य दुर्योधनस्य **असुभिः**—प्राणैः। असु, प्राण, दारा, अक्षत, लाजा आदि शब्द सदा बहुवचन में ही प्रयुक्त होते हैं। **प्रियाणि**—प्रीणन्तीति प्री+का कर्त्तरि—प्रियाणि। यहाँ 'क' प्रत्यय 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' सूत्र से लगा है। **समीहितुम्**—सम्+ईह्+तुमुन्। **वाञ्छन्ति**—वाञ्छ्+लट् झि। **कोशः**—'बृहद्विशालं पृथुलं महत्', 'ओजो दीप्तौ बले स्रोत इन्द्रिये निम्नगारये', समुदायः स्त्रियः संयत्समित्याजिस-मिद्युधः' 'कीर्त्तिः यशः समज्ञा च' 'असवः प्राणाः' इति सर्वत्रामरः।

इस श्लोक में महौजसः, मानधनाः, धनार्चिताः, संयति लब्धकीर्त्तयः आदि पद अपने विशेषणबल से प्राणत्याग के संकल्प के कारण हैं, इसलिए काव्य-लिंग अलंकार है 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंग निगद्यते' साहित्यदर्पण। वाक्यार्थ अथवा पदार्थ जहाँ किसी का कारण हो वहाँ काव्यलिंग अलंकार होता है। महौजसः, मानधनाः, धनार्चिताः, संयति लब्धकीर्त्तयः ये सभी विशेषण साभिप्राय हैं अतः परिकर अलंकार है—'विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः' अर्थात् विशेष्य का साभिप्राय विशेषणों से कथन करना परिकरालंकार कहलाता है—काव्यप्रकाश। दोनों अलंकार स्पष्टतः पृथक्-पृथक् दिखाई पड़ते हैं—जैसे तिल और चावल मिला देने पर भी स्पष्ट पृथक्-पृथक् दिखाई पड़ते हैं, अतएव दोनों अलंकारों की संसृष्टि 'तिलतण्डुलवत्' है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाच्यपरिवर्त्तन—महौजोभिः मानधनैर्धनार्चितैः धनुर्भृद्भिः संयति लब्धकीर्त्तिभिः नसंहतैः नभिन्नवृत्तिभिः भूयन्ते । किन्तु असुभिरपि प्रियाणि समीहितुं वाञ्छ्यन्ते ।

सम्प्रति स्वराष्ट्रवत्परराष्ट्रवृत्तान्तमपि वेत्तीत्याह—

वह अब अपने राष्ट्र के समान शत्रु के राष्ट्र का भी हाल जानता है—

महीभृतां सच्चरितैश्चरैः क्रियाः
स वेद निःशेषमशेषितक्रियः ।
महोदयैस्तस्य हितानुबन्धिभिः
प्रतीयते धातुरिवेहितं फलैः ।। २० ।।

महीभृतामिति । अशेषितक्रियः समापितकृत्यः आफलोदयकर्मेत्यर्थः । स दुर्योधनः । सच्चरितैः शुद्धचरितैः अवञ्चकैरित्यर्थः । चरन्तीति चरास्तैश्चरैः प्रणिधिभिः (पचाद्यच्) महीभृतां क्रियाः प्रारम्भान्निःशेषं वेद वेत्ति । 'विदो लटो वा' इति णलादेशः । स्वरहस्यं तु न कश्चिद्वेदेत्याह महोदयैरिति । धातुरिव तस्य दुर्योधनस्येहितमुद्योगो महोदयैर्महावृद्धिभिः । हितमनुबध्नन्त्यनुरुन्धन्तीति हितानुबन्धिभिः । स्वन्तैरित्यर्थः । फलैः कार्यसिद्धिभिः प्रतीयते ज्ञायते फलानुमेयास्तस्य प्रारम्भा इत्यर्थः ।।२०।।

अन्वय—अशेषितक्रियः स सच्चरितैः चरैः महीभृतां क्रियाः निःशेषं वेद । धातुरिव तस्य ईहितं महोदयैः हितानुबन्धिभिः फलैः प्रतीयते ।

हिन्दी अनुवाद—कार्य को सम्पूर्ण करने वाला वह दुर्योधन सच्चरित्र गुप्तचरों द्वारा राजाओं के कार्यों को पूर्णरूप से समझ लेता है। उस दुर्योधन की चेष्टा ब्रह्मा की चेष्टा के समान बड़ी उन्नतिवाली सिद्धियों से ज्ञात होती है।

English Translation—With no work left unfinished, he knows fully of the actions of other kings through honest and trustworthy spies. His own undertakings like that of the ordainer are inferred from the beneficially ending results of great progress.

संस्कृतभावार्थ—समापितकृत्यः स दुर्योधनः अन्येषां राज्ञां व्यापारान् गूढचरैः सर्वं जानाति परन्तु यस्य चिकीर्षितं प्राक् कोऽपि नावगच्छति । यथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केनाशयेन ईश्वरः किं कर्म करोतीति न केनापि पूर्वं ज्ञायते तथैव दुर्योधनस्य कार्यपरिणामं विलोक्यैव तस्य चेष्टितं पश्चात् विदितं भवतीत्यर्थः ।

व्याख्या--दुर्योधन बड़ी सावधानी से शासन करता है। वह अन्य राजाओं के कार्यों का पता अपने विश्वासपात्र गुप्तचरों के द्वारा लगा लेता है, किन्तु उसकी गतिविधि का पता कार्य सफल हो जाने पर ही लगता है। परिणाम देख कर यह समझा जा सकता है कि आरम्भ में दुर्योधन ने यह कार्य किया होगा, जिसका फल इस प्रकार प्राप्त हुआ है।

टिप्पणी--अशेषितक्रियः--कार्य को अधूरा न रखने वाला। शिष्+णिच्+क्त कर्मणि स्त्रियाम् शेषिता अथवा शेषः सञ्जातः आसामिति शेष+इतच् तारकादित्वात् शेषिताः अथवा शेषं करोति इति शेष+णिच्+लट् ति शेषयति शेष (नामधातु)+क्त कर्मणि स्त्रियाम् शेषिताः। न शेषिताः अशेषिताः (नञ् तत्पुरुष) अशेषिताः क्रियाः येन सः (बहुव्रीहि)। सः--दुर्योधनः। सच्चरितैः--चर्+क्त भावे नपुंसके चरितम्, अस्+शतृ--सत्, सत् चरित येषां ते तैः (बहु०)। चरैः--चरन्तीति चराः तैः (चर्+अच् पचाद्यच्) तैः करणे तृतीया। महीभृताम्--राज्ञाम्, महीं बिभ्रतीति महीभृतः, तेषाम् (उपपदतत्पुरुष) षष्ठी शेषे। मही+भृ+क्विप् कर्त्तरि। क्रियाः--व्यापारान्। निःशेषं--सकलं शिष्+घञ् भावे--शेषः, निर्गतः शेषो यस्मात् (कर्मणः) तत् यथा तथा बहुव्रीहि। वेद--जानाति। विद्+लट् तिप्--विद्+णल्--अ 'विदो लटो वा'--विद् धातु से विकल्प से लिट् और लट् के पाँच प्रत्यय लगते हैं--अतः वेद का प्रयोग लिट् और लट् दोनों लकारों में होता है। विद् के अनेक अर्थ होते हैं यथा 'सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे। विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्, लुक्--श्नम्--शेष्विदं क्रमात्'। धातुरिव--प्रजापतेरिव। दधातीति धा+तृच् कर्त्तरि=धाता, तस्य शेषे षष्ठी। तस्य--दुर्योधनस्य। ईहितम्--चेष्टा। ईह् चेष्टायां+क्त नपुंसके भावे। उक्ते कर्मणि प्रथमा। महोदयैः--महान् उदयः येभ्यः तैः (बहुव्रीहि)। फलैः का विशेषण है। उद्+इ+अच् भावे=उदयः। हितानुबन्धिभिः--हित को बाँध लेने वाले अर्थात् शुभ परिणाम वाले। हितमनुबध्नन्तीति हितानुबन्धीनि हित+अनु+बन्ध्+णिनि कर्त्तरि ताच्छील्ये, उपपदतत्पुरुष, तैः अथवा अनु+बन्ध्+

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घञ् भावे—अनुबन्धः। हितस्यानुबन्धः हितानुबन्धः (षष्ठी तत्पुरुष) स अस्ति एषामिति हितानुबन्धितः (हितानुबन्ध+इति मत्वर्थीयः) तैः फलैः—परिणामैः कार्यसिद्धिभिः। प्रतीयते—अनुमीयते। प्रति+इ+लट् ते कर्मणि। 'स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड्विधिः' इत्यमरः। द्रष्टव्य—'फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव' रघुवंश प्रथम सर्ग। 'धातुरिव' में विधाता से समानता होने के कारण उपमालङ्कार है—"साधर्म्यमुपमा"—काव्यप्रकाश।

वाच्यपरिवर्त्तन—अशेषितक्रियेण तेन दुर्वोध्रनेन सच्चरितैश्चरैः अन्येषां महीभृतां क्रियाः ज्ञायन्ते। तस्य ईहितं...........प्रतियन्ति (जनाः)।

मित्रबलमाह—

उसने अन्य राजाओं को अपने गुणों से मुग्ध कर मित्र बना लिया है—

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः
कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम्।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते
नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ॥२१॥

नेति। तेन राज्ञा क्वचित्कुत्रापि। सह ज्यया मौर्व्या सज्यम्। 'मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः। 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः। धनुनोद्यतं नोर्ध्वीकृतम्। आननम् च कोपविजिह्मं कोपकुटिलं न कृतम्। यस्य कोप एव नोदेति कुतस्तस्य युद्धप्रसक्तिरिति भावः। कथं तर्ह्याज्ञां कारयति राज्ञ इत्यत्राह गुणेति। गुणेषु दयादाक्षिण्यादिष्वनुरागेण प्रेम्णा। माल्यपक्षे सूत्रानुषङ्गेण। यद्वा सौरभ्यगुणलोभेन। नराधिपैरस्य शासनमाज्ञा। मालैव माल्यं तदिव। 'चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ्' इति क्षीरस्वामी। शिरोभिरुह्यते धार्यते। 'वचिस्वपियजादीनां किति' इति यकि सम्प्रसारणम्। अत्रोपमा स्फुटैव ॥२१॥

अन्वय—तेन क्वचित् सज्यं धनुः न उद्यतम् वा कोपविजिह्मम् आननम् न कृतम्, गुणानुरागेण नराधिपैः अस्य शासनम् माल्यमिव शिरोभिः उह्यते ॥२१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी अनुवाद—उसने कहीं भी मौर्वीयुक्त धनुष नहीं उठाया, न तो कभी क्रोधवश मुख ही टेढ़ा किया। राजा लोग भी उसके गुणों के अनुराग से उसकी आज्ञा माला के समान शिरोधार्य करते हैं।

English Translation—By him, in no case his bow with the string attached was raised or his face was made frowning with anger. His order is carried on their heads by the other kings like a wreath because of regards for virtue.

संस्कृतभावार्थ—दुर्योधनः एवं दयादाक्षिण्यादिगुणैः राष्ट्रं पालयति येत न कोऽपि तद्विरुद्धमाचरति। तेन युद्धार्थं क्वचिदपि धनुर्न सज्जीकृतम् वा क्रोधेन मुखं कुटिलं कृतम्। सर्वे राजानः गुणानुरक्ताः तस्यादेशं माल्यमिव शिरोभिः धारयन्ति भूपतयस्तस्य शासनानुसारेणैव वर्तन्ते इत्यर्थः।

व्याख्या—दुर्योधन के गुणों से सभी राजा लोग प्रसन्न थे। किसी को कोई शिकायत नहीं थी। सभी उसकी आज्ञा का हर्षपूर्वक पालन करते थे अतः न तो उसे कभी धनुष ही चढ़ाना पड़ा न क्रोध करने का ही अवसर मिला।

टिप्पणी—तेन—दुर्योधनेन। क्वचित्—कुत्रापि। सज्यम्—आरोपितमौर्वीकं ज्यया सह वर्तते इति सज्यम्। यहाँ पर 'तेन सहेति तुल्ययोगे' सूत्र से बहुव्रीहि समास हुआ है और 'वोपसर्जनस्य' सूत्र से सह के स्थान पर 'स' हो गया। 'मौर्वीज्या शिञ्जिनीगुणः' इत्यमरः। धनुः—कोदण्डम्। उक्ते कर्मणि प्रथमा 'धनुश्चापौ धन्वशरासनकोदण्डकार्मुकम्' इत्यमरः। नोद्यतम्—नोत्तानितम्। उद्+यम्+क्त कर्मणि उद्यतम्। आननं वा—मुखं वा 'वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्' इत्यमरः। कोपविजिह्मम्—क्रोध से कुटिल। कोप—कुप्+घञ् भावे, विशेषेण जिह्मम् विजिह्मम् (प्रादितत्पुरुष) कोपन विजिह्मम् (तृ० तत्पु०) न कृतम्—न विहितम्। कृ+क्त+कर्मणि=कृतम्। 'कोपक्रोधामर्षरोषप्रतिघारुट्क्रुधौ स्त्रियौ' इत्यमरः। "अरालं वृजिनं जिह्ममूर्तिमत्कुञ्चितं नतम्। आविद्धं कुटिलं भुग्नं वेल्लितं वक्रमित्यपि॥" इत्यमरः। गुणानुरागेण—गुणेषु अनुरागेण (सप्तमी तत्पुरुष) हेतौ तृतीया। गुण का अर्थ है सूत्र अथवा सुगन्धि (माल्यपक्ष में) 'सूत्रानुषङ्गेण यद्वा सौरभ्यगुणलोभेन'। नराधिपैः—नराणामधिपैः (षष्ठी तत्पुरुष) अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया। अधिपान्तीत अधि+पा+क कर्त्तरि=अधिपाः। अस्य—दुर्योधनस्य।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शासनम्---आदेशवचः। शिष्यते इति शासनम् (शास्+ल्युट् भावे) उक्ते कर्मणि प्रथमा। माल्यमिव---स्रजमिव। माला एव माल्यम् (माला+स्वार्थे ष्यञ्) । यहाँ स्वार्थे ष्यञ् 'चातुर्वर्ण्यादित्वात् स्वार्थे ष्यञ्' सूत्र से चातुर्वर्ण्य के समान माला में भी प्रयुक्त है। शिरोभिः---शीर्षैः। उह्यते---धार्यते। वह्+लट् ते कर्मणि 'उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धा न मस्तकोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। 'मनुष्या मानुषा मर्त्या मनुजा मानवा नराः। स्युः पुमांसः पञ्चजनाः पुरुषाः पूरुषा नरः।।' इत्यमरः। 'माल्यं मालास्रजौ मूर्ध्नि केशमध्ये तु गर्भकः' इत्यमरः। उपमालंकारः—'साधर्म्यमुपमाभेदे' अर्थात उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर (उनके) साधर्म्य (का वर्णन) उपमा कहलाता है ---काव्यप्रकाश।

वाच्यपरिवर्त्तन---स क्वचित् सज्यं धनुः नोद्यतवान्। वा कोपविजिह्मम् आननं न कृतवान्। नराधिपाः गुणानुरागेण अस्य शासनं माल्यमिव शिरोभिर्वहति।

सम्प्रत्यस्य धार्मिकत्वमाह---

वह (किरात) अब दुर्योधन की धर्मपरता को लक्ष्य करके कहता है---

स यौवराज्ये नवयौवनोद्धतं
निधाय दुःशासनमिद्धशासनः।
मखेष्वखिन्नोऽनुमतः पुरोधसा
धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम्।। २२।।

स इति। इद्धशासनोऽप्रतिहताज्ञः स दुर्योधनो नवयौवनोद्धतं प्रगल्भम्। धुरन्धरमित्यर्थः। दुखेन शास्यत इति दुःशासनस्तम्। 'भाषायां शासियुधि'---इत्यादिना खलर्थे। युच्प्रत्ययः। यौवराज्ये युवराजकर्मणि। ब्राह्मणादित्वात्ष्यञ् निधाय। नियुज्येत्यर्थः। पुरोधसा पुरोहितेनानुमतोऽनुज्ञातः। तस्मिन्याजके सतीत्यर्थः। तदुल्लङ्घने दोषस्मरणादिति भावः। 'निष्ठा' इति भूतार्थे क्तः। न तु 'मतिबुद्धि' इत्यादिना वर्तमानार्थे। अन्यथा 'पुरोधसा' इत्यत्र 'क्तस्य च वर्तमाने' इति षष्ठी स्यात्। अखिन्नोऽनलसो मखेषु क्रतुष हव्येन हविषा। हिरण्यं रेतो यस्य तं हिरण्यरेतसमनलं धिनोति प्रीणयति। धिन्वेः प्रीणनार्थाद् 'धिन्विकृण्व्योर च' इत्युप्रत्ययः। अकारश्चान्तादेशः।। २२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वय--इद्धशासनः सः यौवराज्ये नवयौवनोद्धतम् दुःशासनम् निधाय मखेषु अखिन्नः पुरोधसा अनुमतः (सन्) हव्येन हिरण्यरेतसम् धिनोति ।। २२ ।।

हिन्दी अनुवाद---अनुल्लंघित आदेश वाला वह दुर्योधन नवयौवन के कारण उद्दण्ड दुःशासन को युवराज के कार्य में नियुक्त कर पुरोहित की आज्ञा के अनुसार अश्रान्त हुआ यज्ञों में हव्य के द्वारा अग्नि को प्रसन्न करता है ।

English Translation:—He, of blaging command having put Dushashan who was bold on account of fresh youth in the office of crown prince, tirelessly propitiates fire by offerings at sacrifices being directed by the family priest.

संस्कृतभावार्थ--अप्रतिहतशासनः स दुर्योधनः राज्यकार्ये अभिनव-तारुण्यप्रगल्भम् स्वानुजं दुःशासनं निवेश्य स्वयं निश्चिन्तो भूत्वा पुरोहितेना-नुज्ञातः यागेषु भगवन्तं विभावसुं हविःप्रदानेन प्रीणयति । इत्थं पुण्यार्जनं कृत्वा तस्य धर्मलाभः सिद्धो भवति ।

व्याख्या---इस प्रकार सब राजाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित करके दुर्योधन ने अर्थ और काम की सिद्धि कर ली है। अब वह धर्मोपार्जन करके त्रिवर्ग की प्राप्ति चाहता है। अतः वह यज्ञादि कर्म में निश्चिन्त होकर निरत है। राज्य का भार अपने छोटे भाई दुःशासन पर छोड़ दिया है जो अभिनव यौवन के कारण उद्दण्ड है। इससे यह ध्वनि भी निकलती है कि दुःशासन के यौवनोद्धत होने के कारण प्रजावर्ग में असन्तोष फैल सकता है, जिससे महाराज युधिष्ठिर को आक्रमण करने का अवसर प्राप्त हो सकता है। (धर्म, अर्थ और काम को त्रिवर्ग कहते हैं) ।

टिप्पणी---इद्धशासनः--शिष्यते इति शास्+ल्युट् भावे शासनम्, इन्ध्+क्त कर्त्तरि इद्धम्---देदीप्यमान, इद्धं शासनं यस्य सः (बहुव्रीहि) । सः---दुर्योधनः अखिन्नः सन्---खिद्+क्त कत्तरि खिन्नः न खिन्नः इति अखिन्नः (नञ् तत्पुरुष) 'सः' का विशेषण है । नवयौवनोद्धतम्---नवीन यौवन से उद्धत अर्थात् गर्वीला या प्रगल्भ । यूनोः भावः यौवनम् युवन्+अण् । उद्+हन्+क्त कर्मणि, नवं च तत् यौवनम् नवयौवनम् (कर्मधारय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समास) नवयौवनेन उद्धतम् (तृतीया तत्पुरुष)। दुःशासनम्—दुर्+शास्+युच् कर्मणि तम्। निधाय—नि+धा+ल्यप्। मखेषु—यज्ञेषु—'यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततंतुर्मखः क्रतुः' इत्यमरः। यौवराज्ये—युवा चासौ राजा चेति युवराजः (कर्मधारय) 'राजाहःसखिभ्यष्टच्—तत्पुरुष समास में राजन्, अहन् और सखि शब्द के बाद टच् प्रत्यय लगता है—इस सूत्र से टच् हुआ। युव+राजन्+(टच्) टच् के स्थान पर अ हो गया। युवराजः तस्य कर्म इति युवराज+ष्यञ् यौवराज्यम्, तस्मिन्। अधिकरणे सप्तमी। 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' सूत्र से युवराज में 'ष्यञ्' प्रत्यय लगता है। क्योंकि 'युवराज' शब्द ब्राह्मणादिगण के अन्तर्गत आता है। 'समासे तु ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्,—भट्टोजिदीक्षित। पुरोधसा—पुरः धत्ते वा धीयते इति पुरस्+धा+असुन् कर्त्तरि कर्मणि वा—पुरोधाः तेन। 'अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया'। अनुमतः—अनु+मन्+क्त कर्मणि हव्येन—हूयते इति हव्यम् हु+यत् कर्मणि तेन। करणे तृतीया। हिरण्यरेतसम्—अग्निं। हिरण्यं रेतो यस्य स तम् (बहुव्रीहि)। 'हिरण्यरेता हुतभुग्दहनो हव्यवाहनः' इत्यमरः। 'पुरोधास्तु पुरोहितः' इत्यमरः। धिनोति—प्रीणयति। प्रसन्न करता है। धिन्व+लट्+ति।

वाच्यपरिवर्त्तन—तेन इद्धशासनेन यौवराज्ये नवयौवनोद्धतं दुःशासनं निधाय मखेषु अखिन्नेन पुरोधसाऽनुमतेन हव्येन हिरण्यरेताः धिन्व्यते।

न चैतावता निरुद्योगैर्भाव्यमित्याशङ्क्याशां दर्शयति—

यदि दुर्योधन ऐसा उद्योगी है तो उससे पार नहीं पा सकते, ऐसी शंका करके उद्योग करने के लिए आशा प्रदर्शित करते हैं—

प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति
प्रशासदावारिधि मण्डलं भुवः।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यती-
रहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता ॥ २३ ॥

प्रलीनेति। स दुर्योधनः। प्रलीनभूपालम्। निःसपत्नमित्यर्थः। स्थिरायति चिरस्थायीत्यर्थः। भुवो मण्डलमावारिधिभ्य आवारिधि। 'आङ्मर्यादाऽभिविध्योः' इत्यव्ययीभावः। प्रशासदाज्ञापयन्नपि। 'जक्षित्यादयः षट्, इत्यभ्यस्त-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संज्ञा । 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुमागमप्रतिषेधः । त्वत्त्वत्त एष्यतीरागमिष्यतीः । धातूनामनेकार्थत्वादुक्तार्थसिद्धिः । अथवाऽऽङ्पूर्वः पाठः । 'एत्येधत्यूठ्सु' इति वृद्धिः 'लृटः सद्वा' इतिशतृप्रत्ययः । 'उगितश्च' इति ङीप् । 'आच्छीनद्योर्नुम्' इति विकल्पान्नुमभाव । भियो भयहेतून् । विपद इत्यर्थः । चिन्तयत्यालोचयत्येव । स एवाह—अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता दुष्टावसाना । सार्वभौमस्यापि प्रबलैः सह वैरायमाणत्वमनर्थपर्यवसाय्येवेति तात्पर्यम् । सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः ।। २३ ।।

अन्वय—सः प्रलीनभूपालम् स्थिरायति आवारिधि भुवः मण्डलम् प्रशासत् अपि त्वदेष्यतीः भियः चिन्तयति एव । अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता (भवति) ।। २३ ।।

हिन्दी अनुवाद—वह दुर्योधन शत्रु राजाओं के लुप्त हो जाने पर भविष्य में स्थिर रहने वाले भूमण्डल का समुद्रपर्यन्त राज्य करता हुआ आप से आने वाले भय से त्रस्त रहता है । अहो बलवान् से विरोध बुरे अन्त वाला होता है ।

English Translation :—He though ruling upto the seas the circuit of the earth where rival kings have been wiped off, and the future is stable apprehends fear to come from you. Oh, hostility with the mighty is of a sad end.

संस्कृतभावार्थ—स निष्कण्टकमासागरं महीमण्डलमात्माधीनं विधायापि त्वत्तो बिभेत्येव । एतेन तस्य मनोदौर्बल्यं सूच्यते । यतो महद्भिर्विरोधो दुःखपरिणामो जायते ।

व्याख्या—दुर्योधन का शासन इतना अच्छा एवं सुदृढ़ है तथापि उसे महाराज युधिष्ठिर से पराभव की आशंका है, क्योंकि बली के साथ विरोध करने में निर्बल को सदैव भय बना रहता है ।

टिप्पणी—सः—दुर्योधनः । प्रलीनभूपालम्—प्र+ली+क्त कर्त्तरि—प्रलीन, भुवं पालयतीति भूपालः—भू+पा+णिच्—'पातेर्णौ लुग्वक्तव्यः' इति वार्तिकेन लुगागमः,+अण् कर्त्तरि—प्रलीनः भूपालाः यस्मिन् तत् मण्डलम् का विशेषण है । स्थिरायति—स्थिर भविष्य वाले दैर्घ्यं भाविकाले आयतिः इति त्रिकाण्डशेषः 'उत्तरकालः आयतिः' इत्यमरः । स्थिरा आयतिः यस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत् (बहुव्रीहि) मल्लिनाथ के अनुसार 'भूमण्डलम्' का विशेषण है पर भूमण्डल के स्थिर होने में कोई विशेषता नहीं है। वह तो स्थिर है ही, केवल कल्पान्त में ही नष्ट होगा। वास्तव में आगे समय में भी दुर्योधन के राज्यच्युत होने की संभावना नहीं है, अतः भूमंडल का शासन करता हुआ दुर्योधन अर्थ करना चाहिए। यह प्रशासत् का विशेषण हो जाता है, अतः इस प्रकार विग्रह करना अधिक उपयुक्त होगा। स्थिरा आयतिः यस्मिन् तद्यथा स्यात्तथा। आवारिधि--समुद्रपर्यन्त। वारि धीयते अस्मिन् इति वारि+धा+कि अधिकरणे, वारिधिभ्यः आ इति आवारिधि 'आङ्मर्यादाभिविध्योः' सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ है। भुवः--पृथिव्याः। मण्डलम्--चक्रम्। 'मण्डलं वलयं समम्' इति कोशः। प्रशासत्--प्र+शास्+शतृ, शास् 'अभ्यस्तसंज्ञा' में है, अतः 'नाभ्यस्ताच्छतुः' सूत्र से नुम् का प्रतिषेध हो गया है। त्वदेष्यतीः--तुम्हारी ओर से आने वाले। त्वत् एष्यतीः—(आ+इ+लृट्+शतृ+ङीप्) त्वत्तः एष्यतीः (सुप्सुपा) ताः। भविष्य अर्थ में लृट् को 'एष्यतीः' में 'लृटः सद्वा' सूत्र से शतृ हो जाता है, 'स्यतासीलृलुटोः' नियम से 'स्य' होता है, 'उगितश्च' से ङीप् होता है। एष्यतीः का अर्थ होता है 'जाती हुई को' किन्तु यहाँ 'आती हुई को' अर्थ है। इसके दो समाधान हैं एक तो यह कि धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं; दूसरे मल्लिनाथ के अनुसार 'त्वदेष्यतीः' के स्थान पर 'त्वदैष्यतीः' पाठ को स्वीकार करना चाहिए। आ+एष्यतीः—ऐष्यतीः। 'एत्येधत्यूठ्सु' नियम से वृद्धि हो जायगी। 'ऐष्यतीः' का अर्थ होगा 'आती हुई को'। भियः--बिभेत्यस्मादिति भीः (भी+क्विप् अधिकरणे) ताः। चिन्तयति एव--चिन्त्+णिच् (चुरादि) लट् ति। अहो--अव्यय; खेद अथवा आश्चर्य का सूचक है। बलवद्विरोधिता--बलमस्ति अस्येति बलवान् बल्+मतुप्। विरुणद्धि इति वि+रुध्+णिनि कर्त्तरि--विरोधी तस्य भावः विरोधिता। विरोधिन्+तल् स्त्रियाम्। बलवता विरोधिता बलवद्विरोधिता (सुप्सुपा समास)। दुरन्ता--दुः (दुष्टः) अन्तः यस्याः सा (बहुव्रीहि)। सामान्य से विशेष का समर्थनरूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

वाच्यपरिवर्त्तन—तेन दुर्योधनेन प्रलीनभूपालं स्थिरायति आवारिधि भुवो मंडलं शासता त्वदेष्यत्यो भियश्चिन्त्यन्ते एव। अहो बलवद्विरोधितया दुरन्तया भूयते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ननु गूढाकारेङ्गितस्य भयं त्वया कथं निरधारि इत्यत्राह––

आकार को छिपाये रखने वाले दुर्योधन के भय का पता तुम्हें कैसे लगा, इस संबंध में वनेचर कहता है––

कथाप्रसङ्गेन जनैरुदाहृता-
दनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः ।
तवाभिधानाद् व्यथते नताननः
सुदुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः ।। २४ ।।

कथेति । कथाप्रसङ्गेन गोष्ठीवचनेन जनैः तत्रस्थैरित्यर्थः । अन्यत्र-कथाप्रसङ्गेन विषवैद्येन । 'कथाप्रसङ्गो वर्तायां विषवैद्येऽपि वाच्यवत्' इति विश्वः । एकवचनस्यातन्त्रत्वाज्जनविशेषणम् । यद्वा कथाप्रसङ्गे इनाश्च ते जनाश्चेत्येकं पदम् । उदाहृतादुच्चारितात्तवाभिधानान्नामधेयात् नामधेयस्मरणाद्धेतोः । 'हेतौ' इति पंचमी 'आख्याह्वे अभिधानं च नामधेयं च नाम च' इत्यमरः । अन्यत्र तवाभिधानात् । 'नामैकदेशग्रहणं नाममात्रग्रहणम्' इति न्यायात् । तश्च वश्च तवौ तार्क्ष्यवासुकी तयोरभिधानं यस्मिन्पदे तस्मात् । अनुस्मृताखण्डलासूनुविक्रमः स्मृतार्जुनपराक्रमः सन् सुदुःसहादतिदुःसहान्मन्त्रपदान्मन्त्रशब्दात्स्मारकाद्धेतोः । आखण्डलसूनुरिन्द्रानुजः । उपेन्द्रो विष्णुरिति यावत् । 'सूनुः पुत्रेऽनुजेरवौ' इति विश्वः । तस्य विः पक्षी । गरुड इत्यर्थः । तस्य क्रमः पादविक्षेपः । सोऽनुस्मृतो येन स तथोक्तः । स्मृतगरुडमहिमा । उरग इव, नताननः सन् । व्यथते दुःखायते । 'पीडा बाधा व्यथा दुःखम्' इत्यमरः । अत्युत्कटभये दोषादिविकारा दुर्वारा इति भावः । 'सर्वतो जयमन्विच्छेत्पुत्रादिच्छेत् पराजयम्' इति न्यायादर्जुनोत्कर्षकथनं युधिष्ठिरस्य भूषणमेवेति सर्वमवदातम् ।। २४ ।।

अन्वय––कथाप्रसङ्गेन जनैरुदाहृतात् तव अभिधानात् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः सुदुःसहात् मन्त्रपदात् उरग इव नताननः व्यथते ।

हिन्दी अनुवाद––वार्त्तालाप में प्रसंगवश आप लोगों के संबंध में बात-चीत चलने पर अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करके जैसे श्रेष्ठ विषवैद्यों द्वारा उच्चारण किये गये गरुड़ और वासुकि के नामों से युक्त अत्यन्त दुःसह मन्त्र से गरुड़ के पादविक्षेप का स्मरण कर अधोमुख हो सर्प व्यथित होता है वैसे ही नीचा मुख किए हुए (दुर्योधन) दुःखित होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

English Translation:—Like a serpent, reminded of the foot-fall of the bird of Akhandalas younger brother (i.e. of Vishnu) by a single irresistible word of an incarnation containing the mention of त (तार्क्ष्य) व (वासुकि) pronounced by the experts among the snakecharmers (lit. poison doctors) he (Duryodhana) suffers drooping down his face, being reminded of the powers of Akhandala's son (Arjun) through the mention of your name in course of conversation by people.

संस्कृतभावार्थ—यथा सर्पः विषवैद्योच्चारितेन तार्क्ष्यवासुकिनामयुक्तमंत्र-पदेन गरुडवेगं स्मृत्वा भीतो भवति तथैव दुर्योधनोऽपि साशंकः संलापप्रसंगेषु युधिष्ठिरस्य नामाकर्ण्य तदानुपदमेव तस्यानुजस्यार्जुनस्य पराक्रमं विचिन्त्य चिन्तया मुखमधः कृत्वा भृशं दुःखितो भवति ।

व्याख्या—वनेचर महाराज युधिष्ठर से कहता है कि शक्तिशाली होते हुए भी दुर्योधन आप से भयभीत है। आपका नाम सुनते ही वह अर्जुन के पराक्रम की याद करके अत्यन्त व्यथित होता है, जैसे विषधर सर्प मन्त्रोच्चारण से वशीभूत होकर अतीव दुःखित होता है ।

टिप्पणी—कथाप्रसंगेन—(प्र+सञ्ज्+घञ् भावे) । कथायाः प्रसंगः तेन षष्ठीतत्पुरुषः करणे तृतीया । उरगपक्षे कथाप्रसंगो विषवैद्यः तेन । जनैः का विशेषण है। यहाँ कथाप्रसंगेन एकवचन है और 'जनैः' बहुवचन । मल्लिनाथ 'एकवचनस्य अतन्त्रत्वात् जनविशेषणम्' से इसका औचित्य सिद्ध करते हैं। वे 'कथाप्रसंगेन जनैः' को एक ही पद मानकर कहते हैं। इनाश्च ते जनाः (कर्मधारय) इनजनाः कथाप्रसंगेषु इनजनाः (सुप्सुपा) अथवा कथाप्रसंगेषुइनाः । कथाप्रसंगे-नाश्च ते जनाः (कर्मधारय) तैः अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया । 'कथाप्रसंगो वार्त्तायां विषवैद्येऽपि वाच्चवत्' इति विश्वः । उदाहृतात्—उच्चारितात् । उद्+आ+हृ +क्त कर्मणि तस्मात् । अभिधानात् का विशेषण है और उरगपक्ष में 'मन्त्र-पदात्' का विशेषण है। तव अभिधानात्—तुम्हारे नाम से (दुर्योधनपक्ष में) 'त' 'व' के कथन से सर्पपक्ष में तश्च वश्च तवौ (द्वन्द्वः) तार्क्ष्यवासुकीत्यर्थः 'नामैकदेशो नाममात्रग्रहणम्' इति न्यायात् तवयोः अभिधानं यस्मिन् तस्मात् (बहुव्रीहि) । अभि+धा+ल्युट् करणे—अभिधानम् । तव अभिधानम् तवाभि-धानम्, तस्मात् हेतौ पञ्चमी । 'आख्याह्वे अभिधानञ्च नामधेयञ्च नाम च'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यमरः। **अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः**——इन्द्र के पुत्र अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करने वाला (दुर्योधन पक्ष), इन्द्र के सूनु (अनुज) (उपेन्द्र) विष्णु तस्य विः पक्षी गरुड़ के चरण रखने का स्मरण करने वाला (सर्पपक्ष)। अनुस्मृतः आखण्डलसूनुविक्रमः येन सः (बहुव्रीहि) (दुर्योधनपक्ष) अनुस्मृतः अखण्डलसूनुविक्रमः येन सः (सर्पपक्ष)। 'आखण्डलः सहस्राक्षः' इत्यमरः। 'सूनुः पुत्रेऽनुजे रवौ' इति विश्वः। **सुदुःसहात्**——दुःखेन सह्यते इति दुर्+सह्+खल् कर्मणि दुःसहम् सु सुष्ठु अत्यधिकम् दुःसहम् तस्मात् सुदुःसहात्। **मन्त्रपदात्**——मन्त्रस्य पदं तस्मात् हेतौ पञ्चमी। अथवा मन्त्रपदं श्रुत्वा इति मंत्रपदात् 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च' इति पञ्चमी। **उरगः**——साँप। उरसा गच्छतीति उरगः——उरस्+गम्+ड कर्त्तरि। यहाँ 'उरसो लोपश्च' वार्त्तिक से उरस् का स् लुप्त हो गया है। **इव**——समान। **नताननः**——अधोमुखः। मुँह झुकाये हुए। नतम् आननं यस्य सः (बहुव्रीहि) नतः——नम्+क्त कर्त्तरि। इस श्लोक में श्लेषानुप्राणित पूर्णोपमा अलंकार है। 'सः' (उपमेय) 'उरग' उपमान, 'इव' वाचक शब्द, 'इन्द्रसूनु' के पराक्रम का स्मरण तथा 'नतानन होना' आदि साधारण धर्म होने से पूर्णोपमा है। तल्लक्षणम्——'सा पूर्णा यदि सामान्यधर्म औपम्यवाचि च। उपमेयञ्चोपमानञ्च भवेद्वाच्यम्'। 'श्लेषः स वाक्ये एकस्मिन् यत्रानेकार्थता भवेत्।' अर्थात् जहाँ एक ही वाक्य में अनेक अर्थ हों वहाँ श्लेष होता है। 'सर्वत्र जयमन्विच्छेत्पुत्रादिच्छेत् पराभवम्' इस न्याय से अर्जुन का उत्कर्षकथन युधिष्ठिर का ही उत्कर्षवर्णन है।

वाच्यपरिवर्त्तन——कथाप्रसंगेन जनैः उदाहृतात् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमेण नताननेन तेन सुदुःसहान्मत्रपदात् उरगेण इव तवाभिधानात् व्यथ्यते।

निगमयति——

दुर्योधन आपके साथ कुटिलता करना चाहता है, अतः आप शीघ्र ही उसका प्रतिकार कीजिए :——

तदाशु कर्त्तुं त्वयि जिह्ममुद्यते
विधीयतां तत्र विधेयमुत्तरम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां
प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः ।। २५ ।।

तदिति । तत्तस्मात्त्वयि जिह्मं कपटं कर्तुमुद्यते । त्वां जिघांसावित्यर्थः । तत्र तस्मिन्दुर्योधने विधेयं कर्त्तव्यमुत्तरं प्रतिक्रियाशु विधीयतां क्रियताम् । ननु कर्तव्यमपि त्वयैवोच्यतामिति चेत्तत्राह——परेति । परप्रणीतानि परोक्तानि वचांसि चिन्वतां गवेषयतां मादृशाम् वार्त्ताहारिणामित्यर्थः । गिरः प्रवृत्तिसारा वार्तामात्र-साराः खलु । 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' इत्यमरः । वार्तामात्रवादिनो वयम्, न तु कर्त्तव्यार्थोपदेशसमर्थाः । अतस्त्वयैव निर्धार्यं कार्यमिति भावः । सामान्येन विशेषसमर्थनादर्थान्तरन्यासः ।। २५ ।

अन्वय——तत् त्वयि जिह्मं कर्त्तुम् उद्यते तत्र विधेयम् उत्तरम् आशु विधीयताम् । परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां मादृशां गिरः प्रवृत्तिसाराः खलु ।

हिन्दी अनुवाद—सो आपके प्रति कुटिलता करने के लिए सन्नद्ध उस (दुर्योधन के) संबंध में ठीक उत्तर का शीघ्र ही विधान कीजिए । दूसरों के कहे हुए वचनों का संग्रह करने वाले हम जैसों की वाणी केवल वृत्तान्त का सूचक होती है ।।

English Translation:—So, in the matter of him who is about to do crookedness at you, let the proper counter measure that has to follow be quickly done. Reports (words) of those of my type who gather together the words uttered by others, are just news in substance.

संस्कृतभावार्थ——दुर्योधनः सदैव कपटक्रियासु निरतः भवन्तं जेतुमिच्छति । अतएव तस्य पराजयोपायं शीघ्रमेव विचारयतु भवान् । कथमसौ पराजितो भवेदित्यहं कथयितुमसमर्थोऽस्मि । मादृशां चराणां वचनानि सूचनामात्राणि भवन्ति । समयोचितम् अत्र किं कर्त्तव्यमिति भवन्तः एव प्रमाणम् ।

व्याख्या——किरात का कथन है कि जो कुछ मैंने दुर्योधन के राज्य में देखा उससे मेरा अनुमान है कि वह कपटाचरण द्वारा आपको जीतना चाहता है । आपको इस अवसर पर क्या करना चाहिए इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता । मेरा कार्य था आपको वास्तविक परिस्थिति से अवगत कराना; क्योंकि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम लोग तो मात्र समाचार-वाहक हैं, समयानुकूल कर्त्तव्य निर्धारित करने में आप ही समर्थ हैं।

टिप्पणी—तत्—अव्यय है। इसका अर्थ है—इसलिए, अस्मात् हेतोः। त्वयि—अधिकरणे सप्तमी। जिह्मम्—कुटिलम्। श्लोक ८ की टिप्पणी द्रष्टव्य। कर्त्तुम्—विधातुम्। कृ+तुमुन्। उद्यते—उद्+यम्+क्त कर्त्तरि उद्यतः, तस्मिन्। तत्र—दुर्योधनविषये। तत्+ङि+त्रल् स्वार्थे—तत्र। विषयाधिकरणे सप्तमी। अव्ययत्वात् विभक्तिलोपः। विधेयम्—वि+धा+यत् कर्मणि 'उत्तरम्' का विशेषण। विधातुं योग्यम्—विधेयम्। उत्तरम्—अतिशयेन उत् इति उत्तरम्; उत्+तरप् अथवा उद्+तॄ+अप् करणे=उत्तरम् तत्। उक्ते कर्मणि प्रथमा। आशु—त्वरितम्। विधीयताम्—वि+धा+लोट् ताम् कर्मणि। परप्रणीतानि—प्र+नी+क्त कर्मणि=प्रणीत। परैः प्रणीतानि (तृ० तत्पु०) प्रणीतानि में णत्व का विधान 'उपसर्गात् असमासेऽपि णोपदेशस्य' से हुआ है। उपसर्ग में प्रथमतः कारण विद्यमान होने पर पाणिनि के धातुपाठ में णोपदेश के रूप में पठित धातु के 'न' का 'ण' हो जाता है। वचांसि—वच्+असुन् कर्त्तरि अथवा कर्मणि वचस् तानि। चिन्वताम्—चि+शतृ चिन्वन्, तेषाम्। चि धातु द्विकर्मक है, पर यहाँ केवल एक ही कर्म है। मादृशाम्—मामिव एतान् पश्यन्ति जनाः, ते एते अहमिव दृश्यमाना मामिव आत्मानं पश्यन्ति इति मादृशः (अस्मद्+दृश्+क्विन् कर्मकर्त्तरि) यहाँ प्रकृति मादृश है। 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' सूत्र से एकवचन में अस्मद् के स्थान पर मत् हो गया है। त्यदादि उपपद होने पर अज्ञानार्थक अर्थात् दर्शन अर्थ न होने पर दृश् धातु से कञ् और क्विन् होता है—'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च' सूत्र से क्विन् हुआ। अब मादृश् में 'आ सर्वनाम्नः' से 'मा' का 'आ' आदेश हो गया। इस प्रकार 'मादृशाम्' का रूप षष्ठी बहुवचन में होता है। कञ् प्रत्यय लगने पर 'मादृश' और क्स प्रत्यय लगने पर 'मादृक्ष' रूप बनेगा। गिरः—गीर्यंते इति गिर् (गॄ+क्विप् कर्मणि)। प्रवृत्तिसाराः—(प्र+वृत्+क्तिन् भावे प्रवृत्ति) सृ+घञ् भावे सारः—प्रवृत्तिः सारो यासाम् ताः। मल्लिनाथ ने प्रवृत्ति का 'वार्त्ता' अर्थ किया है 'वार्त्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' इत्यमरः। पर यह अर्थ वचांसि के द्वारा पहले व्यक्त किया जा चुका है, अतः प्रवृत्ति=प्रवर्त्तन होना चाहिए। 'प्रवृत्तिस्तु प्रवाहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्यात् उदन्ते च प्रवर्त्तने' इति मेदिनी। 'सारो बले स्थिरांशे च' इत्यमरः। 'युक्तं विधेयं समयोचितं च परिकीर्त्तितम्' इति कोषः। खलु—यह अव्यय अनेक अर्थों में आता है। यहाँ यह नियम के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'खलु इति निषेधवाक्यालंकारजिज्ञासानुनयनियमहेतुविषादेषु' इति वर्धमानः। अलंकार— यहाँ सामान्य से विशेष का समर्थनरूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है॥ २५॥

वाच्यपरिवर्त्तन—तत् त्वयि जिह्मां कर्त्तुम् उद्यते तत्रविधेयम् उत्तरम् विधेहि। परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां मादृशां गीर्भिः प्रवृत्तिसाराभिभूयते॥ २५॥

महाराज युधिष्ठिर ने वनेचर द्वारा कहा हुआ समाचार अपने भाइयों तथा द्रौपदी को सुनाया—

इतीरयित्वा गिरमात्तसत्क्रिये
गतेऽथ पत्यौ वनसन्निवासिनाम्।
प्रविश्य कृष्णासदनं महीभुजा
तदाचचक्षेऽनुजसन्निधौ वचः॥ २६॥

इतीति। वनसन्निवासिनां पत्यौ वनेचराधिप इति गिरमीरयित्वोक्त्वाऽऽत्तसत्क्रिये गृहीतपारितोषिके गते सति। 'तुष्टिदानमेव चाराणां हि वेतनम्। ते हि तल्लोभात्स्वामिकार्येष्वतीव त्वरयन्ते' इति नीतिवाक्यामृते। अथ महीभुजा राज्ञा कृष्णासदनं द्रौपदीभवनं प्रविश्यानुजसन्निधौ तद्वनेचरोक्तम् वचो वाक्यमाचचक्ष आख्यातम्। अथवा कृष्णेति पदच्छेदः। सदनं प्रविश्यानुजसन्निधौ तद्वचः कृष्णाऽऽचचक्ष आख्याता। चक्षिङो दुहादेर्द्विकर्मकत्वादप्रधाने कर्मणि लिट्॥ २६॥

अन्वय—वनसन्निवासिनां पत्यौ इति गिरम् ईरयित्वा आत्तसत्क्रिये गते (सति) अथ महीभुजा कृष्णासदनं प्रविश्य तत् वचः आचचक्षे।

हिन्दी अनुवाद—वनेचरों के स्वामी के ये बातें कहकर पारितोषिक ग्रहण कर चले जाने पर महाराज युधिष्ठिर ने द्रौपदी के भवन में प्रवेश कर छोटे भाइयों (भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव) के समक्ष उस (वनेचर की) बात को कहा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

English Translation—When the chief of the forest-dweller, having been duly honoured and having said this had gone, this speech was repeated by the king in presence of his brothers after entering (Krishna's) Draupadi's apartment.

संस्कृतभावार्थ—यदा दुर्योधनस्याखिलं वृत्तं युधिष्ठिराय निवेद्य गृहीतपारितोषिको वनेचराधिपः स्वगृहं गतः तदा युधिष्ठिरोऽपि नृपतिः द्रौपदीभवनं प्रविश्य भ्रातृणां समक्षं तदेव वनेचरसमाचारजातं व्याजहार।

व्याख्या—सरल है।

टिप्पणी—वनसन्निवासिनां पत्यौ—वने सन्निवसन्तीति वन+सम्+नि+वस्+णिनि कर्त्तरि=वनसन्निवासिनः (उपपद तत्पुरुष) तेषाम्। शेषे षष्ठी। इति गिरम्—उक्तप्रकारां वाचाम्। ईरयित्वा—उक्त्वा। ईर+णिच् (चुरादि) क्त्वा। आत्तसत्क्रिये—सत्कार ग्रहण कर चुकने पर। आङ्+दा+क्त कर्मणि स्त्रियाम्=आत्ता। सत्+कृ+श भावे सत्क्रिया, आत्ता सत्क्रिया येन सः (बहु०) तस्मिन्। 'पत्यौ' का विशेषण है। यद्यपि दा धातु से क्त प्रत्यय लगने पर 'दत्त' बनता है, किन्तु उसके पहले स्वरान्त उपसर्ग आने से 'अच उपसर्गात्तः' सूत्र से क्त प्रत्यय लगने से 'आत्त' रूप होगा। गते—याते। गम्+क्त कर्त्तरि, तस्मिन्। अथ—'अनन्तर' अर्थ में अव्यय है। मल्लिनाथ ने इसका अर्थ 'मंगल' किया है। यह मंगल वास्तव में 'युधिष्ठिर का विजय-मंगल' है। महीभुजा—अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया (विशेष द्रष्टव्य श्लोक २)। कृष्णासदनं—द्रौपदीभवनम् 'निशान्तवस्त्यसदनं भवनागारमन्दिरम्' इत्यमरः। 'पार्थिवो भूपतिर्भूपो महीभुक् क्षमापतिर्नृपः' इत्यमरः। 'धवः पतिः प्रियो भर्त्ता' इत्यमरः। प्रविश्य—अन्तर्गत्वा। प्र+विश्+ल्यप्। अनुजसन्निधौ—भ्रातृणां समक्षे। अनुजातः अनु+जन्+कर्त्तरि अनुजः। सम्+नि+धा+कि भावे सन्निधिः अनुजानां सन्निधिः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मिन्। अधिकरणे सप्तमी। 'सन्निधिः संनिकर्षणम्' इत्यमरः। तद्वचः—पूर्वोक्ताः गिरः। आचचक्षे—आख्यातेति—आ+चक्ष्+लिट् ए कर्मणि चक्ष् 'ब्रू' के अर्थ में होने से द्विकर्मक है। इसका मुख्य कर्म 'वचः' और गौण कर्म 'कृष्णा' है।

वाच्यपरिवर्त्तन—इति ईरयित्वा आत्तसत्क्रिये वनसन्निवासिनां पत्यौ गते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महीभुक् कृष्णासदनं प्रविश्य अथवा सदनं प्रविश्य अनुजसन्निधौ कृष्णां प्रति आचचक्षे ।

समाचार से क्षुब्ध होकर द्रौपदी बोली—

निशम्य सिद्धिं द्विषतामपाकृती-
स्ततस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा ।
नृपस्य मन्युव्यवसायदीपनी-
रुदाजहारद्रुपदात्मजा गिरः ॥ २७ ॥

निशम्येति । अथ द्रुपदात्मजा द्रौपदी द्विषतां सिद्धिं वृद्धिरूपां निशम्य ततस्तदनन्तरम् । ततो द्विषद्भ्य आगतास्ततस्त्याः । 'अव्ययात्त्यप्' इति त्यप् । अपाकृतीर्विकारान्विनियन्तुं निरोद्धुमक्षमा सती नृपस्य युधिष्ठिरस्य मन्युव्यवसाययोः क्रोधोद्योगयोर्दीपनीः संवर्धिनीः गिरो वाक्यान्युदाजहार जगादेत्यर्थः ॥ २७ ॥

अन्वय—ततः द्रुपदात्मजा द्विषतां सिद्धिं निशम्य ततस्त्याः अपाकृतीः विनियन्तुमक्षमा (सती) नृपस्य मन्युव्यवसायदीपनीः गिरः उदाजहार ।

हिन्दी अनुवाद—तब महाराज द्वारा द्रुपद की कन्या (द्रौपदी) ने शत्रुओं की सफलता सुनकर पश्चात् उससे उत्पन्न मनोविकारों को रोकने में असमर्थ होती हुई महाराज युधिष्ठर के क्रोध और उद्योग को उद्दीप्त करने वाले वचन बोली ।

English Translation—Then the daughter of Drupada (Draupadi) having heard of the success of her enemies, being unable to check her perturbations (unable to bear the mortification she felt) aroused thereby, spoke words to excite the king's anger and enterprise.

संस्कृतभावार्थ—ततः युधिष्ठिरकथनानन्तरं शत्रोः इष्टलाभमाकर्ण्य ततो जातामर्षक्षुब्धा द्रौपदी शीघ्रमेव प्रतिकर्त्तुमिच्छन्ती राज्ञः क्रोधोद्योगसंवर्द्धिनीः वाचः व्याजहार ।

व्याख्या—शत्रु दुर्योधन की सिद्धि के समाचार सुनकर द्रौपदी का हृदय प्रतिहिंसा की भावना से उद्दीप्त हो उठा । अपने प्रति किये गये अपकारों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्मरण कर वह मनोविकारों को न रोक सकी और महाराज युधिष्ठिर की क्रोधाग्नि को भड़काने वाली बात कही ।

टिप्पणी—'ततः' इस शब्द को अन्वय में सर्वप्रथम आना चाहिए यद्यपि यह मल्लिनाथ के विपरीत है । उन्होंने इसे मध्य में रखा है । द्रुपदात्मजा—आत्मनो जाता इत्यात्मजा (आत्मन्+जन्+ड कर्त्तरि स्त्रियाम्) । द्रुपदस्य आत्मजा (षष्ठी तत्पुरुष) 'उदाजहार' का कर्त्ता है । द्विषतां—शत्रूणां द्विषन्तीति द्विषन्तः (द्विष+शतृ कर्त्तरि) तेषाम् । शेषे षष्ठी । यहाँ 'द्विषोऽमित्रे' सूत्र से शतृ प्रत्यय लगा है । सिद्धिम्—सफलतां सिध्+क्तिन् भावे । निशम्य—सुनकर नि+शम्+ल्यप् । नि पूर्वक शम् धातु का प्रयोग दो अर्थों में होता है किन्तु रूप भिन्न-भिन्न होते हैं । यथा—सुनने के अर्थ में— 'निशम्य देवानुचरस्य वाचं मनुष्यदेवः पुनरप्युवाच' रघुवंश द्वितीय सर्ग । दूसरे देखने के अर्थ में जैसे 'निशामयतु कुमारः' मुद्राराक्षसम् अथवा 'अनुत्तममिदं तीर्थं भरद्वाज निशामय' रामायण । श्रवण के अर्थ में लट् में रूप होता है निशमयति तथा दर्शन के अर्थ में निशामयति । नि+शम् दैवादिक धातु से णिच् करके उसकी मित् संज्ञा कर देते हैं, फिर 'मितां ह्रस्वः' से ह्रस्व हो कर निशमयति रूप बनता है । किन्तु देखने के अर्थ में मित् संज्ञा नहीं होती, अतः ह्रस्व भी नहीं होता और निशामयति रूप बनता है । ततस्त्याः—तद्+भ्यस् (पंचमी)+तस् स्वार्थे ततः; तत आगता इति ततस्त्याः (ततः+त्यप्) यद्वा तद्+ङसि+स्वार्थे—ततः । शेषं पूर्ववत् । यहाँ 'त्यप्' प्रत्यय 'अव्ययात्त्यप्' सूत्र से लगा है । अपाकृतीः—अपकरणम् इति अप+आ+कृ+क्तिन् भावे—अपाकृतिः, ताः । यह अपकरण 'केशाकर्षण' आदि नहीं, अपितु सर्वथा पृथक् है । इसका अर्थ है—अन्यथाकरण (प्रकृति का अन्यथा होना) इसीलिए मल्लिनाथ ने विकारान् अर्थ किया है । विनियन्तुम्—वि+नि+यम्+तुमुन् । अक्षमा—क्षमते इति क्षम्+अच् स्त्रियाम् क्षमा, न क्षमा अक्षमा 'द्रुपदात्मजा' का विशेषण है । नृपस्य—नॄन् पातीति नृपः—नृ+पा+क कर्त्तरि तस्य—शेषे षष्ठी । मन्युव्यवसायदीपनीः—क्रोध और उद्योग की उद्दीपक । वि+अव+सो+भावे घञ्—व्यवसायः=उद्योगः । मन्युश्च व्यवसायश्च मन्युव्यवसायौ (इतरेतरद्वन्द्वः) दीपयिष्यन्ति इति दीपन्यः (दीप्+णिच्+युच्—अन,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ङीप् । मन्युव्यवसाययोः दीपन्यः इति मन्युव्यवसायदीपन्यः (ष० तत्पु०) ताः गिरः—वाचः । उदाजहार—बोली । उद्+आ+हृ+लिट्+आ ॥ २७ ॥

वाच्यपरिवर्त्तन—अक्षमया द्रुपदात्मजया नृपस्य मन्युव्यवसायदीपन्यः गिरः उदाजह्रिरे ।

शोक नियमविरुद्ध कुछ कहने के लिए बाध्य करता है—

भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं
भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम् ।
तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां
निरस्तनारीसमया दुराधयः ॥ २८ ॥

भवादृशेष्विति । भवादृशाः भवद्विधाः । पण्डिता इत्यर्थः । तेषु विषये । 'त्यदादिषु'—इत्यादिना कञ् । 'आ सर्वनाम्नः' इत्याकारादेशः । प्रमदाजनोदितं स्त्रीजनोक्तम् । वदेः क्तः । 'वचिस्वपि'—इत्यादिना सम्प्रसारणम् । अनुशासनम् नियोगवचनमधिक्षेपस्तिरस्कार इव भवति । अतो न युक्तं वक्तुमित्यर्थः । तथापि वक्तुमनुचितत्वेऽपि निरस्तनारीसमयास्त्याजितशालीनतारूपस्त्रीसमाचाराः 'समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः । दुराधयः समयोल्लङ्घनहेतुत्वाद् दुष्टा मनोव्यथाः । 'पुंस्याधिर्मानसी व्यथा' इत्यमरः । मां वक्तुं व्यवसाययन्ति प्रेरयन्ति । न किंचिदयुक्तं दुःखितानामिति भावः ॥ २८ ॥

अन्वय—भवादृशेषु प्रमदाजनोदितम् अनुशासनम् अधिक्षेप इव भवति । तथापि निरस्तनारीसमयाः दुराधयः मां वक्तुं व्यवसाययन्ति ।

हिन्दी अनुवाद—आप जैसे लोगों के प्रति नारीजन की कही हुई बातें अपमान के समान हैं । तथापि स्त्रीजाति की शालीनता को नष्ट कर देने वाली बुरी मनोव्यथाएँ मुझे कुछ कहने के लिए बाध्य कर रही हैं ।

English Translation—The advice uttered by the womanfolk to persons like you becomes like an insult, yet the wretched pains at heart that have set aside all womenly decorum urge on me to speak.

संस्कृतभावार्थ—यद्यपि भवद्विधेषु नीतिज्ञेषु स्त्रीजनकथितम् अयुक्तमेव भवतां तिरस्काररूपं च भवति । तथापि शत्रुतिरस्कारजनितनोद्वेगाः मां ललना-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जनोचितां शालीनतां परित्यज्य किञ्चित् कथयितुं प्रेरयन्ति । अतो भवद्भिः क्रोधो न कर्त्तव्यः, ममेदं वचः कारणं विनैव न प्रवर्त्तते ।

व्याख्या—द्रौपदी के कहने का तात्पर्य है कि मैं अज्ञ नारी आप जैसे नीतिज्ञों को क्या उपदेश दे सकती हूँ, पर इस समय में शत्रुसम्बन्धी उत्कर्ष सुनकर तथा उनके द्वारा किये गये केशकर्षण, चीरहरणादि अपमानों को स्मरण कर अत्यन्त क्षुब्ध हूँ । ये मनोव्यथाएँ स्त्रीजनोचित शालीनता को त्याग कर मुझे कुछ कहने के लिए बाध्य कर रही हैं ।

टिप्पणी—**भवादृशेषु**—भवन्तमिव पश्यन्ति जनाः एतान् ते एते भवानिव दृश्यमाना भवन्तमिव पश्यन्ति आत्मानम् इति भवादृशाः भवद्विधाः पण्डिताः इत्यर्थः तेषु । अधिकरणे सप्तमी । भवत्+दृश्+कञ् कर्मकर्त्तरि विशेष द्रष्टव्य श्लोक २५ (मादृशाम्) । **प्रमदाजनोचितम्**—स्त्रियों द्वारा कहा गया । प्र+मद् +अप् भावे प्रमदः । 'प्रमदसम्मदौ हर्षे' प्रमद और सम्मद में हर्ष के अर्थ में अप् प्रत्यय लगता है । प्रमदः अस्ति अस्या इति प्रमदा (प्रमद+मत्वर्थीय अर्श आदिभ्यः अच् स्त्रियाम्) अथवा प्रमदं करोतीति प्रमदा प्रमद+णिच्+अच् पचादिस्त्रियाम्, 'तत्करोति तदाचष्टे' वार्तिक से णिच् हुआ । वद्+क्त कर्मणि—उदितम् । प्रमदा चासौ जनश्च (कर्मधारय) तेन उदितम् (तृ० तत्पु०) 'प्रमदा मानिनी कान्ता ललना च नितम्बिनी' । **अनुशासनम्**—कर्तव्यनिर्देश । अनुशिष्यते इति अनुशासनम् (अनु+शास्+ल्युट् भावे) 'भवति' का कर्त्ता है । **अधिक्षेप इव**—तिरस्कार की भाँति । अति+क्षिप्+घञ् भावे । 'अनुशासनम्' का उपमान । **भवति**—अस्ति । 'अधिक्षेपः समाक्षेपो व्यङ्ग्ययुक्तं वचोऽपि वा' इत्यमरः । **तथापि निरस्तनारीसमयाः**—नारी की मर्यादा को दूर कर देने वाली निर्+अस्+क्त कर्मणि निरस्त; नारीणां समयाः नारीसमयाः (षष्ठीतत्पुरुष); निरस्ताः नारीसमयाः यैस्ते (बहुव्रीहि) 'समयाः शपथाचार कालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः । **दुराधयः**—आ+धा+कि आधिः दुः दुष्टा आधयः ते (प्रादितत्पुरुष) । व्यवसाययन्ति' का कर्त्ता है । **वक्तुं**—कथयितुं । वच्+तुमुन्—व्यव+सो धातु का अणिकर्त्ता । 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्त्ता सणौ' सूत्र से कर्म हो जाता है । इस प्रकार—अहं व्यवस्यामि (अणिजन्त) दुराधयः मां व्यवसाययन्ति (णिजन्त) । **व्यवसाययन्ति**—प्रेरित करती हैं । वि+अव+सो+णिच्+लट् अन्ति । प्रेरयन्ति । 'आदेच उपदेशेऽशिति'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria; Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशित् प्रत्यय परे रहने पर ए, ऐ, ओ, औ में अन्त होने वाली धातुओं का आ अन्तादेश होता है। इस नियम से 'सो' को 'सा' हो गया, क्योंकि अशित् णिच् प्रत्यय बाद में है। तब 'शाच्छासाह्वाव्याव्येपां युक् णौ' परे होने पर शो, छो, सो, ह्वेञ्, व्येञ्, वेञ्, पा धातु को युक् आगम होता है--इस नियम से युक् (य) हुआ। तब शप् प्रत्यय का व्यवसाययन्ति रूप सम्पन्न हुआ। 'पुंस्याधिर्मानसी व्यथा' इत्यमरः। उपमालंकार--'साधर्म्यमुपमा भेदे' काव्यप्रकाश ॥ २८।

वाच्यपरिवर्त्तन--भवादृशेषु प्रमदाजनोदितेन अनुशासनेन अधिक्षेपेण इव भूयते। तथापि निरस्तनारीसमयैर्दुराधिभिरहं वक्तुं व्यवसाय्ये।

आपने जानबूझकर अपना पैतृक राज्य खो दिया है--

अखण्डमाखण्डलतुल्यधामभि-
श्चिरं धृता भूपतिभिः स्ववंशजैः।
त्वयात्महस्तेन मही मदच्युता
मतङ्गजेन स्रगिवापवर्जिता ॥ २९ ॥

अखण्डमिति। आखण्डलतुल्यधामभिरिन्द्रतुल्यप्रभावैः 'धाम रश्मौ गृहे देहे स्थाने जन्मप्रभावयोः' इति हैमः। स्ववंशजैः भूपतिभिर्भरतादिभिश्चिरमखण्डमविच्छिन्नं धृता मही। त्वया, मदं च्योततीति मदच्युत। क्विप्। तेन मदस्राविणा मतङ्गजेन स्रगिवात्महस्तेन स्वकरेण स्वचापलेनेत्यर्थः। अपवर्जिता परिहृता त्यक्ता। स्वदोषादेवायमनर्थागम इत्यर्थः ॥ २९ ॥

अन्वय--आखण्डलतुल्यधामभिः स्ववंशजैः भूपतिभिः चिरम् अखण्डम् धृता मही त्वया मदच्युता मतङ्गजेन स्रगिव आत्महस्तेन अपवर्जिता।

हिन्दी अनुवाद--इन्द्र के समान तेजस्वी अपने वंशोत्पन्न राजाओं द्वारा बहुत काल तक अखण्ड रूप से उपभुक्त (भोगी गई) पृथ्वी को तुमने मदवाले हाथी के द्वारा फेंकी गई माला के समान अपने हाथों ही त्याग दिया है।

English Translation—The earth had long and without break by the kings born in your family, as lustrous as Indra himself, has been flung off with your own_hands like a wreath

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

thrown away by an elephant dripping out (by its own trunk).

संस्कृतभावार्थ—त्वं तु इन्द्रतुल्यपराक्रमैः स्वपूर्वजैः शासितायाः भूमेः सम्राट् असि। परञ्च सा त्वयानवधानतया परित्यक्ता। यथा मदान्धः हस्ती शिरसि पतितं माल्यं मूढतया प्रक्षिपति तथैव वंशपरम्परागतामखिलां पृथ्वीमत्यजः इति तवैव प्रमादजनितो दोषो न तु दैवविहितः। इति द्रौपदीकथनाभिप्रायः।

व्याख्या—आपके पूर्वजों की पृथ्वी पर आपका अखण्डरूप से अधिकार है। कोई भी आपका प्रतिद्वन्द्वी नहीं बन सकता। परन्तु प्रमादवश आपने राज्य खो दिया। अपने ऊपर आई हुई सारी आपत्ति के उत्तरदायी आप ही हैं। इसमें दैव को दोष नहीं दिया जा सकता।

टिप्पणी—**आखण्डलतुल्यधामभिः**—इन्द्र के समान प्रताप वाले। आखण्डलेन तुल्य धाम येषां ते आखण्डलतुल्यधामानः (बहुव्रीहि) तैः। "भूपतिभिः" का विशेषण है। इन्द्रतुल्यप्रभावैः। **स्ववंशजैः**—स्वस्य वंशः (षष्ठीतत्पु०) तस्मिन् जाताः (स्ववंश+जन्+ड कर्त्तरि) उपपद तत्पुरुष। **भूपतिभिः**—पान्तीति पतयः (पा+डति) भुवः पतयः (षष्ठी तत्पुरुष) तैः। द्रष्टव्य श्लोक ६ अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया। **चिरम्**—अव्यय दीर्घकालपर्यन्त का अर्थ देता है। 'आखण्डलः सहस्राक्षः ऋभुक्षाः' इत्यमरः। 'चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः' इत्यमरः। 'वाच्यलिंगाः समस्तुल्यः सदृशः सदृक्षः सदृक्' इत्यमरः। "धामरश्मौ गृहे देहे स्थाने जन्मप्रभावयोः" इति हैमः। 'वंशोऽन्ववायः सन्तानः' इत्यमरः। **अखण्डम**—न खण्डः अखण्डः (नञ् तत्पुरुष) तत् यथास्यात् तथा इति अखण्डम्। **धृता**—धृ+क्त कर्मणि स्त्रियाम्। **मही**—पृथ्वी "गोत्राकुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्मावनिर्मेदिनी मही" इत्यमरः। **मदच्युता**—मतवाले मदं च्योतयतीति मदच्युत् मद्+च्यु+क्विप् कर्त्तरि उपपद तत्पुरुष, तेन। (च्युतिर् क्षरणे अकर्मक और सकर्मक दोनों है)। **मतंगजेन**—हाथी के द्वारा मतंगाज्जातः इति मतंगजः (मतङ्ग+जन्+ड कर्त्तरि) तेन। **स्रक् इव**—माल्यमिव। सृज्यते इयम् इति स्रक् (सृज्+क्विन् कर्मणि निपातनात्)। 'माल्यं मालास्रजौ' इत्यमरः। **त्वया**—अनुक्ते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्त्तरि तृतीया । आत्महस्तेन—आत्मनः हस्तः (षष्ठी तत्पु०) तेन करणे तृतीया । अपवर्जिता—परित्यक्ता—(अप+वृज्+णिच्+क्त) कर्मणि स्त्रियाम् । उक्ते कर्मणि प्रथमा । कर्तृवाच्य (Active voice) में त्वं महीम् अपवर्जितवान् और कर्मवाच्य (Passive voice) में त्वया मही अपवर्जिता । उपमालंकार—मही उपमेय है तथा स्रक् उपमान । दोनों का त्याग में सादृश्य दिखाने के कारण उपमा है ।

वाच्यपरिवर्त्तन—भूपतिभिर्धृतां महीं मदच्युत् मतंगज इव त्वमात्महस्तेन स्रजमिवापवर्जितवान् ।। २९ ।।

'स्वदोषादेवायमर्थागम' इत्युक्तम् । स च दोषः कुटिलेष्वकौटिल्यमेवेत्याह—

अपने ही अपराध से यह आपत्ति आई है । शठ के साथ सरलता का व्यवहार ही महान् दोष है । शठ के साथ तो शठता ही करनी चाहिए—

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधा-
नसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ।। ३० ।।

व्रजन्तीति । मूढधियो निर्विवेकबुद्धयस्ते पराभवं व्रजन्ति ये मायाविषु मायावत्सु विषये । 'अस्मायामेधा'—इत्यादिना विनिप्रत्ययः । मायाविनः मायावन्तः । व्रीह्यादित्वादिनिप्रत्ययः, न भवन्ति । अत्रैवार्थान्तरं न्यस्यति प्रविश्येति । शठा अपकारिणो धूर्तास्तथाविधान् कुटिलानसंवृताङ्गानवर्मितशरीरान्निशिता इषव इव प्रविश्य प्रवेशं कृत्वाऽऽत्मीया भूत्वा घ्नन्ति हि । 'आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः' इति भावः ।। ३० ।।

अन्वय—ये मायाविषु मायिनः न भवन्ति ते मूढधियः पराभवं व्रजन्ति । शठाः तथाविधान् असंवृताङ्गान् निशिता इषवः इव प्रविश्य घ्नन्ति ।। ३० ।।

हिन्दी अनुवाद—जो मायावियों के साथ मायावी नहीं बनते वे मूढ़बुद्धि पराजय को प्राप्त होते हैं । शठ लोग ऐसे व्यक्तियों में प्रवेश कर (अर्थात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके आत्मीय वनकर) उन्हें मार डालते हैं, जैसे तीक्ष्ण बाण नग्न शरीरवाले योधा के भीतर घुस कर मार डालते हैं ।

English Translation—Those deluded souls, who do not become crafty with the wily suffer defeat for, the rogues having worked their way in (i.e., having gained their confidence) kill such persons like sharp arrows killing those (who stand) with their persons unprotected.

संस्कृतभावार्थ—ये कपटिषु कपटं न विदधति प्रत्युत सारल्यमेव दर्शयन्ति ते अविवेकिनः पराजिता भवन्ति । वस्तुतः 'आर्जवम् कुटिलेषु न नीतिः' । शठेषु ऋजुव्यवहारे आचरति ते स्वजना इव दर्शयन्तः गूढरहस्यमवगत्य तान् समूलं नाशयन्ति यथा अनावृतदेहेषु वाणाः प्रविश्य घ्नन्ति । अतः 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' अन्यथा प्राणपातशंका भवतीति विशदार्थः ।

व्याख्या—सरल है ।

टिप्पणी—**मूढधियः**—मन्दवुद्धयः । ध्यायति अनया इति धीः (ध्यै+क्विप् करणे) । मुह्+क्त कर्त्तरि स्त्रियाम्+मूढा । मूढा धीः येषां ते (वहुव्रीहि) । **ते**—जनाः । **पराभवं**—परि+भू+अप् भावे तम् । 'पराभवः परिभवः पराजयः' इति । **व्रजन्ति**—गच्छन्ति व्रज्+लट् अन्ति—प्राप्नुवन्ति । **ये**—केचन जनाः । **मायाविषु**—माया अस्ति एषामिति मायाविनः (माया+विनि मत्वर्थे) तेषु । 'विषयाधिकरणे सप्तमी' । यहाँ 'अस्मायामेधास्रजोविनिः' सूत्र से विनि प्रत्यय लगा है जिसका अर्थ है मतुप् के अर्थ में विनि प्रत्यय असन्त शव्दों तथा माया, मेधा और स्रज् शव्दों के वाद लगता है । **मायिनः**—माया अस्ति एषामिति मायिनः (माया+इनि मत्वर्थे) यहाँ 'इनि' प्रत्यय मतुप् के अर्थ में 'व्रीह्यादिभ्यश्च' अर्थात् व्रीह्यादिगण के शव्दों में मतुप् के अर्थ में इनि प्रत्यय लगता है—सूत्र से लगा है । **शठाः**—धर्त्ताः । **तथाविधान्**—तादृशान् । तद्+थाल् (प्रकारवचने थाल्) तथा विधा येषां ते तान् (वहुव्रीहि) । **असंवृताङ्गान्**—अनाच्छादित अंगों वाले । सम्+वृ (क्रयादि)+क्त कर्मणि संवृतम् न संवृतम् असंवृतम् (नञ् तत्पुरुष) तादृशम् अंगं येषां ते (वहु०) तान् । **निशिताः**—तेज नि+शी+क्त कर्मणि निशताः । निष्ठा के परे रहने पर शो और छो धातुएँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकल्प से शि और छि हो जाती हैं 'शाच्छोरन्यतरस्याम्' सूत्र से । क्त प्रत्ययान्त निशाता: रूप भी विकल्प से बनेगा । यथा—'पुराणि दुर्गाणि निशातमायुधं बलानि शूराणि घनाश्च कञ्चुकाः ।' माघकाव्य प्रथम सर्ग । इषव इव=त्राण इव । प्रविश्य—प्र+विश्+ल्यप् । घ्नन्ति—व्यापादयन्ति । हन्+लट्+अन्ति । 'इषव इव' अंश में उपमालंकार है । 'जो शठ के साथ शठता नहीं करते वे पराभूत होते हैं' इस सामान्य कथन का 'तीक्ष्ण बाण अनावृत शरीर में प्रवेश कर वध कर डालते हैं' विशेष से समर्थन होता है, अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है । दोनों अलंकारों की तिलतण्डुलवत् संसृष्टि है । "कलम्बमार्गणशराः पत्री रोप इषुर्द्वयोः' इत्यमरः । 'अथ निशितक्ष्णुतशातानि तेजिते' इत्यमरः ।। ३० ।।

वाच्यपरिवर्त्तन—मूढधीभिः तैः पराभवो व्रज्यते यैः मायाविषु मायिभिर्न भूयते । शठैः तथाविधाः असंवृताङ्गा जनाः निशितैरिषुभिरिव प्रविश्य हन्यन्ते ।। ३० ।।

न च लक्ष्मीचाञ्चल्यादयमनर्थागमः, किन्तु स्वोपेक्षादोषमूलत्वादित्याशयेनाह—

लक्ष्मी की चंचलता से यह अनर्थ नहीं हुआ है, किन्तु अपनी ही उपेक्षा के दोष के कारण यह आपत्ति आई है इस आशय से द्रौपदी कहती है—

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः
कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः ।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारये-
न्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ।। ३१ ।।

गुणेति, अनुरक्तसाधनोऽनुकूलसहायवान् । उक्तं च कामन्दकीये—'उद्योगादनिवृत्तस्य ससहायस्य धीमतः । छायेवानुगता तस्य नित्यं श्रीः सहचारिणी' इति । कुलाभिमानी क्षत्रियत्वाभिमानी कुलीनत्वाभिमानी च त्वदन्यस्त्वत्तोऽन्यः 'अन्यारात्' इत्यादिना पञ्चमी । क इव नराधिपो गुणैः सन्ध्यादिभिः सौन्दर्यादिभिश्चानुरक्तामनुरागिणीं कुलजां कुलक्रमादागतां कुलीनां च मनोरमां श्रियमात्मवधूमिव स्वभार्यामिव 'वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च' इत्यमरः । परैः शत्रुभिरन्यैश्चापहारयेत् । स्वयमेवापहारं कारयेदित्यर्थः । कलत्रापहारवल्लक्ष्म्यपहारोऽपि राज्ञां मानहानिकरत्वादनुपेक्षणीय इति भावः ।। ३१ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वय—अनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी नराधिपः त्वदन्यः कः इव गुणानुरक्तां कुलजां मनोरमाम् आत्मवधूम् इव श्रियम् परैः अपहारयेत् ।। ३१ ।।

हिन्दी अनुवाद—अनुकूल साधनों वाला, कुलाभिमानी तुम्हारे अतिरिक्त और कौन राजा गुणों पर रीझी हुई, कुलीन एवं मन को रमाने वाली अपनी प्रियतमा के समान राजलक्ष्मी को शत्रुओं से अपहृत करायेगा ।

English Translation—Which king, other than you, priding on his lineage and having favourable means would allow his kingdom to be abducted by his enemies his lineal like his highborn wife, his heart's delight the one attached through statecraft and the other attached on account of his personal merits.

संस्कृतभावार्थ—इह जगति त्वदन्यः न कोऽपि एतादृक् विवेकशून्यो दृश्यते यस्त्वं सुकुलोत्पन्नां मनोऽनुकूलां मादृशीं गृहिणीमिव वंशक्रमागतां राज्यलक्ष्मीमत्यजः इति धर्मराजं युधिष्ठिरं विगर्हयन्ती द्रुपदात्मजा समाक्षिपति ।

व्याख्या—इस श्लोक में उस द्यूतक्रीड़ा की ओर संकेत प्रतीत होता है, जिसमें युधिष्ठिर अपने राज्य और स्त्री को भी दाँव पर लगा कर हार गये थे। प्रिंसिपल शारदा रञ्जन रे के अनुसार इस श्लोक में प्रयुक्त (श्री) वास्तव में राजा और द्रौपदी स्वयं है। 'आत्मवधूमिव श्रियम्' का अर्थ है आत्मवधूं श्रियं च। श्री तो पैतृक (परम्परागत) है और वधू कुलीन है इसलिए 'कुलजाम्' शब्द का प्रयोग उपयुक्त है। 'श्री' सन्धि-विग्रहादि गुणों के समुचित प्रयोग द्वारा अनुरक्त है और (वधू) सुन्दरता, शील आदि गुणों के कारण। अतः 'गुणानुरक्ताम्' पद प्रयुक्त हुआ है। इसलिए श्री और वधू दोनों मन को प्रसन्न करने वाली (मनोरमा) हैं। द्रौपदी के कहने का तात्पर्य है कि युधिष्ठिर ने दोनों का अपहरण शत्रुओं द्वारा करा दिया। दाँव पर लगाने से उनकी रक्षा करने में वे सचमुच ही असमर्थ थे, किन्तु कुलाभिमानी होने के कारण वीर क्षत्रिय की भाँति द्यूतक्रीड़ा के पश्चात् वे शत्रुओं पर आक्रमण कर सकते थे; क्योंकि सेना तथा अन्य अधिकारीगण उनके अनुकूल थे। फिर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्या स्त्री हार जाना शुद्ध और पवित्र भरतवंश के लिए कलंक नहीं था और किसी भी प्रकार उसे दूर करना उनका कर्त्तव्य नहीं था ? मल्लिनाथ का कथन है "कलत्रापहारवत् लक्ष्म्यपहारोऽपि राज्ञो मानहानिकरत्वात् अनुपेक्षणीय" इति भावः। अर्थात् वधू के अपहरण के समान राज्यलक्ष्मी के अपहरण से राजा की प्रतिष्ठा में धक्का लगता है। अतः यह किसी प्रकार क्षम्य नहीं है; यह तो डूब मरने की बात है।

टिप्पणी—गुणानुरक्ताम्—गुणैः सन्ध्यादिभिः सौन्दर्यादिभिश्च अनुरक्ता (अनु+रञ्ज्+क्त कर्त्तरि स्त्रियाम्) ताम्, सुप्सुपा। 'श्रियम्' और 'आत्मवधूम्' दोनों का विशेषण है। अनुरक्तसाधनः—अनुरक्त सहायकों वाला। साधयति अनेन इति अर्थात् साध्+णिच् अथवा सिध् (दिवादि)+णिच्+ल्युट् करणे—साधनम्। द्रष्टव्य—'सर्वं हि साधनमिदं कुसुमायुधस्य' ऋतुसंहार। यहाँ सिध् (दिवादि) में 'सिध्यतेरपारलौकिके' सूत्र से आत्व होगा। अनुरक्तं साधनं यस्य सः (बहुव्रीहि)। कुलाभिमानी—कुलस्य अभिमानः (अभि+मन्+घञ् भावे) (षष्ठी तत्पुरुष) सः अस्ति अस्येति कुलाभिमानी (कुलाभिमान+इनि मत्वर्थे)। यहाँ श्री के पक्ष में कुल का अभिप्राय क्षत्रियकुल और वधू के पक्ष में सुकुल है। कुलजाम्—कुलात् कुले वा जाता इति कुलजा (कुल+जन्+ड कर्त्तरि स्त्रियाम्) ताम् (उपपद तत्पु०)। 'श्रियम्' और 'आत्मवधूम्' दोनों का विशेषण है। 'निवर्त्तनोपकरणानुव्रज्यासु च साधनम्' इत्यमरः। नराधिपः—अधिपातीति अधिपः (अधि+पा+क कर्त्तरि)। नराणाम् अधिपाः (तत्पुरुष)। परैः—मल्लिनाथ ने श्रीपक्ष में 'शत्रुभिः' और वधूपक्ष में 'अन्यैः' अर्थ किया है। वस्तुतः इसका अर्थ दोनों पक्षों में शत्रु ही है। त्वत्—में 'अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' सूत्र से अन्य के योग में पंचमी हुई है। क इव—इव के साथ कः व्यग्रता विरोध आदि सूचित करता है। इसका अर्थ होगा 'कोई नहीं'—द्रष्टव्य—'विना सीतादेव्याः किमिव हि न दुःखं रघुपतेः'—उत्तररामचरित; 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' शाकुन्तलम्। अपहारयेत्—अपहृत करायेगा अप+हृ+णिच्+लिङ्+यात्। मनोरमाम्—रमयतीति रमा (रम्+णिच्+अच् पचादि कर्त्तरि स्त्रियाम्) मनसो रमा (षष्ठी तत्पुरुष)। आत्मवधूम्—आत्मनः वधूः ताम् (षष्ठी तत्पुरुष)। इव—उपमार्थे। रे महाशय के अनुसार समुच्चयार्थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्णोपमालंकार--वधू और श्री में साधर्म्य है। इव वाचक शब्द है। उपमान और उपमेय का भी उल्लेख किया गया है, अतः पूर्णोपमा हुई। 'अधिभूर्नायको नेता प्रभुः परिवृढोऽधिपः' इत्यमरः। 'वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च' इत्यमरः। 'लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया' इत्यमरः।

वाच्यपरिवर्त्तन--अनुरक्तसाधनेन कुलाभिमानिना नराधिपेन त्वदन्येन केन इव गुणानुरक्ता कुलजा मनोरमा आत्मवधूरिव श्रीः परैरपहार्येत ॥ ३१ ॥

अथ दशभिः कोपोद्दीपनं करोति--

अब आगे के दस श्लोकों द्वारा क्रोधाग्नि को उद्दीप्त कर रही है--

भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते
विवर्तमानं नरदेववर्त्मनि।
कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः
शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः ॥ ३२ ॥

भवन्तमिति। हे नरदेव नरेन्द्र एतर्हीदानीम्, अस्मिन्नापत्कालेऽपीत्यर्थः। 'एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा' इत्यमरः। 'इदमो र्हिल्' इति र्हिल्प्रत्ययः। 'एतेतौ रथोः' इत्येतादेशः। आपदमेवाह—मनस्विगर्हिते शूरजनजुगुप्सिते वर्त्मनि मार्गे विवर्तमानम्। शत्रुकृतां दुर्दशामनुभवन्तमित्यर्थः। भवन्तं त्वामुदीरित उद्दीपितो मन्युः क्रोधः। शुष्कं नीरसम्। 'शुषः कः' इति निष्ठातकारस्य ककारः। शमी चासौ तरुश्चेति विशेषणसमासः। तम्। शमीग्रहणं शीघ्रज्वलनस्वभावात्कृतम्। उच्छिखः उद्गतज्वालः। 'घृणिज्वाले अपि शिखे' इत्यमरः। वह्निरिव कथं न ज्वलयति। ज्वलयितुमुचितमित्यर्थः। 'मितां ह्रस्वः' इति ह्रस्वः ॥ ३२ ॥

अन्वय--(हे) नरदेव एतर्हि मनस्विगर्हिते वर्त्मनि विवर्तमानं भवन्तम् उदीरितः मन्युः शुष्कं शमीतरुम् उच्छिखः अग्निरिव कथं न ज्वलयति।

हिन्दी अनुवाद--हे मनुष्यों में देवता, इस समय वीरों के घृणित माग में स्थित हुए आपको उद्दीप्त क्रोध क्यों नहीं प्रज्वलित कर देता, जैसे उठती लपट शुष्क शमी के वृक्ष को (जला देती है)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

English Translation—O God among men, how does not your anger roused, now burn you, following a path denounced by the high spirited, like fire playing up does the dry shami tree.

संस्कृतभावार्थ—यथाऽग्निः शमीतरुस्थितस्तद्वृक्षम् उच्छिखो भूत्वा भस्मसात्करोति तथैव मनस्विनिन्दिते पथि वर्तमानः शत्रुकृतापकारं सहमानः कथं न क्रोधेनारिं ज्वलयतीत्यहो महदाश्चर्यम् ।

व्याख्या—द्रौपदी युधिष्ठिर से कह रही है कि आप मनस्वियों द्वारा विगर्हित मार्ग पर चल रहे हैं । इसका कारण यही है कि शत्रुओं ने कपट से तुम्हारे ऊपर विजय पाई है । तुम्हारा शरीर शमीवृक्ष के समान शुद्ध है । जैसे शमीवृक्ष के गर्भ में अग्नि रहती है वैसे ही तुम्हारे हृदय में शत्रुकृतापमानजनित क्रोध है । जैसे अग्नि शमीवृक्ष को भस्म कर देती है वैसे ही अब तुम्हें क्रोधोद्दीप्त होना चाहिए ।

टिप्पणी—**नरदेव**—नाराणां देवः अथवा नरेषु देवः (सुप्सुपा०) तत्सम्बुद्धौ अथवा नरो देव इव (उपमितकर्मधारय) । प्रथम पक्ष में शेषे षष्ठी होगी, निर्धारणे नहीं क्योंकि निर्धारणे षष्ठी का समास नहीं होता । **एर्तांह**—अस्मिन् काले इति इदम्+ङि (सप्तमी) र्हिल् स्वार्थे=एत+ङि+र्हिल्=एर्तांह । यह 'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' सूत्र से अव्यय हो गया है । इसमें 'इदमोर्हिल्' (समयवाची इदम् शब्द के बाद र्हिल् प्रत्यय आता है । इस सूत्र से र्हिल् लगा है और इदम् के स्थान पर 'एतेतौ रथोः' सूत्र से एत हो गया । कलाधिकरणे सप्तमी । 'एर्तांह सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा' इत्यमरः । **मनस्विर्गाहिते**—मनस्वी जनों से निन्दित—प्रशस्तं मनः अस्ति एषामिति मनस्विनः तैः गर्हिते (गर्ह् निन्दायाम्+क्त कर्मणि) तृतीया तत्पुरुष । **वर्त्मनि**—अध्वनि । 'अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः' इत्यमरः । **विवर्तमानम्**=संस्थितम् । वि+वृत्+शानच् कर्तरि—विवर्तते इति विवर्तमानः तम् । **भवन्तम्**—भा+डवतु भवत् तम् । **उदीरितः**—उद्+ईर्+णिच् (चुरादिः)+क्त कर्त्तरि । 'मन्युः' और 'अग्निः' दोनों का विशेषण है । **मन्युः**—कोपः 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः । **शुष्कं**—शुष्+क्त+सु । 'शुषःकः' शुष् के निष्ठा को कः क हो जाता है—इस सूत्र से क्त को क हो गया । **शमीतरुम्**—शमी चासौ तरुश्चेति तम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(कर्मधारय) अथवा शमीनामा तरुः शमीतरुः (शाकपार्थिवादिवत् समासः) तम् (शमीग्रहणं शीघ्रज्वलनस्वभावात्)। शमी वृक्ष के गर्भ में अग्नि निहित है तथा उसमें आग भी शीघ्र लग जाती है। द्रौपदी के कहने का आशय है कि आपके भीतर की अग्नि प्रज्वलित अग्नि की भाँति शीघ्र ही क्यों नहीं भड़क उठती। उच्छिखः—उद्गता शिखा अस्य असौ (बहुव्रीहि) 'अग्निः' का विशेषण है। अग्निः इव—वह्निरिव। कथं न ज्वलयति—ज्वल्+णिच्+लट् ति। ज्व् 'घटादयो मित्'—घटादिगण की धातुएँ मित् होती हैं—इस नियम से ज्वल की मित्संज्ञा हो गई। तब 'ज्वलह्वलनमामनुपसर्गाद्वा' इस सूत्र से मित्व विकल्प से हुआ और 'मितां ह्रस्वः'—से ज्वालि को ह्रस्व ज्वलि हो गया। 'ज्वलयति' रूप बना। ह्रस्व वैकल्पिक है, अतः 'ज्वालयति' रूप भी बनता है। किन्तु यदि इन धातुओं के पूर्व उपसर्ग हो तो नित्य ही ह्रस्व होता है जैसे 'प्रज्वलयति'। "उपसृष्टेषु नित्यं मित्वम् प्रज्वलयति" इति भट्टोजिदीक्षितः। 'घृणिज्वालेऽपि शिखे' इत्यमरः। 'अग्निर्वैश्वानरो वह्निर्वीतिहोत्रो धनञ्जयः' इत्यमरः। 'शुष्कं शमीतरुम् उच्छिखः अग्निरिव' इस अंश में उपमालंकार है ॥ ३२ ॥

वाच्यपरिवर्त्तन—हे नरदेव, एतर्हि मनस्विगर्हिते वर्त्मनि विवर्त्तमानो भवान् उदीरितेन मन्युना उच्छिखेन अग्निना शुष्कः शमीतरुरिव कथं न ज्वल्यते ॥ ३२ ॥

नन्वन्तः शत्रुत्वादयं क्रोधस्त्याज्य एवेत्याशंक्याह—

आन्तरिक शत्रु होने के कारण क्रोध से दूर ही रहना चाहिए। इसका उत्तर देते हुए द्रौपदी कहती है कि संसार में क्रोधशून्य व्यक्ति का कोई आदर नहीं है—

अबन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां
भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना
न जातहार्देन न विद्विषादरः ॥ ३३ ॥

अबन्ध्येति। अबन्ध्यः कोपो यस्य तस्याबन्ध्यकोपस्यातएवापदां विहन्तुः निग्रहानुग्रहसमर्थस्येत्यर्थः। पुंस इति शेषः। देहिनो जन्तवः स्वयमेव वश्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वशंगता भवन्ति । 'वशङ्गतः' इति यत्प्रत्ययः। अतस्त्वया कोपिना भवितव्य-मित्यर्थः । व्यतिरेके त्वनिष्टमाचष्टे—अमर्षशून्येन निःकोपेन जन्तुना । कन्यया शोक इति वत् हेतौ तृतीयः । हृदयस्य कर्म हार्दं स्नेहः 'प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेम स्नेहः' इत्यमरः । युवादित्वादण् । 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' इति हृदादेशः । जातहार्देन जातस्नेहेन सता जनस्यादरो न । विद्विषा द्विषता च सतादरो न । अमर्षहीनस्य रागद्वेषावकिञ्चित्करत्वादगण्यावित्यर्थः । अथवा विद्विषा सता दरो भयन्न । 'दरोऽस्त्रियां भये श्वभ्रे' इत्यमरः । एतस्मिन्नेव प्रयोगे सन्धिवशाद् द्विधा पदच्छेदः । पुंवाक्येषु न दोषः । अतः स्थाने कोपः कार्यस्त्याज्यस्त्वस्थाने कोप इति भावः ।। ३ ।।

अन्वय—प्रवन्ध्यकोपस्य आपदां विहन्तुः देहिनः स्वयमेव वश्या भवन्ति । अमर्षशून्येन जन्तुना जातहार्देन (सता) जनस्य आदरो न (भवति) विद्विषादरो न । (विद्विषा आदरो न मल्लि०) ।

हिन्दी अनुवाद—अव्यर्थ क्रोध वाले (जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं जाता) तथा आपत्तियों के विनाशक मनुष्य के वश में प्राणी स्वयं हो जाते हैं । (पर) क्रोधशून्य व्यक्ति के साथ स्नेह होने से लोग आदर नहीं करते और न शत्रु होने से भय ।

English Translation:—People of their own accord become submissive to one whose anger is not ineffectual and who can destroy miseries. But neither there is any regard for the friendship with one who is destitute of ire, nor fear from enmity (or a man devoid of anger commands no regard from persons becoming a friend or foe.)

संस्कृतभावार्थ—यस्य कोपोद्गमोचितकाले क्रोधो भवति यश्च शत्रूणा-मनिष्टकारकः स्वजनानां च विपत्तिविनाशकः सर्वे मनुष्यास्तस्याधीना भवन्ति यस्य च क्रोधो विफलस्तस्मात् कोऽपि न बिभेति न सः समाद्रियते । अतो भवता उचितस्थानेषु कोपः कार्यः एत्रेति द्रौपदीतात्पर्यम् ।

व्याख्या—द्रौपदी कहती है कि यह सत्य है कि क्रोध अरिषड्वर्ग में से एक है, परन्तु उसका सर्वथा परित्याग भी विधेय नहीं है । यदि मनुष्य क्रोध में असह्य है तो वह दूसरों की भय में रक्षा कर सकता है, अतः सभी लोग उसके वशीभूत हो जाते हैं । पर यदि वह शान्त है तो उसकी मैत्री अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शत्रुता की कोई परवाह नहीं करता। उसकी क्षमाशीलता का लोग दुरुपयोग करते हैं। कहा भी है कि 'मृदुर्हि परिभूयते'। अतः उचित अवसर पर क्रोध करना आवश्यक है। आपके क्रोध करने का यह उपयुक्त समय है। अब विलम्ब नहीं करना चाहिए।

टिप्पणी—अबन्ध्यकोपस्य—अमोघामर्षस्य—बन्धुं योग्य इति बन्ध्यः। बन्ध्+ण्यत् कर्मणि अथवा बन्धनं बंधः भावे घञ्। बन्धे साधुः इति बन्ध्यः (बन्ध+यत्) न बन्ध्यः इति अबन्ध्यः—अव्यर्थः नञ् तत्पुरुष। अबन्ध्यः (सफलः) कोपः (कुप्+घञ् भावे) अस्यासौ (बहुव्रीहि) तस्य। शेषे षष्ठी। **आपदाम्**—आ+पद्+क्विप् भावे (सम्पदादिवत्)—आपद् तासाम्। यहाँ 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र से कर्म में षष्ठी हुई है। **विहन्तुः**—वि+हन्+तृच् कर्तरि विहन्ता, तस्य। **देहिनः**—देहः अस्ति एषामिति देह+इनि+मत्वर्थे देहिनः 'भवन्ति' का कर्ता। स्वयमेव वश्या भवन्ति आत्मनैवाधीना जायन्ते। **वश्याः**—वश्+यत् 'वशंगतः' नियम से 'यत्' प्रत्यय लगा। **अमर्षशून्येन**—क्रोधहीनेन। मृष्+घञ्—मर्षः न मर्षः अमर्षः (नञ् तत्पुरुष) अमर्षेण शून्यः (तृ० तत्पु०) तेन। **जन्तुना**—जनेन। **जातहार्देन**—प्रेमयुक्त होने से। प्राप्तप्रेम्णा। हृदयस्य कर्म हार्दं हृदय+अण्। 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु'—लेख, लास शब्द तथा यत् और अण् प्रत्यय परे रहने पर हृदय के स्थान पर हृत् हो जाता है—इस सूत्र से हृदय को 'हृत्' हो गया। जातं हार्दम् अस्य तेन (बहुव्रीहि)। **जनस्य**—जन्तोः। **आदरो न**—आस्था न भवति। **विद्विषा**—शत्रुणा सता। **दरो न**—भयं न भवतीति। 'विद्विषा आदरः' और विद्विषा दरः दो प्रकार से पदच्छेद होता है। आ+दृ+अप्=आदरः और दृ+अप् भावे—दरः (भय)। आदरः का सम्बन्ध 'जातहार्देन' के साथ होने से जातहार्देन सता आदरो न और दरः का सम्बन्ध 'विद्विषा' से होने के कारण 'विद्विषा सता दरो न' होगा। यदि 'आदरः' को 'विद्विषा' के साथ लिया जाय तो 'विद्विषा सता आदरो न' अर्थात् शत्रु होने से उसकी अपेक्षा नहीं की जाती। 'दरोऽस्त्रियां भये श्वभ्रे' इत्यमरः। विद्विषा आदरः अथव विद्विषा दरः मल्लिनाथ ने इस सम्बन्ध में लिखा है 'एतस्मिन्नेव प्रयोगे सन्धिवशाद् द्विधा पदच्छेदः। पुंवाक्येषु न दोषः'। अर्थात् इस प्रयोग में सन्धि के कारण दो प्रकार से पदच्छेद होता है जैसा ऊपर दिया गया है, पर पुंवाक्यों में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोष नहीं होता। मल्लिनाथ ने इस 'पुंवाक्य' शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं किया है। शारदारंजन रे पुंवाक्य के 'पुं' का अर्थ पुरुष और स्त्री दोनों में लेते हैं। वास्तव में ये ठीक हैं, जैसे 'ब्राह्मे मुहूर्ते पुरुषस्त्यजेन्निद्रामतन्द्रितः' वाक्य में पुरुष का अर्थ 'स्त्री' और 'पुरुष' दोनों ही है। हितोपदेश की कहानियों में कुत्ते, बन्दर आदि मनुष्य की वाणी में बोलते हैं, पर वहाँ इस प्रकार द्विधा पदच्छेद संभव नहीं; क्योंकि पशु-पक्षियों में चमत्कारपूर्ण वाक्य बोलने की बुद्धि नहीं होती। इस प्रकार पुंवाक्य का अर्थ हुआ 'human speech' मानवी वाणी अतः पुंवाक्य का अर्थ हुआ 'भाषा' i. e., classical language-अलंकार--अनुप्रास और श्लेष।

वाच्यपरिवर्त्तन—अवन्ध्यकोपस्य आपदां विहन्तुः स्वयमेव देहिभिः वश्यैः भूयते। अमर्षशून्येन जन्तुना जातहार्देन सताऽऽदरेण न भूयते न च दरेण भूयते ॥३३॥

अब भीम के कष्ट का स्मरण दिलाकर क्रोधोद्दीपन कर रही है--

परिभ्रमँल्लोहितचन्दनोचितः
पदातिरन्तर्गिरि रेणुरूषितः।
महारथः सत्यधनस्य मानसं
दुनोति नो कच्चिदयं वृकोदरः ॥ ३४ ॥

परिभ्रमन्निति। लोहितचन्दनोचित उचितलोहितचन्दनः। 'वाहिताग्न्यादिषु' इति साधुः अभ्यस्तरक्तचन्दन इत्यर्थः। 'अभ्यस्तेऽप्युचितं न्याय्यम्' इति यादवः। महारथो रथचारी। उभयत्रापि प्रागिति शेषः। अद्य तु रेणुरूषितो धूलिच्छुरितः। पादाभ्यामतति गच्छतीति पदातिः पादचारी। 'अज्यतिभ्यां च' इत्यनुवृत्तौ 'पादे च' इत्यौणादिक इन्प्रत्ययः। 'पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु' इति पदादेशः। अन्तर्गिरि गिरिष्वन्तः। विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः। 'गिरेश्च सेनकस्य' इति विकल्पात्समासान्ताभावः। परिभ्रमन्नयं वृकोदरो भीमः। सत्यधनस्येति सोल्लुण्ठनवचनम्। अद्यापि त्वया सत्यमेव रक्ष्यते, न तु भ्रातर इति भावः। तवेति शेषः। मानसं नो दुनोति 'स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः। कच्चिन्न परितापयति। 'कच्चित्कामप्रवेदने' इत्यमरः। स्वाभिप्रायाविष्करणं कामप्रवेदनम् ॥ ३४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वय—लोहितचन्दनोचित: महारथ: रेणुरूषित: पदाति: अन्तर्गिरि परिभ्रमन् अयं वृकोदर: सत्यधनस्य (तव) मानसं नो दुनोति कच्चित् ।

हिन्दी अनुवाद—लाल चन्दन से लिप्त महारथी (किन्तु अब) धूलि से भरे हुए पैदल चलने वाले और पर्वत-पर्वत भटकते हुए ये भीमसेन सत्य के धनी आपके मन को क्या नहीं पीड़ित करते ।

English Translation:—Does this great charioteer Vrikodara who was anointed with red sandal paste, roaming on mountains on foot being powdered with dust all over, grieve the heart of him who regards truth as treasure.

संस्कृतभावार्थ—यो भीमसेन: पूर्वमभ्यस्तचन्दन: रथारूढ: सन् बभ्राम, स चाधुना धूलिधूसरितशरीर: पदातिरेव पर्वतेष्वितस्तत: विचरति । तं तथाविधमवलोक्य भवतो मनसि सन्तापो न जायते । अद्यापि त सैवान्धासत्य-परता यया भ्रातरोऽपि उपेक्ष्यन्ते ।

व्याख्या—इस श्लोक में युधिष्ठिर के बारह वर्ष वनवास तथा एक वर्ष के अज्ञातवास की ओर संकेत है । द्रौपदी का व्यंग्यपूर्वक कथन है कि अपने भाई भीम की इस दुर्दशा को देख कर भी आपका मन व्यथित नहीं होता । यदि तुम उनकी दशा पर दयार्द्र होकर शत्रुओं पर आक्रमण करोगे तो तुम्हारी प्रतिज्ञा भंग होगी । अभी बहुत समय अवशेष है । प्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिए आप अपने भाई की उपेक्षा कर रहे हैं । आपकी यह सत्यनिष्ठा धन्य है, जिसके कारण सबको कष्ट हो रहा है ।

टिप्पणी—लोहितचंदनोचित:—रक्तचंदनचर्चित: । उच्+क्त कर्मणि —उचितम् लोहितं च तत् चन्दनम् (कर्मधा०) उचितं लोहितचन्दनम् अस्यासौ (बहुव्रीहि) 'वाहिताग्न्यादिषु' 'आहिताग्न्यादिगण के शब्दों में निष्ठान्त शब्दों का पूर्वनिपातन विकल्प से होता है ।' इस सूत्र से 'उचित लोहितचन्दन:' रूप भी बनता है । 'लोहितो रोहित रक्त:' इत्यमर: । 'पाटी-रश्चन्दनोऽस्त्री च गन्धसार:' इति कोष: । 'गन्धसारो मलयजो भद्रश्रीश्चन्दनोऽ-स्त्रियाम्' इत्यमर: । 'अभ्यस्तेऽप्युचिते न्याय्यम्' इति यादव: । महारथ:—महान् रथो यस्य स: (बहुव्रीहि) । 'आन्महत: समानाधिकरणजातीययो:' सूत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से समानाधिकरण रथ शब्द परे रहने पर महत् का महा हो गया है। सूत्रार्थ --यदि बहुव्रीहि और कर्मधारय समास में समानाधिकरण शब्द अथवा जातीयर् प्रत्यय परे रहें तो महत् को आकार अन्तादेश होता है। महारथः—एकादश-सहस्राणि योधयेत् यस्तु धन्विनाम्। शस्त्रशास्त्रप्रवीणाश्च स महारथ उच्यते। अर्थात् जो एकाकी (अकेले) ही दस हजार धनुर्धारियों से युद्ध करे और शस्त्रविद्या में पारंगत हो उसे महारथी कहते हैं। रेणुरूषितः--रेणुभिः रूपितः (तृतीया तत्पुरुष) रुष्+क्त कर्त्तरि। पदातिः—पादाभ्यां अतति (गच्छति) इति पदातिः। पाद+अत्+इण्, पद आदेश (उपपद तत्पुरुष)। यही इण् प्रत्यय 'अज्यतिभ्याञ्च' और 'पादे च' इन दो उणादि सूत्रों से हुआ। किन्तु शारदा रञ्जन रे ने इञ् प्रत्यय माना है। उनके अनुसार यहाँ उणादि प्रत्यय इञ् है इण् नहीं। 'पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु' सूत्र से पाद को पदादेश हो गया। जिसका अर्थ है आजि, आति, ग, उपहत के उत्तरपद होने पर पाद का पद हो जाता है। 'पदातिपत्तिपदगपादातिकपदाजयः' इत्यमरः। 'रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः पांशुर्नाद्वयो रजः' इत्यमरः। अन्तर्गिरि--गिरिषु इत्यर्थे अन्तर्गिरि (विभक्त्यर्थे अव्ययीभावः) तत् यथा तथा। यहाँ गिरि के स्थान पर विकल्प से गिर भी हो सकता है। 'गिरेश्च सेनकस्य' सूत्र से समासान्त टच् विकल्प से होता है। सूत्रार्थ--सेनक आचार्य के मत से गिरि में समासान्त टच् प्रत्यय लगता है, अतः 'अन्तर्गिरम्' रूप भी बनता है। मल्लिनाथ ने गिरिषु अन्तः विग्रह किया है, जो उचित नहीं, क्योंकि अव्ययीभाव 'अन्तर्' और 'गिरि' से बना है, किन्तु विभक्ति के अर्थ में 'गिरिषु' सप्तम्यर्थ में अन्तर् के साथ समास होता है। फिर यह समास नित्यसमास है (अविग्रहो अस्वपदविग्रहो वा नित्यसमासः) नित्यसमास अविग्रह अथवा अस्वपदविग्रह होता है। अतः 'अन्तर्' का रहना अनपेक्षित है। संभवतः बाद में जोड़ दिया गया हो। परिभ्रमन्—परि+भ्रम् +लटः स्थाने शतृ। 'वृकोदरः' का विशेषण है। वैकल्पिक रूप परिभ्राम्यन् 'वा भ्राशम्लाशभ्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः' से बनेगा। भ्रम् (दिवादिः) से परि-भ्रम्यन् रूप होगा। अयं वृकोदरः—वृकस्योदरमिव उदरम् अस्य (षष्ठी तत्पुरुष-गर्भित बहुव्रीहि) 'सप्तम्युपमान पूर्वस्योत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः' से बहुव्रीहि समास हुआ है अथवा वृकनामा अग्निर्विद्यते उदरे यस्य सः (बहुव्रीहि) 'वात-प्रमीर्वातमृगः कोकस्त्वीहामृगो वृकः' इत्यमरः। 'पिचण्डकुक्षी जठरोदरं तुन्दम्'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यमरः। सात्यधनस्य—सत्यप्रतिज्ञस्य तव—द्रौपदी का युधिष्ठिर के प्रति व्यंग्य है कि तुम बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष अज्ञातवास की प्रतिज्ञा पूरी करो और तुम्हारे भाई इस प्रकार अनेक कष्ट उठावें—सत्यं धनम् अस्य (बहुव्रीहि)। मानसम्—मनः एव मानसम् (स्वार्थे अण्) तत्, मनस्+अण्। नो—निषेधाथक अव्यय। कच्चित्—'कच्चित्कामप्रवेदने' इत्यमरः। कामप्रवेदन का अर्थ है अपने अभिप्राय को प्रकाशित करना। यहाँ 'वृकोदरः मानसं न दुनोति' यह द्रौपदी का तात्पर्य है और 'कच्चित्' से उसका प्रकाशन होता है। दुनोति—दु (उपपाते) स्वादि+लट् ति। दु—गतौ+क्त—दूनः, दु—उपतापे +क्त—दुतः द्रष्टव्य 'मृदुतया दुतया' माघकाव्य ॥ ३४ ॥

वाच्यपरिवर्त्तन—लोहितचन्दनोचितेन महारथेन पदातिना रेणुरूषितेन अन्तर्गिरि परिभ्रमता अनेन वृकोदरेण सत्यधनस्य तव मानसं कच्चित् नो दूयते।

आपके कारण इन्द्रतुल्य पराक्रमी अर्जुन की क्या दशा हो रही है, वह देखिए—

विजित्य यः प्राज्यमयच्छदुत्तरान्
कुरूनकुप्यं वसुवासवोपमः।
स वल्कवासांसि तवाधुनाहरन्
करोति मन्युं न कथं धनञ्जयः॥ ३५॥

विजित्येति—वासव इन्द्र उपमा उपमानं यस्य स वासवोपमः इन्द्रतुल्यो यो धनञ्जयः उत्तरान्कुरून्मेरोरुत्तरान्मानुषान्देशविशेषान्विजित्य प्राज्यं प्रभूतम्, 'प्रभूतं प्रचुरं प्राज्यम्' इत्यमरः। कुप्यादन्यदकुप्यं हेमरूप्यात्मकम्। 'स्यात्कोशश्च हिरण्यञ्च हेमरूप्ये कृताकृते। ताभ्यां यदन्यत्तत्कुप्यम्' इत्यमरः। वसु धन-मयच्छद्दत्तवान्। 'पाघ्रा'—इत्यादिना दाणो यच्छादेशः। स धनं जयतीति धनञ्जयोऽर्जुनः। 'संज्ञायां भृतृवृजि'—इत्यादिना खच्प्रत्ययः। 'अरुर्द्विषत्'—इत्यादिना मुमागमः। अधुनास्मिन्काले। 'अधुना' इति निपातनात्साधुः। तव वल्कलवासांस्याहरन् कथं मन्युं क्रोधं दुःखं वा न करोति॥ ३५॥

अन्वय—वासवोपमः यः धनञ्जयः उत्तरान् कुरून विजित्य प्राज्यम अकुप्यम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसु अयच्छत् स अधुना तव वल्कवासांसि आहरन् कथं (तव) मन्युं न करोति ।। ३५ ।।

हिन्दी अनुवाद—इन्द्र की उपमा वाले जिस अर्जुन ने उत्तर कुरुदेश को जीतकर प्रभूत सोना-चाँदी रूपी धन (आपको) दिया था, वह अब आप के लिए वल्कलवस्त्र संग्रह करते हुए (आपके) क्रोध को कैसे नहीं उद्दीप्त करते ।

English Translation—How does not Dhananjaya, comparable to Vasava, who having conquered the Uttara Kuru, brought you copious wealth consisting of no base metal (i. e., of gold and silver) now gathering bark garment for you arouse your anger.

संस्कृतभावार्थ—यो धनञ्जयः उत्तरान् कुरून् विजित्य प्रभूतं धनं भवते दत्तवान्, तमधुना तवार्थे वल्कलवस्त्रमाहरन्नवलोक्यापि तव क्षात्रं तेजः कथं नोद्दीप्तं भवति ।

व्याख्या—जिस अर्जुन ने अपने पराक्रम द्वारा उत्तर कुरु प्रदेश को जीत लिया था जिसमें दक्षिण कुरु को भी जीतने की सामर्थ्य है, केवल आपका आदेश अपेक्षित है, उसे वल्कलवस्त्रों को संग्रह करते देख कर भी आपके मन में क्षोभ अथवा क्रोध नहीं उत्पन्न होता, यह बड़े आश्चर्य की बात है ।

टिप्पणी—वासवोपमः—इन्द्रतुल्यः । उप+मा+अङ भावे । वासवः उपमा यस्य सः वासवोपमः (बहुव्रीहि) 'सुत्रामा गोत्रभिद्वज्री वासवो वृत्रहा वृषा' इत्यमरः । 'धनञ्जय' का विशेषण है 'आतश्चोपसर्गे'—उपसर्गपूर्वक आकारान्त धातुओं में अङ प्रत्यय लगता है पर कर्तृवाच्य में नहीं—सूत्र से उपमा में अङ प्रत्यय लगा है । धनञ्जयः—धनं जयतीति धनञ्जयः धन+जि+खच् कर्त्तरि । यहाँ पहले नाम सूचित करने के लिए जि धातु से खच् प्रत्यय हुआ 'संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः' अर्थात् संज्ञा सूचित करने के लिए इन धातुओं में खच् प्रत्यय लगता है । फिर 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्'—सूत्र से धन के बाद खच् प्रत्ययान्त जय शब्द के उत्तर पद होने के कारण 'मुम्' हो गया है । यदि खच् (प्रत्यय) अन्त वाले उत्तर पद परे हो तो अरुस्, द्विषत् और अजन्त शब्दों के बाद 'मुम्' का आगम हो जाता है । यहाँ धनञ्जय शब्द का प्रयोग अत्यन्त उपयुक्त है । उत्तरकुरु को जीतने के पश्चात् अर्जुन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस नाम से अभिहित हुए। इससे यह संकेत भी मिलता है कि दक्षिण कुरु के विजय में समर्थ हैं, केवल महाराज युधिष्ठिर को आज्ञा देने भर की देर है। उत्तरान् कुरून्—उत्तर कुरु देश को। दुर्योधन के राज्य से विभिन्नता प्रदर्शित करने के लिए यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। मेरु से उत्तर में देशविशेष का नाम है। इस विभिन्नता से यह ध्वनि निकलती है कि जो अर्जुन उत्तरकुरु को जीत सकता है वह दक्षिण को भी जीतने में समर्थ है। धर्मराज युधिष्ठिर का ध्यान आकृष्ट करने के लिए बहुवचन का प्रयोग किया गया है। विजित्य—जीत-कर। वि+जि+ल्यप् 'ह्रस्वस्य पिति किति तुक्' सूत्र से तुक् का आगम हुआ है। प्राज्यम्—प्रभूतम् प्राजीयते इति प्राज्यम् (प्र+अज् (गतौ) भ्वादिः+ण्यत् कर्मणि) अथवा प्रकर्षेण अज्यते काम्यते इति प्र+अज्+क्यप् कर्मणि तत्, 'वसु' का विशेषण है। द्रष्टव्य—युगपद् युगबाहुभ्यः प्राप्तेभ्यः प्राज्यविक्रमाः (कुमारसंभव द्वितीय)। अकुप्यम्—सुवर्णरजत रूप। गुप्यते रक्ष्यते इति गुप्+क्यप् कर्मणि निपातनात् कुप्यम्, न कुप्यम् अकुप्यम् (नञ् तत्पुरुष) 'स्यात् कोशश्च हिरण्यं च हेमरूप्ये कृताकृते। ताभ्यां यदन्यत्तत्कुप्यम् रूप्य तद् द्वयमाहतम्' इत्यमरः। वसु—धनम्। 'द्रव्यं वित्तं रिक्थमृक्थं धनं वसुः' इत्यमरः। अयच्छत्—दाण्+लङ—ति। 'पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्ति-सर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः' सूत्र से दाण् के स्थान पर यच्छ का आदेश हुआ है। लट्, लोट्, लङ और विधिलिङ में इस सूत्र से दाण् के स्थान पर यच्छ होता है। सः—अर्जुनः। अधुना—सम्प्रति, अब। अस्मिन् काले इति इदम्+ङि+धुना स्वार्थे। 'इदम्' में धुना प्रत्यय का प्रयोग 'अधुना' सूत्र से निपातन द्वारा सप्तमी विभक्ति में समयसूचनार्थ हुआ है। आहरणक्रिया का अधिकरण है। वाल्कवासांसि—वस्यते आच्छाद्यते अनेनेति वस्+असुन् करणे—वासस्, वल्कलानि एव वासांसि तानि (कर्मधारय), आहरन् का कर्म है। 'त्वक् स्त्री वल्कं वल्कलमस्त्रियाम्' इत्यमरः। आहरन्—आ+हृ+शतृ कर्त्तरि—लाते हुए। कथं—प्रश्नवाचक अव्यय। तव—शेषे षष्ठी। मन्युं न करोति—क्रोधं नोत्पादयति।

अलंकार—छेक, वृत्ति और श्रुति अनुप्रासों की संसृष्टि ॥ ३५ ॥

वाच्यपरिवर्त्तन—वासवोपमेन येन धनञ्जयेन उत्तरान् कुरून् विजित्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राज्यमकुप्यं वसु अदीयत । तेन (धनञ्जयेन) अधुना वल्कवासांसि आहरता तव मन्युः कथं न क्रियते ।। ३५ ।।

नकुल और सहदेव के बाल बड़े-बड़े हो गये हैं तथा कठोर चट्टान पर लेटने के कारण उनका शरीर कर्कश हो गया है—

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती
कचाचितौ विष्वगिवागजौगजौ ।
कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ
विलोकयन्नुत्सहसे न बाधितुम् ।। ३६।।

वनान्तेति—वनान्तो वनभूमिरेव शय्या तया कठिनीकृताकृती कठिनीकृत-देहौ 'आकारो देह आकृतिः' इति वैजयन्ती । विष्वक्समन्ता (समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि' इत्यमरः । कचाचितौ कचव्याप्तौ । विशीर्णकेशावित्यर्थः । अतएवागजौ गिरिसंभवौ गजाविव स्थितावेतौ । माद्रीपुत्रावित्यर्थः । 'यमो दण्डधरे ध्वाङ्क्षे संयमे यमजेऽपि च' इति विश्वः । विलोकयंस्त्वं धृतिसंयमौ सन्तोषनियमौ । 'धृतिर्योगान्तरे धैर्ये धारणाध्वरतुष्टिषु' इति विश्वः । बाधितुं नोत्सहसे न प्रवर्तसे । 'शकधृष्'—इत्यादिना तुमुन् । अहो—ते महद्धैर्यमिति भावः ।। ३६ ।।

अन्वय—वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती विष्वक् कचाचितौ अगजौ गजौ इव एतौ यमौ विलोकयन् त्वं कथं धृतिसंयमौ बाधितुं न उत्सहसे ।। ३६ ।।

हिन्दी अनुवाद—वनप्रदेश में (अनावृत) भूमि पर सोने के कारण कठोर हुए शरीर वाले, चारों ओर बालों से व्याप्त, पर्वत के हाथियों के समान इन दोनों यमजों (नकुल, सहदेव) को देखते हुए आप धैर्य और संयम छोड़ने के लिए क्यों नहीं साहस करते ।

English Translation:—Why do you not feel encourageous to give up your patience and restraint seeing these twins covered all over with hair like a pair of hill born elephants and with their forms rendered hard by their bed of the forest place.

संस्कृतभावार्थ—सुकोमलतनू युग्मजौ नकुलसहदेवौ भूमिशयनात्कर्कश-शरीरे केशपरिव्याप्तौ दृष्ट्वापि त्वं धैर्यसंयमौ नात्याक्षीरित्यहो महद्धाश्चर्यम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या—सरल है।

टिप्पणी—वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती—वन-भाग में शय्या के कारण कठोर आकृति वाले। वनस्यान्तः इति वनान्तः (ष० तत्पु०) वनान्ते शय्या इति सुप्सुपा अथवा वनान्त एव शय्या (कर्मधारय)। अकठिना कठिना कृता इति कठिनीकृता (कठिना+च्वि अभूततद्भावे+कृ+क्त कर्मणि स्त्रियाम्) वनान्तशय्या कठिनीकृता (तृ० तत्पु०) तादृशी आकृतिः ययोः तौ (बहुव्रीहि)। **विष्वग्**—सर्वतः। विषु अंचति इति विषु+अञ्च्+क्विन्। 'चोः कुः' नियम से च् का क् हो गया। विष्वग् अव्युत्पन्न प्रातिपदिक अव्यय सर्वतोभाव के अर्थ में। 'वावसाने'—सूत्र से ग् का क् हो गया और फिर 'झलां जशोऽन्ते' सूत्र से क् को ग् हो गया। 'समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि' इत्यमरः। 'अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्' इत्यमरः। 'शयनं मञ्चपर्यङ्कपल्यङ्काः खट्वया समाः' इत्यमरः। **कचाचितौ**—केशव्याप्तौ। कचैः आचितौ (आ+चि+क्त कर्मणि) (तृ० तत्पु०) 'चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः' इत्यमरः। **अगजौ**—पर्वतीयौ। न गच्छतीति अगः (नञ्+गम्+ड कर्त्तरि)। अगे अगात् वा जातौ इति अगजौ (अग+जन्+ड कर्त्तरि)। **गजौ इव**—हस्तिनौ इव। **एतौ यमौ**—इमौ सहजातौ नकुलसहदेवौ। 'यमो दण्डधरे ध्वाङ्क्षे संयमे यमजेऽपि च' इत्यमरः। 'शैलवृक्षौ नगावगौ' 'मतंगजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी' इत्यमरः। **विलोकयन्**—वि+लोक्+णिच् (चुरादि) शतृ कर्त्तरि। **धृतिसंयमौ**—धृतिश्च संयमश्चेति तौ (द्वन्द्व)। **संयम**—सम्+यम्+अप् भावे। धृ+क्तिन् भावे—धृतिः। 'धृतिर्योगान्तरे धैर्ये धारणाध्वरतुष्टिषु' इत्यमरः। **बाधितुं**—बाध्+तुमुन्। **न उत्सहसे**—प्रवृत्त नहीं होते। उद्+सह+लट् से। बाध् में तुमुन् प्रत्यय 'शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्' सूत्र से लगा है। 'अगजौ गजौ' और 'धृतिसंयमौ यमौ' में यमक 'कृताकृती' में छेकानुप्रास अलंकार है। विष्वग्—द्रष्टव्य 'विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि'—भवभूति ॥ ३६ ॥

वाच्यपरिवर्त्तन—...एतौ यमौ विलोकयता त्वया कथं धृतिसंयमौ बाधितुं न उत्सह्यते।

अथ राज्ञो दुर्दशां दर्शयितुमुपोद्घातमाह—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब युधिष्ठिर की दुर्दशा का वर्णन करती हुई द्रौपदी कहती है—

इमामहं वेद न तावकीं धियं
विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः ।
विचिन्तयन्त्या भवदापदां परां
रुजन्ति चेतः प्रसभं ममाधयः ॥३७॥

इमामिति । इमां वर्त्तमानाम् । तवेमां तावकीं त्वदीयाम् । 'तस्येदम्' इत्यण् प्रत्ययः । 'तवकममकावेकवचने' इति तवकादेशः । धियं त्वदापद्विषयां चित्तवृत्तिमहं न वेद कीदृशी वा न वेद्मि । परबुद्धेरप्रत्यक्षत्वादिति भावः । 'विदो लटो वा' इति लटो णलादेशः । न चात्मदृष्टान्तेनापन्नत्वाद् दुःखित्वमनुमातुं शक्यते । धीरादिष्वनैकान्तिकत्वादित्याशयेनाह—चित्तवृत्तयो विचित्ररूपा धीराधीराद्यनेकप्रकाराः खलु । किन्तु परामुत्कृष्टां भवदापदं विचिन्तयन्त्या भावयन्त्या मम चेतश्चित्तम् । आधयो मनोव्यथाः 'उपसर्गे घोः किः' इति किप्रत्ययः । प्रसभं प्रसह्य रुजन्ति भञ्जन्ति 'रुजो भङ्गे' इति धातोर्लट् । पश्यतामपि दुःसहा दुःखजननी त्वद्विपत्तिरनुभवितारं त्वां न विकरोतीति महच्चित्रमित्यर्थः । चेत इति । 'रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः' इति षष्ठी न भवति । तत्र शेषाधिकाराच्छेषत्वस्य विवक्षितत्वादिति ।

अन्वय—इमां तावकीं धियम् अहं न वेद । चित्तवृत्तयः विचित्ररूपाः खलु । परां भवदापदं विचिन्तयन्त्याः मम चेतः आधयः प्रसभं रुजन्ति ॥३७॥

हिन्दी अनुवाद—यह आपकी मति मैं नहीं समझ पाती । (लोगों की) चित्तवृत्तियाँ सचमुच भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं । आपकी इस बड़ी विपत्ति को सोचती हुई मेरे चित्त को व्यथाएँ हठात् व्यथित कर देती हैं ।

English Translation:—I do not understand this frame of your mind, impressions of the mind are indeed of varied character. Thinking of your extreme misery, mental grief forcibly break my heart.

संस्कृतभावार्थ—सुखदुःखविचारशून्यां तव मतिमवगन्तुमहं न शक्नोमि । यतः मनोव्यापाराः नानाविधा भवन्ति । यथा यथाहं तव महतीं विपत्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचिन्तयामि तथा तथा मे मनः व्यथते। परञ्च भवान् पुनः दुर्दशामिमामनुभूयापि विकृतिं न प्राप्नोतीति विचित्रमेतत् प्रतिभाति।

व्याख्या—युधिष्ठिर की दुर्दशा देखकर द्रौपदी अत्यन्त क्षुब्ध है पर युधिष्ठिर पर उसका कोई प्रभाव लक्षित नहीं होता। यह विचित्र रहस्य द्रौपदी की समझ में नहीं आता। उसके लिए यह पहेली बन जाती है।

टिप्पणी—**इमां तावकी**—तव इयम् इति तावकी युष्मद्+अण् स्त्रियाम्, तवक, ङीप्, ताम्। 'तस्येदम्' इस सूत्र से अण् प्रत्यय लगा है। युष्मद् के स्थान पर 'तवक' अण् परे रहने के कारण हो गया है। इसका सूत्र है 'तवकममकावेकवचने' युष्मद और अस्मद् के एकवचन में क्रमशः 'तवक' और 'ममक' का आदेश अण् या खञ् परे रहने पर हो जाता है। द्रष्टव्य—'मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय'—गीता। **धियम्**—ध्यायति अनया इति ध्यै+क्विप् करणे=धीः ताम् 'वेद' का कर्म है। 'बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः' इत्यमरः। **अहं न वेद**—मैं नहीं जानती, विद्+लट्+मि विशेष द्रष्टव्य श्लोक २०। **चित्तवृत्तयः**—चित्तस्य वृत्तयः (ष० तत्पु०) द्रष्टव्य—'नासौ न काम्यः न च वेद सम्यग्, द्रष्टुं हि सा भिन्नरुचिर्हि लोकः' रघुवंश षष्ठसर्ग। **विचित्ररूपाः**—विशेषेण चित्राः इति विचित्राः (प्रादितत्पुरुष) अतिशयेन विचित्रा इति विचित्र+रूपप् प्रशंसायाम्, इसमें विचित्राः का पुंवद्भाव हो गया है अथवा विचित्रं रूपं यासां ताः (बहुव्रीहि)। **खलु**—निश्चये अथवा वाक्यालङ्कारे। **पराम्**—पर+टाप् स्त्रियाम्—परा, ताम्=महतीम् 'परो दूरान्यश्रेष्ठशत्रुषु। परन्तु केवले' इति हैमः। **भवदापदां**—भातीति भा+डवतु—भवत्; तस्य आपद् (ष० तत्पु०) ताम्। 'विपत्त्यां विपदापदौ' इत्यमरः। **विचिन्तयन्त्याः**—सोचती हुई वि+चिन्त्+णिच्+शतृ+ङीप् स्त्रियाम्। यहाँ 'शप्श्यनोर्नित्यम्' सूत्र से 'नुम्' का आगम हुआ है। **चेतः**—चित+असुन्। **आधयः**—आधीयते इति आङ्+धा+कि भावे कर्मणि वा—आधिः, ते=मनोव्यथाः। **प्रसभं**—प्रगता सभा विचारः अस्मात् इति प्रसभम् तद्यथा स्यात्तथा=हठात्। द्रष्टव्य—'नयन्ति नः प्रसभमसृञ्जि पङ्क्ताम्' शिशुपाल १७ सर्ग। **रुजन्ति**—भञ्जन्ति। रुजो भङ्गे (तुदादिः)+लट् अन्ति; इसका कर्त्ता है आधयः। यहाँ चेतः में "रुजार्थानां भाववचनानामज्वरे' नियम से षष्ठी नहीं हुई; क्योंकि यहाँ शेषत्व कथन नहीं किया गया है। इस श्लोक में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शष का सामान्य से समर्थनरूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है तथा उत्तरार्ध में काव्यलिंग ॥ ३७॥

वाच्यपरिवर्त्तन—इयं तावकी धीः मया न विद्यते (ज्ञायते)। चित्तवृत्तिभिः विचित्ररूपाभिः भूयते। परां भवदापदं विचिन्तयन्त्या मम आधिभिश्चेतः प्रसभं रुज्यते।

तदापदमेव श्लोकत्रयेणाह--

युधिष्ठिर की कष्टकारिणी दशा का वर्णन तीन श्लोकों से करती हुई द्रौपदी उनकी पूर्वावस्था और आधुनिक अवस्था की तुलना कर रही है—

पुराधिरूढः शयनं महाधनं
विबोध्यसे यः स्तुतिगीतिमङ्गलैः।
अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं
जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः॥ ३८॥

पुरेति। यस्त्वं महाधनं बहुमूल्यं श्रेष्ठम्। 'महाधनं महामूल्ये' इति विश्वः। शयनं शय्यामधिरूढः सन्। स्तुतयो गीतयश्च ता एव मङ्गलानि तैः करणभूतैः पुरा विबोध्यसे वैतालिकैरिति शेषः। पूर्वं बोधित इत्यर्थः। 'पुरि लुङ चास्मे' इति भूतार्थे लट्। स त्वमदभ्रदर्भां बहुकुशाम्। 'अस्त्री कुशं कुथो दर्भं' इति 'अदभ्रं बहुलं बहु' इति चामरः। स्थलीमकृत्रिमभूमिम्। 'जानपद'—इत्यादिना कृत्रिमार्थे ङीष्। एतेन दुःसहस्पर्शत्वमुक्तम्। अधिशय्य शयित्वा। 'अयङ्यि क्ङिति' इत्ययङादेशः। अशिवैरमङ्गलैः शिवारुतैः क्रोष्टुरसितै। 'शिवा हरीतकी क्रोष्ट्री शमी नद्यामलक्युभे' इति वैजयन्ती। निद्रां जहासि। अद्येति शेषः॥ ३८॥

अन्वय—यः (त्वं) महाधनं शयनम् अधिरूढः स्तुतिगीतिमङ्गलैः पुरा विबोध्यसे स (त्वम्) अदभ्रदर्भां स्थलीम् अधिशय्य अशिवैः शिवारुतैः निद्रां जहासि।

हिन्दी अनुवाद—पहले बहुमूल्य शय्या पर सोये हुए (आप) स्तुति और गीतगानादि मांगलिक पाठों से जगाये जाते थे वही (आप) बहुत से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुशों वाली भूमि पर सोकर अकल्याणकारी शृगाली-रव से निद्रा का परित्याग करते हैं।

English Translation:—you, who formerly mounted on a costly bed, used to be aroused by auspicious songs and eulogies, now having reclined on the profusely Kusha covered spot you renounce sleep through inauspicious cries of female jackals.

संस्कृतभावार्थ—पुरा यस्त्वं सिंहासनाधिरूढः सन् बहुमूल्यपर्यङ्के सुप्तः उषस्युपस्थिते वैतालिकानां स्तुतिगीतिप्रभृतिभिः मांगलिकैः पाठैः विबोध्यसे, साम्प्रतं स एव त्वं कुशबहुलायां भूमौ शयित्वा शृगालीनामशुभशब्दैः निद्रां मुञ्चसीति दशाविपर्यासं नानुभवसि किम्।

व्याख्या—भाइयों की दुर्दशा का वर्णन करने के पश्चात् द्रौपदी स्वयं युधिष्ठिर के दुःखों का वर्णन करती हुई कहती है कि पहले तुम्हारी निद्रा स्तुतिपाठों एवं मांगलिक शब्दों से भंग होती थी, पर अब कुशकंटकाकीर्ण भूमि पर शयन करते हुए आप शृगाली के कर्कश शब्दों से जगाये जाते हैं। अहह कितना कष्ट है!

टिप्पणी—**महाधनम्**—महत् धनं यस्य (बहुव्रीहि) तत्। 'महाधनं महामूल्ये इति विश्वः। **शयनम्**—शय्यते अस्मिन्निति शी+ल्युट् अधिकरणे—शयनम्। 'शयनम्' अधिरूढः का कर्म है। **अधिरूढः**—अधि+रुह्+क्त कर्तरि 'यः' का विशेषण है। यहाँ 'गत्यर्थाकर्मक' सूत्र से कर्तरि क्त होता है। **स्तुतिगीतिमंगलैः**—स्तुतयश्च गीतयश्च स्तुतिगीतयः (द्वन्द्व) ता एव मंगलानि (कर्मधारय) तैः। अथवा स्तुतेः गीतयः (ष० तत्पु०) स्तुति—स्तु+क्तिन् भावे स्तुतिः। गीतिः—गै+क्तिन् भावे गीति। 'शय्यायां शयनीयवत् शयनम्' इति कोशः। 'स्यान्निद्रा शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि' इत्यमरः। **पुरा**—भूतकाल के अर्थ में अव्ययपद। तस्मिन् पूर्वस्मिन् काले अधिकरणे सप्तमी। **विबोध्यसे**—वि+बुध्+णिच् लट् से कर्मणि। यहाँ भूतकाल के अर्थ में लट् लकार का प्रयोग हुआ है। इसके लिए नियम है—'पुरि लुङ् चास्मे' अर्थात् 'स्म' का प्रयोग न होने पर अनद्यतन भूत का अर्थ सूचित करने के लिए पुरा के योग में लुङ् और लट् का प्रयोग होता है। **अदभ्रदर्भाम्**—कुशबहुलाम्। अदभ्रा दर्भाः अस्याम् (बहुव्रीहि) ताम् 'स्थलीम्' का विशेषण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रष्टव्य—'अदभ्रमभ्राजत साश्मशासनात् प्रकाशरोचिः प्रतिमेव हेमजा' नैषध १७ सर्ग। 'अदभ्रं बहुलं बहु' इत्यमरः। स्थलीम्—प्राकृतभूमिम्। अधिशय्य—सोकर। अधि+शीङ+ल्यप्। 'अधिशीङस्थासां कर्म' इस सूत्र से स्थलीम् में कर्म हुआ है। यहाँ 'अयङ क्ङिति' सूत्र से शीङ के ई को अयङ आदेश हो गया है। अशिवैः—न शिवानि अशिवानि तैः (नञ् तत्पुरुष) शिवारुतैः—शृगालीरवैः शिवानां रुतानि (ष० तत्पु०) तैः। 'स्त्रियां शिवा भूरिमायगोमायुमृगधूर्तकाः' इत्यमरः। शिवशब्द संज्ञा और विशेषण दोनों होता है—'राज्ञः शिवं सावरजस्य भूयात्' (संज्ञा)। 'शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः' विशेषण। निद्रां जहासि—शयनं त्यजसि। हा+लट् सि ॥ ३८ ॥

वाच्यपरिवर्त्तन—पुरा महाधनं शयनमधिरूढं यं त्वां स्तुतिगीतिमंगलैः विबोधयन्ति। तेनैवाधुना अदभ्रदर्भां स्थलीमधिरुह्य अशिवः शिवारुतैर्निद्रा हीयते।

अपने भोजन पर ही विचार कीजिए—

पुरोपनीतं नृप रामणीयकं
द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा।
तदद्य ते वन्यफलाशिनः परं
परैति कार्श्यं यशसा समं वपुः ॥ ३९ ॥

पुरेति। हे नृप, यदेतत्पुरोवर्ति वपुः पुरा द्विजातिशेषेण द्विजभुक्तावशिष्टेनान्धसान्नेन। 'भिस्सा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नम्' इत्यमरः। रमणीयस्य भावो रामणीयकं मनोहरत्वमुपनीतं प्रापितम्। नयतेर्द्विकर्मकत्वात्प्रधाने कर्मणि क्तः। 'प्रधानकर्मण्याख्ये ये लादीनाहुर्द्विकर्मणाम्' इति वचनात्। अद्य वन्यफलाशिनस्ते तव तद्वपुर्यशसा समं परमतिमात्रं कार्श्यं परैति प्राप्नोति उभयमपि क्षीयत इत्यर्थः। अत्र सहोक्तिरलङ्कारः। तदुक्तं काव्यप्रकाशे—'सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्' इति ॥ ३९ ॥

अन्वय—हे नृप! यत् एतत् ते वपुः पुरा द्विजातिशेषेण अन्धसा रामणीयकम् उपनीतम्, अद्य वन्यफलाशिनः ते तत् यशसा समं परं कार्श्यं परैति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी अनुवाद—हे राजन् ! जो यह आपका शरीर पहले ब्राह्मणों के भोजन कर चुकने के वाद बचे हुए अन्न से सुन्दरता को प्राप्त हो गया था, आज जंगल के फल-कन्दमूल के भक्षण से आपका यह शरीर यश के साथ ही अत्यन्त क्षीण हो रहा है।

English Translation—O king (lit. protector of men) this body of yours which was formerly made charming by the rice left after the Brahmans (twice borns) had eaten, has today become very thin alongwith your fame on account of your living on wild fruits.

संस्कृतभावार्थ—हे राजन् ! पूर्वस्मिन्समये यस्त्वं ब्राह्मणभुक्तावशिष्टेनान्नेन शरीरं पोषितवान्। स एवाधुना वने कन्दमूलफलानि भुक्त्वा न केवलं शरीरं कृशमकार्षीः अपि तु तव यशोऽपि तनुतां भजते । त्वं तु यशोधनः 'यशोधनानां हि यशो गरीयः' इति वाक्यस्मरणात् स्वमानरक्षार्यै प्रयतस्वेति भावः ।

व्याख्या—सरल है ।

टिप्पणी—हे नृप—हे राजन् ! यत् एतत् ते वपुः—शरीरम् । पुरा—प्राक् । 'स्यात् प्रबन्धे चिरातीते निकटागामिके पुरा' इत्यमरः । द्विजातिशेषेण—ब्राह्मणभोजनावशिष्टेन । जन्+क्तिन् भावे जातिः । शिष्यते इति शेषं (शिष्+घञ् कर्मणि) अथवा शेष्यते इति शिष्+णिच्+घञ् कर्मणि शेषम् । अथवा द्वाभ्यां जायन्ते इति द्विजाः । द्वे जाती येषां ते द्विजातयः (बहुव्रीहि) (मातुरग्रेधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धनम्) यहाँ द्विजाति केवल ब्राह्मण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तेषां शेषः शेषं वा तेन । अन्धसा—अन्नेन । अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया 'भिस्सा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नमोदनोऽस्त्री स दीदिविः' इत्यमरः । रामणीयकम्—दर्शनीयताम् । रम्+णिच्+अनीयर् वाहुलकात् कर्त्तरि । रमणीयस्य भावः रामणीयकम् रमणीय+वुञ्=अक=रामणीयकम् । यहाँ 'कृत्यल्युटो बहुलम्'—अर्थात् धातु से कृत्यप्रत्यय और ल्युट् बहुलतया लग जाते हैं—सूत्र से कृत्य प्रत्यय अनीयर् कर्तृवाच्य में ही लगा है। (द्रष्टव्य—'दिग्व्यापिनीलोचनलोभनीयाः'—भट्टि०) । उपनीतम्—उप+नी+क्त कर्मणि । नी धातु द्विकर्मक है । यहाँ 'वपुः' प्रधान और 'रामणीयकम्' अप्रधान कर्म है । प्रधान कर्म वपुः 'न्यादेः प्रधाने' नियम से उक्त है, अतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म में क्त हुआ। वन्यफलाशिनः—वने भवं वन्यम् (वन+यत्) वन्यं च तत् फलम् (कर्मधारय) वन्यफलम् अश्नातीति वन्यफलाशी (वन्यफल+अश्+णिनि कर्त्तरि), तस्य। ते तत्—तत्तव शरीरम्। यशसा समं—कीर्त्या सह 'सहयुक्तेऽप्रधाने' और 'साकं सार्धं समं योगेऽपि' नियम से तृतीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है। परं कार्श्यम्—अतितनुताम्। कृश्+क्त कर्त्तरि—कृशः तस्य भावः कार्श्यम् (कृश+ष्यञ्) कृश शब्द क्तप्रत्ययान्त है और यह निपातन से 'अनुपसर्गात् फुल्लक्षीवकृशोल्लाघाः' सूत्र से विहित है। परैति—प्राप्त हो रहा है। परा+इ+लट् ति (इ धातु—एति, एतु, इयात्, अगात्, इयाय, एष्यति)। 'विप्राण्डक्षत्रियाद्विजाः' इत्यमरः। 'यशः कीर्त्तिः समज्ञा च' इत्यमरः। 'गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रह' इत्यमरः। "जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते। वेदपाठी भवेद् विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः" मनुः। अलंकार सहोक्ति—तल्लक्षणमुक्तं काव्यप्रकाशे—'सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्' अर्थात् जहाँ सह शब्द के अर्थ के सामर्थ्य से एक पद दो का वाचक हो वह सहोक्ति कहलाती है। यहाँ शारीरिक क्षीणता के साथ यश की भी क्षीणता कही गई है अतः सहोक्ति अलंकार हुआ॥ ३९॥

वाच्यपरिवर्त्तन—हे नृप पुरा यद्......उपनीतवत् तेन वपुषा............ परेयते।

युधिष्ठिर के पूर्व ऐश्वर्य और आधुनिक दुर्दशा का द्रौपदी पुनः वर्णन कर रही है।

> **अनारतं यौ मणिपीठशायिना-**
> **वरञ्जयद्राजशिरः स्रजां रजः।**
> **निषीदतस्तौ चरणौ वनेषु ते**
> **मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम्॥ ४०॥**

अनारतमिति। अनारतमजस्रं मणिपीठशायिनौ मणिमयपादपीठस्थायिनौ यौ चरणौ राजशिरः स्रजां नमद्भूपालमौलिस्रजां रजः परागोऽरञ्जयत्। तौ ते चरणौ, मृगैः द्विजैश्च तपस्विभिः आलूनशिखेषु छिन्नाग्रेषु बर्हिषां कुशानाम्। 'बर्हिः कुशहुताशयोः' इति विश्वः। वनेषु निषीदतस्तिष्ठतः॥ ४०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वय--अनारतं मणिपीठशायिनौ यौ चरणौ राजशिरः स्रजां रजः अरञ्जयत्, तौ ते (चरणौ) मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषां वनेषु निषीदतः।

हिन्दी अनुवाद--हर समय रत्नजटित पादुकाओं पर स्थित जिन तुम्हारे चरणों को राजाओं के मस्तक की मालाओं का पराग रञ्जित करता था। वे ही (आप के) दोनों चरण मृग और ब्राह्मणों द्वारा छिन्न नोकों वाले कुश-समूहों पर चलते हैं।

English Translation—Those feet of yours, that used to rest always on a crystal footstool, and which the poleens of wreaths on the crests of kings used to redden, now rest in clumps of kusa grass where the tops have been lopped off by the deer and the Brahmans.

संस्कृतभावार्थ—भवतः पादौ पुरा सदैव मणिखचितपादपीठे स्थितौ नमन्महीपतिमौलिमालालालितौ परमैश्वर्यमुपेयिवन्तौ। तेषां शिरोमाल्यानां धूलिभिर्भवतः चरणौ रञ्जितौ आस्ताम्। तावेव भवतश्चरणौ साम्प्रतं मृगब्राह्मण-लुंचितानां कुशानां काननेषु तिष्ठतः इति महद्दुःखकरं वर्तते।

व्याख्या--पूर्व समय में आपकी राजसभा में बड़े-बड़े राजा लोग आकर मणिमयपादुकाओं पर रखे हुए आपके चरणों में प्रणाम करते थे और अब कुशबहुल वनों में ही आपका दरबार लगता है, जिसमें यति, ब्राह्मण और मृग सम्मिलित होते हैं। आपके वे ही चरण आजकल हरिण और ब्राह्मणों से नोचे हुए कुशों के वन में चलते हैं, यह कितने कष्ट की बात है।

टिप्पणी--अनारतं--सततम्। 'सततानारताश्रान्तसन्तताविरतानिशम्' इत्यमरः। मणिपीठशायिनौ—मणिनिर्मितं पीठं मणिपीठम् (शाकपार्थिवादि-वत्समासः) मणिपीठे शयाते इति मणिपीठशायिनौ (मणिपीठ+शीङ्+णिनि कर्त्तरि) उपपद तत्पुरुष। तौ। 'रत्नं मणिर्द्वयोरश्मजातौ मुक्तादिके-ऽपि च' इत्यमरः। यौ ते चरणौ राजशिरःस्रजाम्—राज्ञां शिरांसि(ष० तत्पु०), राजशिरःस्थाः स्रजः (शाकपार्थिवादिवत्समासः) अथवा राजशिरःसु स्रजः (सुप्सुपा०) यद्वा राजशिरसां स्रजः (ष० तत्पु०) तासाम् शेषे षष्ठी। रजः—परागः 'पादाग्रं प्रपदं पादः पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। 'रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः पांशुर्ना न द्वयोः रजः' इत्यमरः। अरञ्जयत्—रञ्जितवत्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रञ्ज्+णिच्+लङ् त् । तौ (चरणौ) मृगद्विजालूनशिखेषु—मृगाश्च द्विजाश्च (द्वन्द्व०) मृगद्विजाः तैः आलूनः (आ+लू+क्र्यादिः+क्त कर्मणि स्त्रियाम्) (तृ० तत्पु०) तादृशाः शिखाः येषु तेषु (बहुव्रीहि) । 'मृगद्विजाः' समस्त पद में 'अभ्यर्हितञ्च' वार्तिक से मृग के पूर्व द्विजपद का प्रयोग होना चाहिए। पर भारवि पूर्वनिपात का नियम पूर्णतया पालन नहीं करते । इसके प्रमाण में तीसरे श्लोक का 'सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी' उद्धृत किया जा सकता है अथवा मृग के पहले प्रयोग होने से शिखालवन के क्रम को सूचित किया गया है। मृग हरितावस्था में शिखाग्रों को खाते थे और बाद में ब्राह्मण लोग पूजा के निमित्त उन्हें तोड़ते थे । प्रतीत होता है कि इसलिए कवि ने पहले मृग और पश्चात् द्विज का प्रयोग किया है । बर्हिषां वनेषु—कुशानां काननेषु। 'बर्हिः कुशहुताशयोः' इति विश्वः । निषीदतः—तिष्ठतः—नि+सद्+लट् तस्, सद् का सीद हो जाता है । द्रष्टव्य श्लोक ३५ 'पाघ्राध्मा०' सूत्र से । फिर 'सद्रिः अप्रतेः' सूत्र से सीद् का षीद् हो गया ।। ४० ।।

वाच्यपरिवर्त्तन—अनारतं मणिपीठशायिनौ यौ ते राजशिरःस्रजां अरज्येताम्, ताभ्यां चरणाभ्यां—…निषद्यते ।

ननु सर्वप्राणिसाधारण्यामापदि का परिदेवनेत्याह—

आपत्ति तो सब पर आती है । इसमें दुःख क्यों ? इस पर द्रौपदी कहती है कि आपकी यह विपन्नावस्था शत्रुकृत है, अतः मेरा मन व्यथित होता है—

द्विषन्निमित्ता यदियं दशा ततः
समूलमुन्मूलयतीव मे मनः ।
परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां
पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम् ।। ४१ ।।

द्विषदिति । यद्यतः कारणादियं दशावस्था । "दशावर्त्ताववस्थायाम्" इति विश्वः । द्विषन्तो निमित्तं यस्याः सा । "द्विषोऽमित्रे" इति शतृप्रत्ययः । अतो मे मनः समूलं साशयमुन्मूलयतीवोत्पाटयतीव । दैविकी त्वापन्नदुःखायेत्याह परैरिति । परैः शत्रुभिरपर्यासिताऽपर्यावर्तितावीर्यसम्पद्येषां तेषां मानिनां पराभवो विपदप्युत्सव एवेति वैधर्म्येणार्थान्तरन्यासः । मानहानिर्दुःसहा न त्वापदिति भावः ।। ४१ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वय—यत् इयं दशा द्विषन्निमित्ता, ततः मे मनः समूलम् उन्मूलयतीव परैः अपर्यासितवीर्य्यसम्पदाम् पराभवोऽप्युत्सव एव।

हिन्दी अनुवाद—आपकी यह दशा शत्रुओं के कारण है, इसी से मेरा मन मूल से उखड़ा-सा जान पड़ रहा है। शत्रुओं से अपराजित पौरुष रूप सम्पत्ति वाले स्वाभिमानियों के लिए पराजय भी आनन्द ही है।

English Translation—And the fact that this plight has your enemies for its cause, upsets my mind as if to its very root. To the sprited the wealth of whose prowess has not been wiped off by the enemies, even a defeat is a source of pleasure.

संस्कृतभावार्थ—यदीयं तव वर्तमानाऽवस्था दैवहेतुकी स्यात्तदा न तया मनोहानिः, परञ्च शत्रुभिर्विहितामिमां दुर्दशां दृष्ट्वा मे मनो भृशं दूयते। विपदः समागच्छन्ति यान्ति च। परैरनवरुद्धविक्रमाणां मनस्विनां वनवासादिक्लेशः उत्सव एवासीत्। मनस्विनां पराभवस्तु हर्षकारणमेव। अरे च भवान् निरुत्साही वर्तते इति मे दुःखम्।

व्याख्या—स्वाभिमानी पुरुष अपने शत्रुओं से पराजित होने पर अपने भाग्य की सराहना करते हैं कि इससे उनका पराक्रम कम नहीं हुआ। वे पुनः द्विगुणित उत्साह एवं साहस से पराक्रम प्रदर्शन में तत्पर हो जाते हैं। द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि प्रतीत होता है कि पराभव से आपकी सारी पराक्रम-शीलता नष्ट हो गई है। इससे मेरा मन अत्यन्त व्यथित हो कर समूल उन्मूलित-सा हो रहा है।

टिप्पणी—यत्—यस्मात् कारणात्; इयं दशा द्विषन्निमित्ता—शत्रु के कारण है। 'दशावर्ताववस्थायाम्' इति विश्वः। द्विषन्तः निमित्तमस्याः (बहुव्रीहि) सा। 'निमित्तं हेतुलक्ष्मणोः' इत्यमरः। द्विषत् के लिये विशेष द्रष्टव्य श्लोक २७। ततः—तस्मात् कारणात्। समूलम्—मूलेन सह वर्तमानम् इति (बहुव्रीहि) तत् यथा स्यात्तथा। यहाँ 'सहमूलम्' रूप विकल्प से 'वोपसर्जनस्य' अर्थात् बहुव्रीहि के अवयव 'सह' 'शब्द' को 'स' विकल्प से होता है। मे मनः—मे चेतः। उन्मूलयतीव—उद्+मूल्+णिच् (चुरादि)+लट् ति। शत्रुकृत आपत्ति के कारण दुःख असह्य है। यदि दैवी होती तो सहा जा सकता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि सुखदुःख तो चक्रवत् घूमा करते हैं, यथा उत्तरमेघ में यक्ष कहता है— 'कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा । नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण' । परैः—शत्रुभिः—'परो दूरान्यश्रेष्ठशत्रुषु' इति हेमचन्द्रः । 'परापरशब्दयोः उपचारात् शत्रौ प्रतिवादिनि च प्रयोगः' इति भट्टोजिः मनोरमायाम् । अपर्यासितवीर्यसम्पदाम्—अविनष्ट पौरुष-सम्पत्ति वाले अर्थात् शत्रु जिनके प्रभूत पौरुष को नष्ट नहीं कर सके हैं । परि+आस्+णिच्+क्त कर्मणि स्त्रियाम् अथवा परि—आ+अस् (दिवादिक्षेपे)+णिच्+क्त कर्मणि स्त्रियाम् पर्यासिता; न पर्यासिता इति अपर्यासिता (नञ् तत्पुरुष) । वीरस्य भावः कर्म वा वीर्यम् (वीर+यत्) तस्य सम्पत् (ष० तत्पुरु०), अपर्यासिता वीर्यसम्पत् येषां (बहुव्रीहि) । मानिनाम्—मन्+घञ् भावे—मानः । स अस्ति एषामिति मानिनः (मान+इनि मत्वर्थे) तेषाम् । शेषे षष्ठी । वैधर्म्य द्वारा अर्थान्तरन्यास अलंकार है । मानहानि असह्य है न कि दुर्भाग्य । मन का कभी उन्मूलन नहीं हो सकता तथापि बलपूर्वक 'इव' वाचक पद रख कर वैसी उत्प्रेक्षा की गई है, अतः उत्प्रेक्षालंकार है ।। ४१ ।।

वाच्यपरिवर्त्तन—यत् अनया दशया द्विषन्निमित्तया (भूयते), ततः मे मनसा उन्मूल्यते इव । परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां मानिनां पराभवेनापि उत्सवेन एव (भूयते) ।

सामनीति का परित्याग कर कठोर उपायों को काम में लाइये—

विहाय शान्ति नृप धाम तत्पुनः,
प्रसीद सन्धेहि वधाय विद्विषाम् ।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः,
शमेन सिद्धि मुनयो न भूभृतः ।। ४२ ।।

विहायेति । हे नृप, शान्ति विहाय तत्प्रसिद्धं धाम तेजो विद्वषां वधाय पुनः सन्धेह्यङ्गीकुरु प्रसीद । प्रार्थनायां लोट् । ननु शमेन कार्यसिद्धौ किं क्रोधेनेत्यत्राह—व्रजन्तीति । निःस्पृहाः मुनयः शमेन क्रोधवर्जनेन सिद्धि व्रजन्ति । भूभृतस्तु शत्रूनवधूय निर्जित्य । कैवल्यकार्यवद्राजकार्यं न शान्तिसाध्यमित्यर्थः ।। ४२ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वय—हे नृप, शान्ति विहाय तत् धाम् विद्विषां वधाय पुनः सन्धेहि। प्रसीद। निःस्पृहा मुनयः शत्रून् अवधूय शमेन सिद्धिं व्रजन्ति, भूभृतो न।

हिन्दी अनुवाद—हे राजन्, शान्ति का परित्याग कर आप उस तेज को शत्रुओं के वध के लिए फिर धारण कीजिए। निष्काम तपस्वी (कामक्रोधादि) शत्रुओं को जीत कर शान्ति के द्वारा सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजा नहीं।

English Translation—O king, Be pleased. Having given forbearance take up that lustre again for the destruction of enemies the sages who are without desire, having subjugated enemies (internal) through forbearance attain success, and not so the sustainer of the earth (i. e., king).

संस्कृतभावार्थ—प्रजापालनं हि राज्ञां कर्म तत्तु सात्त्विकधिया न सम्पद्यते। सात्त्विकबुद्धिर्मुनीनामपेक्षिता। ते कामक्रोधादीनन्तःशत्रून् शमेन विजित्य मोक्षरूपां सिद्धिमधिगच्छन्ति। राजानस्तु 'सन्तुष्टश्च महीपतिर्नष्टः' इति वाक्यमनुस्मृत्य शत्रुनाशाय राजसमुग्रं तेजः धारयेयुर्येन राज्याधिगमः पुनः संभवेत्।

व्याख्या—राजा होते हुए मुनिवृत्ति धारण करने से कल्याण चाहते हो। राजधर्म मुनिधर्म से सर्वथा भिन्न है। मुनि लोग काम-क्रोध-मद-मोह-लोभ-मात्सर्यादि आन्तरिक रिपुओं पर विजय पाकर सिद्धि प्राप्त करते हैं, पर राजा को क्षात्रधर्म का अवलम्बन कर शत्रु से लोहा लेना चाहिए। तभी राज्याधिगम-रूपी सिद्धि मिल सकती है।

टिप्पणी—हे नृप—राजन्! शान्ति—शम्+क्तिन् भावे, तां। यह गुण सामान्यतः विवेक और वैराग्य से उत्पन्न होता है। विहाय—वि+हा+ल्यप् त्यक्त्वा। तत् धाम—प्रसिद्धं तेजः। 'गृहदेहत्विट्प्रभावा धामानि' इत्यमरः। 'न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता, न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा। रसः स शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु शमप्रधानः॥' इति शान्तलक्षणम्॥ विद्विषाम्—अरीणाम्। वधाय—नाशाय हन्+अप् भावे=वधः तस्मै। 'हनश्च वधः' सूत्र से हन् का वधादेश हो गया है। 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' सूत्र से चतुर्थी का प्रयोग हुआ है। पुनः सन्धेहि—सम्+धा+लोट्—अङ्गीकुरु। प्रसीद—प्रसन्नो भव। निःस्पृहाः—निष्काम। स्पृहा+अङ् भावे। निरस्ता स्पृहा एषां ते (बहुव्रीहि) मुनयः—संयमिनः। शत्रून्—अरीन् कामादिषड्रिपून्। अवधूय—निर्जित्य। अव+धू+ल्यप्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसका कर्म है 'शत्रून्'। शमेन—शान्त्या। 'शमो निरीहावस्थायां स्वात्मविश्रामजं सुखम्' इति। सिद्धि—सिध्+क्तिन् भावे। मुनियों के पक्ष में सिद्धि का अर्थ है मोक्ष, राजाओं के पक्ष में सिद्धि का अर्थ है चक्रवर्तित्व। किन्तु सफलता का प्रयोग दोनों पक्षों में समान रूप से हो सकता है। व्रजन्ति—प्राप्नुवन्ति। व्रज्+लट् अन्ति। भूभृतो न—राजानः शमेन सिद्धि नाप्नुवन्ति किन्तु तेजसा। अलंकार—अर्थान्तरन्यास ॥ ४२ ॥

वाच्यपरिवर्त्तन—......त्वया सन्वीयताम् निःस्पृहैर्मुनिभिः शत्रूनवधूय शमेन सिद्धिर्व्रज्यते। किन्तु भूभृद्भिस्तथा न सिद्धिर्व्रज्यते।

यदि आप में मनस्विता का अभाव होगा तो संसार में वह कहाँ रहेगी—

पुरःसरा धामवतां यशोधना,
सुदुःसहं प्राप्य निकारमीदृशम्।
भवादृशाश्चेदधिकुर्वते रतिम्,
निराश्रया हन्त हता मनस्विता ॥ ४३ ॥

पुर इति। किं च धामवतां तेजस्विनाम्। परनिकारासहिष्णूनामित्यर्थः। पुरः सरन्तीति पुरःसरा अग्रेसराः। 'पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः' इति टप्रत्ययः। यशोधना भवादृशाः सुदुःसहमतिदुःसहमीदृशमुक्तप्रकारं पराभवं प्राप्य रतिं सन्तोषमधिकुर्वते स्वीकुर्वते चेत्तर्हि। हन्त इति खेदे। मनस्विताऽभिमानिता निराश्रया सती हता। तेजस्विजनैकशरणत्वान्मनस्वितयेत्यर्थः। अतः पराक्रमितव्यमिति भावः। यद्यप्यत्र प्रसहनस्यासङ्गतेरधिपूर्वात्करोतः 'अधेः प्रसहने' इत्यात्मनेपदं न भवति। 'प्रसहनं परिभवः' इति काशिका। तथाऽप्यस्याकर्त्रभिप्रायविवक्षायामेव प्रयोजकत्वात्कर्त्रभिप्राये 'स्वरितञितः—' इत्यात्मनेपदं प्रसिद्धम् ॥ ४३ ॥

अन्वय—धामवतां पुरःसराः यशोधनाः भवादृशाः ईदृशम् सुदुःसहम् निकारम् प्राप्य रतिम् अधिकुर्वते चेत्, हन्त मनस्विता निराश्रया हता।

हिन्दी अनुवाद—तेजस्वियों में अग्रगण्य यशस्वी आप जैसे महापुरुष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि इस प्रकार अति दुःसह अपमान पाकर सन्तोष कर लेते हैं। आह ! मनस्विता निरवलम्बन होकर समाप्त हो गई।

English Translation:—Alas ! spiritedness is doomed for want of a (worthy) shelter. If persons like you, who are foremost among the lustrous and treasure fame, adopt satisfaction after having received such a highly unbearable insult.

संस्कृतभावार्थ—निस्तेजाः निर्बलो नरः 'यद् भवति तद्भवतु, स्वकर्मफलं जनः लभते' इत्थं स्वमनसि निधाय मानापमानौ न गणयति। किन्तु भवान् तेजस्विनामग्रणी। भवता तु शत्रुकृतः अपराधो न क्षन्तव्यः। यदि भवादृशाः यशोधनाः ईदृशं परापकारं सहन्ते तत्प्रतिकारं न कुर्वन्ति तर्हि के अन्ये अत्याचार-दमने समर्थाः भवेयुः। शममवलम्बिते भवति मनस्विता भूमौ नाममात्रावशिष्टा जायते।

व्याख्या—संसार में मनस्वी व्यक्तियों की कमी हो गई है। जब आप ऐसे तेजस्वी एवं यशस्वी अपमान सह कर भी शान्ति का अवलम्बन करते हैं तो मेरी समझ में तो मनस्विता पृथ्वी पर नाममात्र को ही शेष रह गई है। अतएव सामनीति का परित्याग कर आपको पराक्रम दिखलाना चाहिए।

टिप्पणी—धामवताम्—धाम अस्ति एषामिति धामवन्तः (धामन्+मतुप्) तेषाम् (बहुव्रीहि)। षष्ठी शेषे। 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः' सूत्र से मतुप् का 'म' 'व' में परिवर्तित हो गया है। सूत्रार्थ—मान्त अथवा अवर्णान्त या मकारोपधा तथा अकारोपधा शब्दों से यवादिगण के शब्दों को छोड़ कर मतुप् के 'म' का 'व' हो जाता है। धामन् में उपधा में अवर्ण है (अतः मतुप् के म का व हो गया)। पुरःसराः—अग्रगामिनः। पूर्व+ङि+असि स्वार्थे=पुर्+अस्=पुरः। पुरः सरन्तीति पुरस्+स+ट कर्त्तरि। यहाँ 'पूर्व—अधर—अवराणामसि पुर्—अध—अवश्चैषाम्' सूत्र से पूर्व का पुर् आदेश हुआ है जिसका अर्थ है असि प्रत्यय के योग में पूर्व, अवर, अधर के स्थान पर क्रमशः पुर्, अध और अवस् होते हैं। फिर 'पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः' सूत्र से—कर्तृ वाच्य में पूर्व में पुरस्, अग्रतः, अग्र उपपद रहने पर सृ धातु में 'ट' प्रत्यय लगता है—'ट' प्रत्यय हुआ। यशोधनाः—यशः एव धनं येषां (बहुव्रीहि) ते—कीर्त्तिमन्तः। भवादृशाः—द्रष्टव्य श्लोक २८। ईदृशम्—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इदमिव पश्यन्ति जनाः एतम्, सोऽयम् इदमिव दृश्यमान इदमिव आत्मानं पश्यति इति इदम्+दृश्+कञ्। कर्मकर्त्तरि ईश्+दृश्+कञ्—ईदृशः तम् (द्रष्टव्य श्लोक २८ और २५ में भवादृशेषु और मादृशाम्। 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च' सूत्र से कञ् प्रत्यय हुआ है। इदम् के स्थान पर 'इदं किमोरीश्की' सूत्र से ईश् हुआ है। सुदुःसहम्—सु अतिशयेन दुःसहं सुदुःसहं (प्रादितत्पुरुष)। 'निकारम्' का विशेषण है। दुर्+सह्+खल्+दुःसहम्। 'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्' से 'खल्' हो गया। दुःसहम् विशेषण है 'निकारम्' का। निकारम्—शत्रुकृततिरस्कारम्। नि+कृ+घञ् भावे, तम्। 'निकारो हि तिरस्कारोऽपमानः पराभवः' इत्यमरः। 'पुरःसरा अग्रगण्या धुरीणाश्च पुरोगमा' इति कोशः। प्राप्य—प्र+अप्+ल्यप्। रतिमधिकुर्वते चेत्—यदि धारण करते हैं। अधि+कृ+लट् अन्ते। यह 'अधिकुर्वते' में आत्मनेपद 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' नियम से हुआ है। हन्त—अव्यय 'खेद' के अर्थ में। मनस्विता—स्वाभिमानिता। प्रशस्तं मनः अस्ति एषामिति मनस्विनः। मनस्+विनि मत्वर्थे। तेषां भावः इति मनस्विता। मनस्विन्+तल् स्त्रियाम्। यहाँ 'अस्मायामेधास्रजो विनि' सूत्र से 'विनि' हुआ। उक्ते कर्मणि प्रथमा। 'महाकार्ये कृतोद्योगो विघ्नैराहतमानसः। प्रारब्धं न त्यजति यः स मनस्वीति कथ्यते॥' अर्थात् जो महान् कार्य में प्रयत्नशील है और विघ्नों से पराभूत होने पर भी प्रारंभ किए हुए कार्य को नहीं छोड़ता उसे मनस्वी कहते हैं। 'हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः' इत्यमरः। 'धाम शक्तौ प्रभावे च तेजोमन्दिरजन्मसु' इति विश्वः। निराश्रया—अनवलम्बा सती। आ+श्रि+अच् भावे कर्मणि वा आश्रयः निः नास्ति आश्रयः अस्य : (बहुव्रीहि) सा। हता—हन्+क्त कर्मणि स्त्रियाम्।

वाच्यपरिवर्त्तन—धामवतां पुरःसरैः यशोधनैः भवादृशैः ईदृशं सुदुःसहं निकारं प्राप्य रतिः अधिक्रियते चेत्। हन्त मनस्वितया निराश्रितया हतया (भूयते) ॥ ४३ ॥

यदि आपको क्षमा का अवलम्बन कर शत्रुकृत अपमान का प्रतिकार नहीं करना है तो राजचिह्न धनुष को छोड़कर जटा धारण कर अग्निहोत्र कीजिए—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ क्षमामेव निरस्तविक्रम-
श्चिराय पर्य्येषि सुखस्य साधनम् ।
विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकं
जटाधरः सञ्जुहुधीह पावकम् ।। ४४ ।।

अथेति । अथ पक्षान्तरे निरस्तविक्रमः सन् । चिराय चिरकालेनापि क्षमां क्षान्तिमेव । "क्षितिक्षान्त्योः क्षमा" इत्यमरः। सुखस्य साधनं पर्य्येषि अवगच्छसि । तर्हि लक्ष्मीपतिलक्ष्म राजचिह्नं कार्मुकम् विहाय । धरतीति धरः पचाद्यच् । जटानां धरो जटाधरः सन्निह वने । पावकं जुहुधि पावके होमं कुर्वित्यर्थः । अधिकरणे कर्मत्वोपचारः । विरक्तस्य किं धनुषेत्यर्थः । "हुझल्भ्यो हेर्धिः" ।। ४४ ।।

अन्वय—अथ निरस्तविक्रमः चिराय क्षमामेव सुखस्य साधनम् पर्य्येषि लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं विहाय जटाधरः इह पावकं जुहुधि ।

हिन्दी अनुवाद—यदि आप पराक्रमहीन होकर चिरकाल तक क्षमा को ही सुख का साधन समझते हैं तो आप राजचिह्नस्वरूप धनुष का परित्याग कर जटाधारी वन कर यहाँ अग्नि में हवन कीजिए ।

English Translation :—If with valour given up you think forbearance as the only source of happiness for a long time, then putting on matted locks pour oblations into the fire here (in this forest) having cast off the bow, the sign of the lord of royal for tune.

संस्कृतभावार्थ—क्षमावलम्वनेनैव स्वाभीष्टसिद्धिर्भविष्यतीति मन्यसे चेत् तर्हि क्षात्रतेजोधरोचितं राजचिह्नमिदं धनुः परित्यज्य तपस्विलक्षणोचितां जटां धृत्वा अत्र वने सम्यक् अग्नौ जुहुयाः । यदि राज्ञां चरितं नावलम्ब्यते तर्हि मिथ्यानृपतिसूचककार्मुकधारणेन किमिति विशदार्थः ।

व्याख्या—सरल है ।

टिप्पणी—अथ—अव्यय । यहाँ विकल्पार्थ को अभिव्यक्त करता है । इसके अनेक अर्थ हैं यथा—'अथो संशये स्याताम् अधिकारे च मंगले । विकल्पानन्तरप्रश्नकात्स्न्यारम्भसमुच्चये' इति मेदिनी । निरस्तविक्रमः—उत्सा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हहीन: । निर्+अस् (दिवादि:) क्षेपे+क्त कर्मणि=निरस्त:; विक्रम:--वि+क्रम्+घञ् भावे । निरस्त: विक्रम: अनेनेति स: निरस्तविक्रम: (बहुव्रीहि)। चिराय--चिरकालं यावत् । क्षमामेव--क्षम्+अङ्भावे टाप् स्त्रियाम् । 'क्षिति-क्षान्त्योः क्षमा' इत्यमर: । 'विक्रम: पादविक्षेपे सामर्थ्येऽपि च कथ्यते' इत्यमर: । सुखस्य साधनम्--निर्वृत्तिकरम् । पर्येषि--अवगच्छसि । परि+इ+लट् सि यहाँ पर 'इण्को:' सूत्र से षत्व हुआ है । लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकम्--लक्षयति पश्यति नीतिमन्तं इति लक्ष्मी । लक्ष्+णिच्+ई (औणादिक: मुडागम:) प्रथमा-एकवचन में सु का लोप न होकर 'लक्ष्मी:' बनता है । 'अवीतन्त्रीतरी-लक्ष्मीह्रीधीश्रीणामुणादित: । स्त्रीलिंगानाममीषां तु सुलोपो न कदाचन' । अर्थात् अवी, तन्त्री, तरी, लक्ष्मी, ह्री, धी और श्री इन ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के प्रथमा-एकवचन के रूप में अन्त में विसर्ग रहता है अर्थात् सु का लोप नहीं होता, शेष में हो जाता है । यहाँ म का आगम 'लक्षेर्मुट' सूत्र से हुआ है । लक्ष्म्या: पति: (ष०तत्पु०) लक्ष्मीपते: लक्ष्म (ष०तत्पु०) तत् । कार्मुकम्--कर्मणे तस्मै प्रभवतीति कार्मुकम् (कर्मन्+उकञ्) तत् । 'वेनुर्नां कार्मुकं चापे' इति त्रिकाण्डशेष: । 'शरासनं कार्मुकं च चापं धनुरपोर्यते' इत्यमर: । विहाय--वि+हा+ल्यप् । जटाधर:--धरतीति धर: (धृ+पचाद्यच् कर्तरि) जटानां धर: जटाधर: (शेषषष्ठ्या समास:) । 'जटा: धरति' इस विग्रह में समास करने पर कर्मण्यण् सूत्र से अण् हो जायगा तो जटाधार: बनेगा, जटाधर: नहीं । द्रष्टव्य--'कथं तर्हि गंगाधरभूधरादय: । कर्मण: शेषत्वविवक्षायां भविष्यन्ति ।' सिद्धान्तकौमुदी ('कर्मण्यण्' सूत्र पर) । सन्--अस्+शतृ । इह--अत्र वने । पावकम्--अग्निम् । पुनातीति पावक: पु+ण्वुल् कर्त्तरि तम् । यहाँ अधिकरण के स्थान पर 'विवक्षावशात् कारकाणि' इस नियम से कर्मत्व की विवक्षा के कारण द्वितीया हुई । मल्लिनाथ का भी कथन है 'अधिकरणे कर्मत्वोपचार:' इति सप्तमी विभक्ति: अर्थात् 'पावके' का ही प्रयोग उचित था, दृष्टव्य--'अग्नौ प्रास्ताहुति:' पर कर्म का भी प्रयोग प्राय: देखा जाता है, यथा--'अग्निं पृणाति' और 'चिराय सन्तर्प्य समिद्भिरग्निं यो मंत्रपूतां तनुमप्यहौषीत्' रघुवंश । जुहुधि--होमं कुरु । हु+लोट् हि । 'हुझल्भ्यो हेर्धि:'--झलन्त धातुओं और हु के आगे 'हि' का 'धि' आदेश हो जाता है--इस सूत्र से 'हि' के स्थान में 'धि' हो गया है ।। ४४ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाच्यपरिवर्त्तन—अथ निरस्तविक्रमेण सता (त्वया) चिराय सुखस्य साधनम् क्षमा एव परीयते। लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकं विहाय जटाधरेण सता पावकः हूयताम्।

अथ समयोल्लंघनाद् बिभेषि तदपि न किञ्चिदित्याह—

यदि प्रतिज्ञा भंग होने का भय है तो उसकी कुछ चिन्ता न कीजिए वह तो कभी की शत्रुओं द्वारा तोड़ी जा चुकी है।

न समयपरिरक्षणं क्षमं ते,
निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः।
अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा,
विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि ॥ ४५ ॥

नेति। परेषु शत्रुषु। निकृतिः परं प्रधानं येषु तेषु तथोक्तेष्वपकारतत्परेषु सत्सु भूरिधाम्नो महौजसः प्रतीकारक्षमस्य ते तव समयस्त्रयोदशसंवत्सरान् वने वत्स्यामीत्येवंरूपा संवित्। 'समयाःशपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः। तस्य परिरक्षणं प्रतीक्षणं न क्षमं न युक्तम्। 'युक्ते क्षमं शक्ते हिते त्रिषु' इत्यमरः। हि यस्माद्विजयार्थिनो विजिगीषवः क्षितीशा अरिषु विषये सोपधि सकपटं यथा तथा। 'कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे' इत्यमरः। सन्धिदूषणानि विदधति केनचिद्व्याजेन दोषमापाद्य सन्धिं दूषयन्ति। विघटयन्तीत्यर्थः। शक्तस्य हि विजिगीषोः सर्वथा कार्यसाधनं प्रधानमन्यत्समयरक्षणादिकमशक्तस्येति भावः। अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ४५ ॥

अन्वय—परेषु निकृतिपरेषु भूरिधाम्नः ते समयपरिरक्षणम् न क्षमम्। हि विजयार्थिनः क्षितीशाः अरिषु सोपधि सन्धिदूषणानि विदधति।

हिन्दी अनुवाद—शत्रुओं के अपकार में संलग्न हो जाने पर परम तेजस्वी तुमको (तेरह वर्ष वनवासरूप) प्रतिज्ञा की रक्षा करना उचित नहीं है। क्योंकि विजय की इच्छा रखने वाले राजा लोग शत्रुओं के सम्बन्ध में छलपूर्वक सन्धि तोड़ देते हैं।

English Translation—It is not proper for you, of great valour, to observe the contract when the enemies are bent

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

upon injury, because kings, desirous of victory violate alliance with enemies on false excuses.

संस्कृतभावार्थ—द्यूतपराजितस्य भवतः त्रयोदशवर्षाणि यावत् वने निवासः उचितः, परञ्च शठो दुर्योधनः एतस्मिन्नन्तरेऽपि प्रतिज्ञामुपेक्ष्य त्वामनवरतं हन्तुं प्रायतत । इत्थं शत्रुषु त्वयि जिह्मं कर्त्तुमुद्यतेषु तव समयपरिरक्षणं नोचितम् । यतो विजिगीषवो राजानः केनचिद् व्याजेन दोषमापाद्य सन्धि विघट्टयन्ति । परमतेजस्विना त्वया कपटिषु वैरिषु कपटं विधाय स्वकार्यं साध्यम् ।

व्याख्या—प्रतिज्ञानुसार महाराज युधिष्ठिर को १३ वर्ष तक प्रतीक्षा करनी चाहिए, इस बात पर आपत्ति करती हुई द्रौपदी का कथन है कि शत्रुओं ने स्वयं अपनी ओर से प्रतिज्ञा भंग की है; क्योंकि इस अवधि के भीतर उन्हें पाण्डवों के विरुद्ध आचरण करना उचित नहीं था। इस सन्धि के विरुद्ध उन्होंने कार्य किया है और निरंतर करते जा रहे हैं, जैसा वनेचर के कथन से स्पष्ट है कि 'तदाशु कर्तुं त्वयि जिह्ममुद्यते विधीयतां तत्र विधेयमुत्तरम्'। अतः आप भी उद्योग करने में समर्थ हैं, सन्धि से बाध्य नहीं । आपको शपथ की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए । विशेषतः जब आप शत्रु से लोहा लेने में पूर्णतया समर्थ हैं । जो निर्बल राजा हैं, वे सन्धि के पालन आदि के बहाने अपनी तैयारी करते हैं। प्रबल राजा बहाने से ही शत्रु पर सन्धिभंग का दोषारोपण कर चढ़ाई कर देते हैं । आपके प्रति तो शत्रु का अपकार नितान्त स्पष्ट है । आपको तो अविलम्ब ही अब आक्रमण कर देना चाहिए ।

टिप्पणी—परेषु निकृतिपरेषु—शत्रुषु शाठ्यपरेषु सत्सु । नि+कृ+क्तिन् भावे=निकृतिः परम् प्रधानम् एषाम् (बहुव्रीहि) तेषु भावे सप्तमी । 'कुसृतिर्निकृतिः शाठ्यम्' इत्यमरः । 'परः श्रेष्ठारिदूरान्योत्तरे क्लीवन्तु केवले' इति मेदिनी । परेषु—भावे सप्तमी । 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' सूत्र से सप्तमी हुई है । भूरिधाम्नः—भूरि धाम यस्य सः (बहुव्रीहि) तस्य । 'प्रचुरं भूरि विज्ञेयं भूरिकाञ्चनमेव च' इत्यनेकार्थमञ्जरी । शत्रुओं ने प्रतिज्ञा भंग कर दी है । तुम्हें भी वैसी स्वतंत्रता है तथा तुम भी तेजस्वी हो, शत्रु से लोहा लेने की तुम में सामर्थ्य है । **समयपरिरक्षणम्**—शपथ की प्रतीक्षा । समयः—सम्+इ+अच् भावे '१३ वर्ष मैं वन में निवास करूँगा' यह प्रतिज्ञा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परि+रक्ष्+ल्युट् भावे—परिरक्षणम् । समयस्य परिरक्षणम् (षष्ठी तत्पुरुष) 'समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः । न क्षमम्—नोचितम् । क्षमम्—क्षमते इति क्षम्+अच् (पचादि) । हि—मल्लिनाथ ने इसका अर्थ 'कारण' लिया है । इसे अवधान अर्थ में भी लिया जा सकता है । 'हि पादपूरणे हेतौ विशेषेऽप्यवधारणे । प्रश्ने हेत्वपदेशे च सम्भ्रमासूययोरपि' इति मेदिनी । विजयार्थिनः—वि+जि+अच् भावे—विजयः तमर्थयन्ते इति विजयार्थिनः (विजय+अर्थ+णिनि कर्त्तरि) । क्षितीशाः—राजानः । क्षितेः ईशाः (षष्ठी तत्पुरुष) ईशते प्रभवन्ति इति ईश्+अच् (पचादि) =ईशाः कृद्योगे कर्मणि षष्ठी, न तु शेषे । 'क्षितेः ईशा' में 'ईश' इस कृदंत के योग से षष्ठी हुई है 'कर्तृकर्मणोः कृति' नियम से । फिर समास हुआ । शेषे षष्ठी नहीं हुई । क्योंकि तब तो 'अधिगर्थदयेशां कर्मणि' सूत्र से षष्ठी ही हो जाती (जिसका अर्थ है अधिपूर्वक 'इ' धातु, 'दय' ईश तथा इनका अर्थ रखने वाली अन्य धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है) समास न होता । अरिषु—शत्रुषु विषयाधिकरणे सप्तमी । अथवा अधिकरणे सप्तमी । सोपधि—बहाने से । उपधीयते इति उप+धा+कि भावे । उपधिः—तेन सह वर्तमानं (बहुव्रीहि) तद्यथा स्यात्तथा सोपधि (क्रियाविशेषण) 'उपधिः व्याजचक्रयोः' इति विश्वः । 'वोपसर्जनस्य' सूत्र से इसका रूप सहोपधि भी विकल्प से होगा । सन्धिदूषणानि विदधति—केनचिद् व्याजेन दोषमापाद्य सन्धि दूषयन्ति । सन्धीयते इति सन्धिः (सम्+धा+कि भावे); दूषणानि—दुष्+णिच्+ल्युट् भावे । सन्धेः दूषणानि (षष्ठी तत्पुरुष) दुष् धातु णिजन्त होने पर 'दोषो णौ' अर्थात् णि परे रहते दुष् धातु की उपधा को ऊत् होता है सूत्र से दीर्घ होकर दूष् हो जाता है । विदधति—आरोपयन्ति । वि+धा+लट् अन्ति । अलंकार—अर्थान्तरन्यास । 'आप को प्रतिज्ञा की रक्षा करना उचित नहीं' इस विशेष कथन का 'विजयाभिलाषी राजा लोग सन्धिभंग कपटपूर्वक कर देते हैं' इस सामान्य कथन से समर्थन किया गया गया है । परेषु परेषु में यमक । इसके अतिरिक्त अन्यत्र अनुप्रास भी है । अतः तिलतण्डुलवत् संसृष्टि है । छन्द पुष्पिताग्रा है । उसका लक्षण वृत्तरत्नाकर में इस प्रकार दिया हुआ है "अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा" अर्थात् प्रथम और तृतीय पादों में नगण, नगण, रगण, यगण और द्वितीय एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थ पादों में नगण, जगण, जगण, रगण और एक गुरु हो तो पुष्पिताग्रा छन्द होता है ।

वाच्यपरिवर्त्तन—.........समयपरिरक्षणेन नहि क्षमेण (भूयते) । हि विजयार्थिभिः क्षितीशैः अरिषु सोपधि सन्धिदूषणानि विधीयन्ते ।। ४५ ।।

उक्तमर्थमाशीर्वादपूर्वकमुपसंहरति—

आप युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जायँ, आपको सफलता मिले । इस बात को आशीर्वादात्मकरूप से द्रौपदी कह रही है—

विधिसमयनियोगाद्दीप्तिसंहारजिह्मं
शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ ।
रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ
दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः ।। ४६ ।।

विधीति । विधिर्दैवम् । 'विधिर्विधाने दैवे च' इत्यमरः । समयः कालस्तयोर्नियोगान्नियमनाद्धेतोः । तयोर्दुरतिक्रमत्वादिति भावः । अगाधे दुस्तरे । आपत्पयोधिरिवेत्युपमितसमासः । दिनकृतमिवेति वक्ष्यमाणानुसारात्तस्मिन्नापत्पयोधौ मग्नम् । सूर्योऽपि सायं सागरे मज्जति परेद्यु न्मज्जतीत्यागमः । दीप्तिः प्रताप आतपश्च तस्य संहारेण जिह्ममप्रसन्नम् । शिथिलवसुं शिथिलधनमन्यत्र शिथिलरश्मिम् । 'वसु देवेऽग्नौ रश्मौ च वसु तोये धने मणौ' इति वैजयन्ती । 'शिथिलबलम्' इति पाठे तूभयत्रापि शिथिलशक्तिकमित्यर्थः । रिपुस्तिमिरमिवेति रिपुतिमिरमुदस्य निरस्योदीयमानमुद्यन्तम् । 'ईङ गतौ' इति धातोर्देवादिकात्कर्तरि शानच् । त्वां दिनादौ दिनकृतमिव लक्ष्मीर्भूयः समभ्येतु भजतु । 'आशिषि लिङलोटौ' इति लोट् । चमत्कारितया मङ्गलाचरणरूपतया च सर्गान्त्यश्लोकेषु लक्ष्मीशब्दप्रयोगः । यथाह भगवान्भाष्यकारः—मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाण्यायुष्मत्पुरुषकाणि च भवन्त्यध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति' इति । पूर्णोपमेयम् । मालिनीवृत्तम् । सर्गान्तत्वाद्वृत्तभेदः । यथाह दण्डी 'सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः । सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जनम्' ।। इति ।।

अथ कविः काव्यवर्णनीयाख्यानपूर्वकं सर्गपरिसमाप्तिं कथयतीत्यादि । इति शब्दः परिसमाप्तौ । भारविकृताविति कविनामकथनम् । महाकाव्य इति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महच्छब्देन लक्षणसम्पत्तिः सूचिता। किरातार्जुनीय इति काव्यवर्णनीययोः कथनम्। प्रथमः सर्गः। समाप्त इति शेषः। एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम्। किरातार्जुनावधिकृत्य ग्रन्थः किरातार्जुनीयम्। 'शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः' इति द्वन्द्वाच्छप्रत्ययः। राघवपाण्डवीयमितिवत्। तथा ह्यर्जुन एवात्र नायकः किरातस्तु तदुत्कर्षाय प्रतिभटतया वर्णितः। यथाह दण्डी—'वंशवीर्यप्रतापादि वर्णयित्वा रिपोरपि। तज्जयान्नायकोत्कर्षकथनं च धिनोति नः' इति। अथात्र संग्रहः—'नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणस्यांशजस्तस्योत्कर्षकृतेऽनुवर्ण्यचरितो दिव्यः किरातः पुनः। शृंगारादिरसोऽङ्गमत्र विजयी वीरः प्रधानो रसः शैलाद्यानि च वर्णितानि बहुशो दिव्यास्त्रलाभः फलम्, इति ॥४६॥

अन्वय—विधिसमयनियोगात् अगाधे आपत्पयोधौ मग्नं दीप्तिसंहारजिह्मं शिथिलवसुं रिपुतिमिरम् उदस्य उदीयमानं त्वां दिनादौ दिनकृतमिव लक्ष्मीः भूयः समभ्येतु।

हिन्दी अनुवाद—जैसे दैव और समय के नियमन के कारण आपत्तिरूपी अथाह समुद्र में डूबे हुए, कान्ति के नष्ट होने से अनुज्ज्वल, मन्द किरणों वाले (किन्तु) प्रातःकाल शत्रु रूप अन्धकार को नष्ट कर उदित होते हुए सूर्य के पास दिनलक्ष्मी पुनः आती है, वैसे ही भाग्य और समय के प्रभाव से अथाह समुद्र के समान आपत्ति में डूबे हुए, आभा के विनाश से शिथिल क्षीण धनवाले और अन्धकारसदृश शत्रुओं को नष्ट कर उदीयमान तुम्हें लक्ष्मी पुनः प्राप्त हो।

English Translation:—May fortune again come to you plungeu in deep ocean of calamities through the decree of fate and time, pale owing to loss of splendour feeble in your wealth and rising desoıtying the gloom like enemies, like Lakshmi (refulgence) coming back at day break to the sun, who, by the decree of fate and time sinks into the deep langerous ocean, becomes pale on account of want of lustre and deprived of his rays and rises again destroying the gloom, his enemy.

संस्कृतभावार्थ—यथा संध्याकाले रविः देवकालप्रभावेण संक्षिप्तकिरणत्वात् खिन्नः अतलस्पर्शे पश्चिमपयोधौ निमग्नः कान्तिहीनो जायते। प्रभाते समुपागते चान्धकारं निरस्योदीयमानः सन् दिनलक्ष्म्या आलिङ्गितो भवति। तथव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्यूतक्रीडावसाने दैववशात् त्वमप्यपहृतसर्वस्वः कान्तिहीनोऽगाधविपत्सागरेऽद्यावधि मग्नोऽसि। अतः परं स्वसौभाग्यप्रभाते स्वारीन्पराभूय परम्परागतां राज्यलक्ष्मीमाप्नुहि ।

व्याख्या—द्रौपदी सूर्य का दृष्टान्त देती हुई कहती है कि भाग्य और समय के फेर से मनुष्य पर सुख-दुःख आया करते हैं। प्रकृति की ओर ध्यान देकर देखिए कि सूर्य सायंकाल तेजहीन होकर पश्चिम दिशा में डूब जाता है। (माघ ने भी कहा है—प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता। अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि। अर्थात् विधाता के प्रतिकूल होने पर सारी साधनाएँ व्यर्थ जाती हैं जैसे सहस्र किरणों वाला सूर्य भी सायंकाल को अस्त हो जाता है, उसकी सहस्र किरणें काम नहीं आतीं) पुनः प्रातःकाल अपने शत्रु अन्धकार को समूल नष्ट कर शनैः-शनैः तेजसम्पन्न हो जाता है (चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च) यह समझ कर धैर्य धारण कर उद्योग कीजिए मुझे विश्वास है कि आप भी सूर्य के समान अपने शत्रुओं का संहारकर विजयी होंगे तथा अपने अपहृत राज्य एवं गौरव को पुनः प्राप्त करेंगे।

टिप्पणी—विधिसमयनियोगात्—भाग्य और समय के प्रभाव से। विदधातीति विधिः—वि+धा+किः कर्त्तरि। (दैव); नि+युज्+घञ् भावे—नियोगः विधिश्च समयश्च विधिसमयौ तयोः नियोगः तस्मात्। हेतौ पञ्चमी। यह सूर्य और युधिष्ठिर दोनों के पक्ष में लगेगा। द्रष्टव्य 'लङ्घ्यते न खलु कालनियोगः' किरात० ९।१३। 'विधिर्विधाने दैवे च' इत्यमरः। अगाधे—अतलस्पर्शे। गाध्यते इति गाध्+घञ् कर्मणि—गाधः, न गाधः अगाधः। (नञ् तत्पुरुष) तस्मिन्। द्रष्टव्य—'सरितः कुर्वती: गाधाः पथश्चाश्यानकर्दमान्' रघुवंश ४। आपत्पयोधौ—पयांसि धीयन्ते अस्मिन्निति पयोधिः पयस्+धा+कि अधिकरणे। आपत् पयोधिरिव इति आपत्पयोधिः (उपमितकर्मधारय) तस्मिन्। अधिकरणे सप्तमी। यहाँ उपमितसमास 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' सूत्र से हुआ है। 'अगाधमतलस्पर्शे' इत्यमरः। मग्नं—निमज्जन्तं (मस्ज्+क्त निष्ठायाः नत्वम्) क्त के 'त' को 'न' हो गया। दीप्तिसंहारजिह्मम्—कान्ति की समाप्ति से प्रकाशहीन (सूर्य पक्ष में) प्रताप तेज के विनाश से शिथिल (शत्रुपक्ष में)। दीप्तेः संहारः (ष० तत्पु०) तेन जिह्मः तम् (तृ० तत्पु०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(सम्+हृ+घञ् भावे)––संहारः 'जिह्म' के लिए विशेष द्रष्टव्य श्लोक ८,२१। 'स्युः प्रभा रुग्रुचिस्त्विड्भाभाश्छविद्युतिदीप्तयः' इत्यमरः। शिथिल-वसुं—मन्दकान्ति (सूर्यपक्ष में) स्वल्पधनं (शत्रु पक्ष में) शिथिलं वसु रश्मिः धनं वा यस्य सः (बहुव्रीहि) तम्। 'त्वाम्' एवं 'दिनकृतम्' दोनों का विशेषण है। रिपुतिमिरम्––शत्रु जैसे अन्धकार को (सूर्य पक्ष में), शत्रु रूपी अन्धकार को (युधिष्ठिर पक्ष में)। रिपुः तिमिरमिव इति रिपुतिमिरम् तत् (उपमित-समास)। 'अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः' इत्यमरः। 'वसुर्देवेऽग्नौ रश्मौ च वसुतोये धन मणौ' इति वैजयन्ती। उदस्य––विनष्ट करके उत्+अस् (दिवादि) क्षेपे+ल्यप्। उदीयमानम्––उदय होते हुए (सूर्यपक्ष में), उन्नति की ओर अग्रसर (युधिष्ठिर पक्ष में) (उद्यन्तमुभयपक्षे)। उद्+ईङ् (दिवादिः) शानच् कर्त्तरि, तम्। 'त्वाम्' और 'दिनकृतम्' का विशेषण है दिनादौ—दिनस्य आदिः (ष० तत्पु०) तस्मिन्। दिनकृतमिव––दिनं करोतीति दिनकृतम् दिन+कृ+क्विप् कर्त्तरि (उपपदतत्पुरुष) तम्। लक्ष्मीः––राजलक्ष्मीः। भूयः––पुनः 'भूयस्त्रिषु वहुतरे पुनरर्थे तदव्ययम्' इति मेदिनी। समभ्येतु––गच्छतु। सम्+अभि+इ+लोट् तु। 'आशिषि लिङ्लोटौ' सूत्र से यहाँ आशीर्वाद देने में लोट् हुआ है। इसका कर्त्ता लक्ष्मीः है। अलंकार पूर्णोपमा है––मम्मटाचार्य ने कहा है––"उपमानोपमेयसाधारणधर्मोपमाप्रतिपादकानामुपादाने पूर्णा" अर्थात् उपमान, उपमेय, साधारण धर्म तथा उपमावाचक इव आदि शब्द इन चारों अंगों के ग्रहण होने पर पूर्णोपमा होती है। इस श्लोक में 'त्वाम्' (युधिष्ठिर) उपमेय, 'दिनकृतम्' उपमान 'इव' उपमाबोधक शब्द तथा दीप्तिसंहारजिह्मं विपत्तिसागर में डूबना, रिपुतिमिर का नाश करना तथा उदीयमान होना ये युधिष्ठिर और सूर्य दोनों में ही प्राप्त साधारण-धर्म है। उपमा के चारों अंग विद्यमान हैं, अतः पूर्णोपमालंकार है। श्लेष के बल पर प्रायः प्रत्येक पद का अर्थ लग जाता है। अतः श्लेष भी है। पूरे श्लोक में श्लेषानुप्राणित पूर्णोपमालंकार है।

किरातार्जुनीयम् के प्रत्येक सर्ग के अन्त में लक्ष्मी शब्द प्रयुक्त हुआ है। यहाँ पर वास्तव में लक्ष्मी शब्द का प्रयोग मंगलाचरण के लिए किया गया है। मल्लिनाथ कहते हैं :––चमत्कारितया मंगलाचरणरूपतया च सर्गान्तश्लोकेषु लक्ष्मीशब्दप्रयोगः' अर्थात् लक्ष्मी शब्द का प्रयोग सर्ग के अन्त में अन्तिम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्लोकों में चमत्कार उत्पन्न करने एवं मंगलाचार का विधायक होने के लिए किया गया है। भगवान् भाष्यकार का कथन है :--

"मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाण्यायुष्मत्पुरुषकाणि च भवन्त्यध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति।"

अर्थात् आदि, मध्य और अन्त में यदि मंगलयुक्त शास्त्र प्रणीत किये जाते हैं तो वे विख्यात होते हैं, लोगों को वीर एवं चिरंजीव बनाते हैं और पाठक भी प्रवक्ता हो जाते हैं। अतः शास्त्र को विख्यात होने का फल मिलेगा, साथ ही अध्येता भी वाग्मी बनेंगे। किरात और अर्जुन को अधिकृत करके इस ग्रन्थ की रचना हुई है, अतः इसका नाम किरातार्जुनीय रखा गया। यहाँ अर्जुन नायक हैं, किरात का वर्णन प्रतिनायक के रूप में किया गया है जैसा कि दण्डी ने कहा है--

वंशवीर्यप्रतापादि वर्णयित्वा रिपोरपि।
तज्जयान्नायकोत्कर्षकथनं च धिनोति नः॥

अर्थात् प्रतिभट के वंश, वीर्य, प्रताप का वर्णन कर उस पर नायक की विजय प्रदर्शित करना प्रसन्नताविधायक है।

महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार यहाँ सर्गान्त में छन्द बदल दिये गये हैं। छन्द मालिनी है। इसका लक्षण वृत्तरत्नाकर में इस प्रकार है :--

'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।'

अर्थात् नगण, नगण, मगण, यगण, यगण से युक्त तथा ८ और फिर ७ पर विराम से समन्वित मालिनी छन्द होता है।

गणनाम	लक्षण	विस्तार
नगण	। । ।	वि धि स
नगण	। । ।	म य नि
मगण	ऽ ऽ ऽ	यो गा द्दी
यगण	। ऽ ऽ	ति सं हा
यगण	। ऽ ऽ	र जि ह्मं

इस प्रकार अन्य तीन चरण भी होंगे

प्रथमः सर्गः समाप्तः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१—युधिष्ठिर को वनेचर द्वारा दी गई सूचना अपनी संस्कृत में लिखिए।
(उत्तर द्रष्टव्य श्लोक ४ से २५ तक)

२—वनेचर के कथन का द्रौपदी पर क्या प्रभाव पड़ा? उसने महाराज युधिष्ठिर को कैसे युद्ध के लिए उत्तेजित किया?
(उत्तर श्लोक २७-४६ तक)

३—भारवि की स्थितिकाल का निरूपण कीजिए।

४—महाकाव्य के लक्षणों का उल्लेख करते हुए वतलाइये कि 'किरातार्जुनीयम्' कहाँ तक सफल हुआ है।

५—भारवि की शैली पर प्रकाश डालिए।

६—भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' के कथानक में मूलस्रोत से क्या-क्या परिवर्तन किए हैं।

७—'भारवेरर्थगौरवम्' की विशद विवेचना सोद्धरण कीजिए।

८—भारवि और माघ की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए।

९—प्रथम सर्ग के १, १८, २४, ३६, ३८, ४०, ४५ तथा ४६ श्लोकों की संस्कृत में व्याख्या कीजिए।

१०—प्रथम सर्ग के १, ३, ५, ८, ९, ११, १४, १५, २३, २४, २७, २९, ३२, ३४, ३८, ३९ तथा ४०—४६ तक के श्लोकों का हिन्दी अथवा अँग्रेजी में अनुवाद कीजिए।

नोट—प्रश्न ३—८ तक के उत्तर आमुख में द्रष्टव्य हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत साहित्य के अद्वितीय ग्रंथ

- संस्कृत के महाकवि और काव्य—डा० रामजी उपाध्याय ८·००
- संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामजी उपाध्याय ८·००
- भारत की संस्कृति साधना (संस्कृति का इतिहास)—डा० रामजी उपाध्याय १०·००
- प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति—डा० रामजी उपाध्याय १२·००
- भारतीय संस्कृति का उत्थान—डा० रामजी उपाध्याय ३·७५
- भारत की सामाजिक क्रान्ति—डा० रामजी उपाध्याय ३·००
- भारतीय संस्कृति—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र २·५०
- संस्कृत-व्याकरण-प्रवेशिका—डा० बाबूराम सक्सेना ५·५०
- संस्कृत निबन्ध दर्शिका—(Apte's Guide to Sanskrit Composition) ४·००
- श्रीमद्वाल्मीकि रामायण-दस खण्ड (सटीक)—द्वारका प्रसाद शर्मा २४·००
- अभिज्ञानशाकुंतलम्—डा० कपिलदेव द्विवेदी ६·००
- कारक दीपिका—पं० मोहन वल्लभ पंत ४·७५
- उत्तररामचरितम्—डा० कपिलदेव द्विवेदी ५·००
- किरातार्जुनीयम्—सर्ग १, २ प्रत्येक १·२५
- प्रतिमानाटकम् ३·५०
- कादम्बरी (कथामुख) ५·००
- कुमारसम्भव—सर्ग १ १·००
- कुमारसम्भव—सर्ग ५ २·००
- स्वप्नवासवदत्तम् २·२५
- भोजप्रबन्ध २·००
- नीतिशतक २·००
- वैराग्यशतक २·००
- विक्रमोर्वशीयम् ३·५०
- काव्यप्रकाश—दशम उल्लास २·००
- शुकनाशोपदेश १·००
- दशकुमारचरित (पूर्व पीठिका) १·००
- हर्षचरित—प्रथम उच्छ्वास १·२५
- ईशावास्योपनिषद ०·५०
- पंचतंत्रम्—अपरीक्षितकारक १·५०
- लघुसिद्धान्तकौमुदी—
  - (संधि-प्रकरण-पर्यन्ता) ०·६०
  - (कृदन्त, कारक, समास, तद्धित) १·२५
  - (सुबन्त, लकारार्थ, स्त्रीप्रत्यय) ३·५०
- रघुवंश—
  - सर्ग १, २, ३, ५, ६, ८, १४ प्रत्येक १·५०
- रघुवंश—सर्ग १३ १·७५
- बुद्धचरितम्—सर्ग ३ ०·७५
- उत्तररामचरितम्—सर्ग ३ १·५०
- ऊरुभंगम् १·००
- मित्रलाभ—(हितोपदेश) १·५०
- मेघदूतम्—(पूर्व मेघ) २·००
- मेघदूतम्—(उत्तर मेघ) १·७५
- शिशुपालवधम्—(सर्ग १ व २ प्रत्येक १·२५
- अमरकोष ५·५०

रामनारायणलाल बेनीमाधव

२, कटरा रोड, इलाहाबाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi